शिक्षा में स्नातक (बी0एड0)
Bachelor of Education (B.Ed)

भाग - २
Part - II

पत्र - दशम्
Paper - X

शिक्षा में परिप्रेक्ष्य
Prospective in Education

Nalanda Open University
(A State Open University)

Course Design and Preparation Team

Original Text Written by :

1. **Dr. Meena Kumari**
   Assistant Professor,
   School of Teacher Education,
   NOU, Patna
   Unit - 12

2. **Dr. Pallavi**
   Assistant Professor,
   School of Teacher Education,
   NOU, Patna
   Unit - 7 & 16

3. **Prof. (Dr.) Radha Krishan Singh**
   Principal,
   Virayatan College of Education,
   Pawapuri
   Unit - 14

4. **Dr. Anuradha Kumari**
   Principal,
   M.S Institute of Education, Patna
   Unit - 1 & 2

5. **Dr. Nimisha Shrivastav**
   Assistant Professor,
   St. Xavier's College of Education
   Unit - 8 & 9

6. **Preeti Kumari**
   Assistant Professor,
   Islamia Teacher's Training College
   Unit - 3 & 4

7. **Dr. Dinesh Prasad**
   Assistant Professor,
   Turki Teacher's Training College,
   Muzaffarpur
   Unit - 5 & 6

8. **Arvind Kumar**
   Assistant Teacher
   RSDS +2 School, Simaria,
   Begusarai
   Unit - 10 & 11

9. **Dr. Anil Sinha**
   Assistant Professor,
   Turki Teacher's Training College,
   Muzaffarpur
   Unit - 13 & 19

10. **Dr. Prabhunath Singh**
    Assistant Professor,
    M.S Institute of Education, Patna
    Unit - 17 & 18

11. **Mukesh Kumar**
    Research Scholar,
    Regional Institute of Education
    (NCERT), Bhubaneshwar
    Unit - 20

12. **Sanjeev Kumar**
    Assistant Professor,
    Turki Teacher's Training College,
    Muzaffarpur
    Unit - 15

Co-ordinator
Prof. (Dr.) Preeti Sinha
School of Teacher Education
Nalanda Open University, Patna

शिक्षा में स्नातक (बी0एड0)
Bachelor of Education (B.Ed)

Part - II, Paper - X

CONTENTS

इकाई 1.	भारतीय संविधान की मूल विशेषताएँ (**Basic Features of Constitution of India**)	....	5 - 11
इकाई 2.	संविधान की प्रस्तावना (**Preamble of the Constitution**)	....	12 - 19
इकाई 3.	विविधता के संदर्भ में भारतीय समाज की समझ (**Understading Indian Society with Reference to Diversities**)	....	20 - 34
इकाई 4.	सामाजिक असमानता एवं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अभिप्राय/निहितार्थ (**Issues of Inequality in Society and their Socio-Cultural and Educational Implications**)	....	35 - 49
इकाई 5.	शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण एवं हाशियेकरण बाधक (**Discrimination and Marginilization as Barriers for Universalization of Education**)	....	50 - 63
इकाई 6.	विविधता, असामानता और हाशियेकरण से संबंधित मुद्दे में शिक्षा, विद्यालय और शिक्षक की भूमिका (**Role of Education, School and Teacher in Addressing Issues Related to Diversity, Inequality and Marginalisation**)	....	64 - 77
इकाई 7.	मानवधिकार : अर्थ, प्रकृति एवं वर्गीकरण (**Human Rights : Meaning, Nature and Classification**)	....	78 - 90
इकाई 8.	शिक्षा : एक मूलभूत अधिकार (**Education : A Fundamental Right**)	....	91 - 95

इकाई 9.	शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 : क्रियान्वयन संबंधी मुद्दे (**Right to Education 2009 : Issues Related to Execution**)	....	96 - 100
इकाई 10.	जीवन कौशल शिक्षा (**Life Skill Education**)	....	101 - 111
इकाई 11.	शिक्षा का निजीकरण और वैश्वीकरण (**Privatization & Globalization of Education**)	....	112 - 124
इकाई 12.	शान्ति शिक्षा (Peace Education)	....	125 - 146
इकाई 13.	गुणवत्ता शिक्षा : अवधारणा, आयाम एवं सूचक (**Quality Education : Concept, Dimensions and Indicators**)	....	147 - 165
इकाई 14.	गुणवत्ता शिक्षा निर्धारित करने वाले कारक (**Factors Determining Quality Education**)	....	166 - 173
इकाई 15.	विद्यालयों में गुणवत्ता शिक्षा उन्नयन के पहल (**Initiatives for Enhancing Quality Education in Schools**)	....	174 - 185
इकाई 16.	विद्यालय की गुणवत्ता उत्थान में विद्यालय, शिक्षक एवं समुदाय की भूमिका (Role of School, Teacher and Community to Promote Quality Education in School)	....	186 - 195
इकाई 17.	माध्यमिक विद्यालय के स्तर (**Secondary School Stage**)	....	196 - 205
इकाई 18.	माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (**Aims of Secondary Education**)	....	206 - 212
इकाई 19.	माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण : इसकी स्थिति (Universalisation of Secondary Education : Its Status)	....	213 - 255
इकाई 20.	राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (**Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan**)	....	256 - 265

इकाई : 1 भारतीय संविधान की मूल विशेषताएँ
Basic Features of Constitution of India

<u>पाठ-संरचना (Lesson Structure)</u>

1.0 उद्देश्य (Objectives)

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

1.2 भारतीय संविधान की मूल विशेषताएँ (Constitution of India : Basic Features)

1.3 मौलिक अधिकार (Fundamental Right)

1.4 राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)

1.5 संघीय संरचना (Federal Structure)

1.6 सारांश (Summary)

1.7 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

1.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- संविधान से परिचित हो सकेंगे ।
- संविधान के मौलिक अधिकारों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों को समझ सकेंगे ।
- संघीय संरचना को स्पष्ट कर सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय संविधान के मूल आदर्श नामक इस इकाई में संविधान की उपयोगिता, अर्थ एवं इसके कार्य की विस्तार से चर्चा की गयी है । यही नहीं इस पाठ में संविधान द्वारा वर्णित मौलिक अधिकारों को विस्तार से उद्धृत किया गया है । इस पाठ में बताया गया है कि जनता के अधिकारों तथा हितों की रक्षा करने तथा सभी क्षेत्रों में उसकी रक्षा करने के लिए सरकार को दिशा-निर्देश प्रदान करता है । नीति-निर्देशक तत्व जनता

की भलादं के लिए तथा देश में आर्थिक तथा सामाजिक प्रजातंत्र को स्थापित करने के लिए राज्य को प्रेरणा देती है । विद्यार्थीगण इस पाठ को पढ़कर एक अच्छे नागरिक के कर्त्तव्यों का पालन करने के प्रति जागरूक होंगे। इस पाठ में संघीय ढाँचा का भी विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । व्यक्ति के नागरिक जीवन के विकास में इस पाठ का बहुत अधिक महत्व है । अतः इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

1.2 भारतीय संविधान की मूल विशेषताएँ (Constitution of India : Basic Features)

संविधान निर्मात्री-सभा में व्यापक विचार-विमार्श के पश्चात बनाये गये संविधान को 26 जनवरी, 1950 को देश भर में लागू किया गया । इस सभा का गठन इसलिए किया गया क्योंकि आजादी के बाद भारत के अपने संविधान की आवश्यकता हुई, जिसके लिए एक समिति का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष **डॉ0 भीमराव अम्बेडकर** थे । किसी भी देश का संविधान उस देश की सर्वोच्च निधि होती है । इसके उपर न तो कोई शक्ति होती है और न ही सत्ता । सरकार संविधान के अनुसार ही कार्य करती है तथा संविधान की मर्यादाओं में रहकर ही अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करती है । संविधान निर्माण में इस बात पर ध्यान दिया गया कि वह प्रशासन, एकता व अनुशासन के समस्त घटकों का संयोजन हो, जिसमें सभी भारतीयों को समान अधि कार प्राप्त हो । इस संविधान में जाति, रंग, धर्म, भाषा के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं किया गया । वर्तमान भारतीय संविधान में 407 अनुच्छेद हैं । मूल संविधान में 395 अनुच्छेद थे जो 22 भागों में विभाजित हैं और उसमें 12 अनुसूचियाँ हैं । आवश्यकतानुसार संविधान में समय-समय पर संशोधन होता रहता है । संविधान के मूल आदर्शों को निम्नवत् देखा जा सकता है :-

1.2.1 शिक्षा का सार्वभौमिकरण (Universlitsation of Education)

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए 6 से 14 वर्ष तक के आयु के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनविार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रयास किया जा रहा है । प्राथमिक शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया गया है । 'सर्वशिक्षा अभियान', 'स्कूल चलो अभियान', मध्याह्न भोजन की व्यवस्था' आदि कार्यक्रमों के द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है ।

1.2.2 शैक्षिक अवसरों की समानता (Equality of Educational Opportunity)

देश के सभी बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अवसर उपलब्ध कराये जा रहे हैं । प्राथमिक स्तर पर ये अवसर सबको उपलब्ध कराये जा रहे हैं, साथ ही माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर भी विविधतापूर्ण पाठ्यक्रमों का प्रावधान करके बच्चों की रूचि और योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के अवसर दिये जा रहे हैं ।

1.2.3 स्त्री शिक्षा (Women Education)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं की शिक्षा की विशेष व्यवस्थाएँ की जा रही हैं । उनका नामांकन बढ़ाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयास किये जा रहे हैं । उनके लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों और पाठ्य-सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था की जा रही है ।

1.2.4 प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education)

देश की निरक्षरता दूर करने और लोगों में जागृति व चेतना पैदा करने के लिए प्रौढ़ शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है ।

1.2.5 दिव्यांगों के लिए शिक्षा (Education for Handicapped)

दिव्यांगों को हिम्मत और विश्वास के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गयी है। भारत सरकार ने 1977-78 में इनके लिए समन्वित योजना आरंभ की । देश भर के दिव्यांगों के लिए विशेष शिक्षण संस्थाएँ चलायी जा रही है ।

1.2.6 अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा (Education for Scheduled Cast, Scheduled Tribe and Backward Classes)

समानता और सामाजिक न्याय व्यवस्था के अनुसार इन बालकों के लिए संविधान द्वारा विशेष शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने की बात कही गयी है । छात्रवृति योजना और रहने के लिए छात्रावास की व्यवस्था की बात कही गयी है ।

1.2.7 व्यवसायिक शिक्षा (Vocational Education)

समाज का उपयोगी सदस्य बनाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा के पाठ्यक्रमों में ऐसे विषय, कौशल और हस्त उधोग हों जो व्यवसायिक क्षेत्र में आवश्यक हों ।

1.2.8 विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा (Education for Science and Technology)

अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति के लिए आवश्यक, विवेकशील मन:स्थिति तैयार करने में विज्ञान काफी सहायक होता है । अत: शिक्षा के सभी स्तरों पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी के शिक्षण की व्यवस्था इस प्रकार से की जा रही है जिससे विवेकशील चिन्तन को बढ़ावा मिले ।

1.2.9 मूल्य शिक्षा (Value Education)

देश की सुरक्षा, शांति, विकास, खुशहाली व एकता एवं अखण्डता के लिए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है । शिक्षा, स्वतंत्रता, समानता, उत्तरदायित्व लाने का सशक्त साधन है ।

1.3 मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

भारत एक लोकतांत्रिक राज्य है, जिसमें लोगों के चतुर्मुखी विकास के लिए भारतीय नागरिकों को संविधान द्वारा 6 मूल अधिकार दिये गये हैं । नागरिकों को शोषण से बचाने तथा उनको सुखी जीवन प्रदान करने के लिए इनके अंतर्गत अवसर प्रदान किये गये हैं । भारतीय नागरिकों को प्राप्त 6 मूल अधिकार निम्नलिखित हैं :

1.3.1 समानता का अधिकार (Right to Equality)

भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं को मिटाने के लिए संविधान निर्माताओं ने समान अधिकार को प्रथम स्थान दिया है ।

कानून के समक्ष सभी नागरिक समान हैं । धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा । सरकारी नौकरियों में सभी नागरिकों को समान अवसर मिलेंगे । किसी भी रूप में छुआछूत का व्यवहार करने की मनाही है तथा उपाधियों का अंत कर दिया गया ।

1.3.2 स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom)

संविधान के अंतर्गत निम्नलिखित स्वतंत्रताएँ प्रदान की गयी हैं :-

- विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ।
- शांतिपूर्ण सभा सम्मेलन की स्वतंत्रता ।
- संघ और संस्था निर्माण की स्वतंत्रता ।
- देश के भीतर घूमने-फिरने की स्वतंत्रता ।
- कोई भी व्यवसाय या कारोबार की स्वतंत्रता ।
- देश के किसी भी भाग में बसने या निवास करने की स्वतंत्रता ।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा जीवन की सुरक्षा ।

1.3.3 शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right against Exploitation)

संविधान में किसी भी व्यक्ति के किसी भी रूप में शोषण की मनाही की गयी है । मनुष्य के क्रय-विक्रय और बेगार पर रोक लगाया गया है । 14 वर्ष से कम आयु के किसी बच्चे को खानों या कारखानों में काम पर नहीं लगाया जा सकता है ।

1.3.4 धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)

भारतीय संविधान में भारत के सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी है । प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म को मानने व उसका प्रचार-प्रसार करने का अधिकार है । सरकारी शिक्षण संस्थाओं में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी ।

1.3.5 संस्कृति व शिक्षा-संबंधी अधिकार (Cultural and Educational Right)

भारत में विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, भाषाओं तथा संस्कृतियों के लोग रहते हैं । अत: संविधान में प्रत्येक संप्रदाय को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होगा तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति करने के लिए वे शिक्षा संस्थाओं की स्थापना तथा उनका संचालन कर सकते हैं ।

1.3.6 संवैधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

इस अधिकार को डॉ० बी०आर० अम्बेडकर ने संविधान के हृदय तथा आत्मा की संज्ञा दी है । यह अधिकार सभी नागरिकों को अपने अधिकारों के संरक्षण के लिए सर्वोच्च न्यायालय के पास जाने की छूट देता है ।

1.4 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy)

नीति-निर्देशक तत्व वो सिद्धांत है, जो जनता की भलाई एंव देश में सामाजिक तथा आर्थिक प्रजातंत्र को स्थापित करने के लिए राज्य को काम करने की दृष्टि से प्रेरणा देते हैं । नीति-निर्देशक सिद्धांतों का अर्थ ऐसे सिद्धांतों से है जिन्हें राज्य अपनी नीतियों तथा कानूनों को बनाते समय ध्यान में रखें ।

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के अनुसार, "अन्य बातों के साथ-साथ निर्देशक सिद्धांत विशेष रूप से सामाजिक तथा आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने के उद्देश्य से बनाये गये हैं ।"

डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा है, "राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों का उद्देश्य जनता के कल्याण को बढ़ावा देनेवाली सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है ।"

संविधान की धाराएँ 36 से 51 राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित हैं, जिसका विवरण निम्नवत् है :

धारा 38 : राज्य लोक-कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनायेगा ।

धारा 39 : समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता देना ।

धारा 40 : ग्राम पंचायतों का संगठन ।

धारा 41 : कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता प्रदान करने का अधिकार ।

धारा 42 : काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं तथा प्रसूति सहायता का उपबंध ।

धारा 43 : कर्मचारियों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि ।

धारा 44 : नागरिकों के लिए एकसमान सिविल संहिता ।

धारा 45 : बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा ।

धारा 46 : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों की शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि ।

धारा 47 : पोषाहार स्तर और जीवन स्तर को उँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करने हेतु राज्य का कर्त्तव्य ।

धारा 48 : कृषि और पशुपालन का संगठन ।

धारा 49 : राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों और स्थानों का संरक्षण ।

धारा 50 : कार्यपालिका से न्यायापालिका का पृथक्करण ।

धारा 51 : अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि ।

1.5 संघीय संरचना (Federal Structure)

संघवाद क्षेत्रीय स्वायत्तता को सुरक्षित रखता है एवं राष्ट्रीय एकता भी प्रदान करता है । यह व्यवस्था संपूर्ण देश में कानूनी नीति तथा प्रशासन की एकरूपता प्रदान करती है । संघवाद राज्य स्तर पर प्रयोग की व्यवस्था करके कुशलता की स्थापना करता है क्योंकि संघवाद में केन्द्र और राज्य अपने-अपने निश्चित क्षेत्र या विषयों में कार्य करते हैं ।

संघवाद सरकार का वह रूप है जो राज्य के अधिकारों की देखभाल के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता का मिलाप करता है । संघवाद राजनीतिक संगठन का एक माध्यम है जो व्यापक राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न राजनीतियों को एकजुट करता है ताकि मौलिक राजनीतिक अखंडता बनी रहे । संघवाद एक ऐसी प्रणाली है जिसमें यह आवश्यक है कि बुनियादी नीतियों का निर्माण तथा कार्यान्वयन समझौता से हो ताकि सभी सदस्य इसमें सहभागी बन सकें ।

एकात्मक शासन-प्रणाली में पूरे देश की विधायिका देश में सर्वोच्च कानून बनाने वाली संस्था होती है । यद्धपि राज्य सरकारों को यह कानून बनाने का अधिकार देती है । परंतु अंतिम शक्ति केन्द्र सरकार के पास होती है । इस प्रकार राज्य सरकारें केन्द्र के अधीन होती है ।

संघात्मक और एकात्मक शासन-प्रणालियों के मिश्रण का भी कहीं-कहीं प्रतिमान देखने को मिलता है जिसे अर्धसंघात्मक या संघीयवत व्यवस्था (Quasi Federal) कहा जाता है ।

इस व्यवस्था में केन्द्र और राज्य में शक्तियों का विभाजन है और विषयों का बटवारा संविधान के आधार पर होता है । कुछ विषयों में राज्य केन्द्र से स्वतंत्र रहकर अपनी शक्तियों का प्रयोग करती है परंतु कुछ विषयों में केन्द्र का राज्य पर नियंत्रण रहता है । ऐसी व्यवस्था को मिश्रित व्यवस्था भी कहा जाता है । इस प्रकार अर्धसंघात्मक व्यवस्था का सर्वोत्तम उदाहरण भारत है ।

संघीय राजनीतिक व्यवस्था से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें एक सामान्य सरकार की स्थापना दो या अधिक घटक सरकारों के समूह से होती है और इस व्यवस्था में उनकी शक्तियाँ पर्याप्त रूप से सुरक्षित एंव संरक्षित होती है । संघवाद संवैधानिक तौर पर शक्ति को साझा करता है क्योंकि इसमें स्वशासन एवं साझा-शासन की व्यवस्था होती है । साथ ही इसके अंतर्गत संघ, परिसंघ तथा इसी प्रकार के राजनीतिक तथा संगठनात्मक संबंध शामिल होते हैं । इस प्रकार संघवाद संसदीय लोकतंत्र या प्रत्यक्ष लोकतंत्र की तरह लोकतंत्र की जननी के रूप में पहचाना जाना चाहिए । शक्तियों के आधार पर दो प्रकार के सरकार के रूप के अस्तित्व पाये जाते हैं - एकात्मक तथा संघात्मक । संघवाद अथवा सरकार का संघीय स्वरूप एक आधुनिक खोज है । संघीय राज्य में शक्तियों का वितरण केन्द्र और राज्य इकाइयों के बीच होता है ।

1.6 सारांश (Summary)

किसी भी देश का संविधान उस देश का सर्वोच्च निधि होता है । इसके ऊपर न तो कोई शक्ति होती है न सत्ता । सरकार संविधान के अनुसार ही कार्य करती है । नागरिकों को शोषण से बचाने तथा उनको सुखी जीवन बिताने के लिए संविधान के अनुसार छः मौलिक अधिकार दिये गये हैं । जनता के कल्याण के लिए तथा सामाजिक, आर्थिक लोकतंत्र स्थापित करने के लिए राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है । संविधान की धारा 36 से 51 तक राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों से संबंधित है । संघीय व्यवस्था संपूर्ण देश में कानूनी नीति तथा प्रशासन की एकरूपता प्रदान करती है । संविधान का प्रयोग प्रत्येक नागरिक अपने जीवन को नियमित करने के लिए करता है ।

1.7 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

1. भारतीय संविधान की मूल विशेषताओं का वर्णन करें ।

   Describe the basic features of Indian Constitution.

2. संविधान द्वारा प्रदत्त भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन करें ।

   Describe the fundamental rights of Indian citizens given in Indian Constitution.

3. राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांतों की विवेचना करें ।

   Discuss the Directive Principles of State Policy.

4. भारतीय संविधान की संघीय संरचना का वर्णन करें ।

   Descsribe the federal structure of the Indian Constitution.

1.8 संदर्भ सूची (References)

1. पचौरी, गिरीश (2012) : शिक्षा के सामाजिक आधार, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ ।
2. कोठारी, ममता (2012) : शिक्षा और समाज, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
3. अग्रवाल, जे०सी० (2010) : शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
4. सक्सेना, स्वरूप, एन०आर० (2013) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ ।
5. मदान, पूनम, पाण्डेय रामशकल (2017) : समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।

❐ ❐ ❐

इकाई : 2 संविधान की प्रस्तावना
Preamble of the Constitution

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

2.2 भारतीय संविधान प्रस्तावना (Preamble of the Indian Constitution)

2.3 सारांश (Summary)

2.4 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

2.5 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

2.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ संविधान के प्रस्तावना को समझ सकेंगे ।
- ❖ संविधान के आदर्श एवं संप्रभुता की व्याख्या कर सकेंगे ।
- ❖ प्रजातंत्र एवं धर्मनिरपेक्षता से परिचित हो सकेंगे ।
- ❖ समानता, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय को स्पष्ट कर सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

2.1 प्रस्तावना (Introduction)

संविधान की प्रस्तावना नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को संविधान के संबंध में विस्तृत जानकारी दी गई है । इसकी प्रस्तावना, संप्रभु राष्ट्र तथा प्रजातंत्र एंव धर्मनिरपेक्षता की विस्तार से चर्चा की गयी है । यही नहीं इस पाठ में स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व को भी विस्तृत रूप से उद्धृत किया गया है । इस अध्ययन में बताया गया है कि संविधान की जानकारी द्वारा ही व्यक्ति नियमों एवं कानूनों से अवगत होकर एक सभ्य नागरिक की श्रेणी में आ सकता है । मनुष्य जीवन समायोजन की सतत् प्रक्रिया है । व्यक्ति जीवन पर्यन्त सामाजिक एवं आर्थिक न्याय करते हुए एक अच्छे नागरिक का जीवन व्यतीत करता है । अत: संविधान का प्रत्येक नागरिक के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है । अत: इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गयी है ।

2.2 भारतीय संविधान की प्रस्तावना (Preamble of Indian Constitution)

प्रत्येक संविधान के प्रारंभ में एक प्रस्तावना होती है । जिसमें संविधान के मूल उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है । यह संविधान का मूल्यवान अंग होने के कारण संविधान की आत्मा, कुंजी तथा मानदण्ड है । यह भारत के प्रजातांत्रिक राज्य का एक संक्षिप्त किन्तु सारपूर्ण घोषणा-पत्र है । वर्तमान में इसकी प्रस्तावना इस प्रकार है :-

हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय दिलाने के लिए तथा विचार-अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा तथा राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़-संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक 26 नवंबर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित तथा आत्मार्पित करते हैं ।

संविधान की प्रस्तावना से स्पष्ट है कि यह भारत को प्रभुसत्ता संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, प्रजातांत्रिक गणराज्य घोषित कराते हुये अपने नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय, विचारों, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था तथा प्रजा की स्वतंत्रता, अवसरों की समानता तथा भाईचारे की ऐसी भावना का विकास करना चाहते हैं जो व्यक्ति को सम्मान तथा राष्ट्र की एकता व अखण्डता की रक्षा के प्रति आश्वस्त करे । संविधान में 12 से 32 अनुच्छेद तक नागरिकों के मूल अधिकारों को स्पष्ट किया गया है । **समाजवादी** और **धर्मनिरपेक्ष** शब्द संविधान में 42वें संशोधन द्वारा जोड़े गये हैं । 'समाजवाद' शब्द से तात्पर्य है कि शासन सभी भारतीय नागरिकों के उत्तम जीवन के लिए समाजवादी नीति को अपनाये ।

धर्मनिरपेक्ष का तात्पर्य है कि राज्य किसी भी धर्म को प्राथमिकता प्रदान नहीं करेगा । **प्रजातांत्रिक सरकार** का अर्थ है कि शासन-व्यवस्था जनता द्वारा ही चुने गये व्यक्तियों द्वारा चलाया जाएगा । **गणराज्य** से तात्पर्य है कि सर्वोच्च सत्ता और शक्ति उस व्यक्ति में सन्निहित होगी जो जनता के द्वारा प्रत्यक्ष चुना गया हो । नागरिकों को प्रत्येक स्तर पर स्वतंत्रता और समानता के अवसर दिये जायेंगे ।

2.2.1 आदर्शों (Ideals)

22 जनवरी, 1947 को संविधान सभा ने जिस उद्देश्य से प्रस्ताव को अंगीकार किया था, उसे जवाहरलाल नेहरू ने 15 दिसंबर, 1946 को संविधान सभा में अत्यंत प्रेरणात्मक और महत्वपूर्ण भाषण के रूप में प्रस्तुत किया था । यही उद्देश्य प्रस्ताव भारतीय संविधान की प्रस्तावना का आधार है । यही उद्देश्य संवैधानिक सिद्धांतों का शिलन्यास करते हुए संविधान की विचारधारा का निर्माण करते हैं । जवाहरलाल नेहरू द्वारा जिन आदर्शों को प्रस्तुत किया गया, वे निम्नलिखित हैं :-

- संविधान सभा दृढ़तापूर्वक, सत्यनिष्ठा से भारत को एक संपूर्ण प्रभुसत्ता संपन्न गणराज्य घोषित करती है और उसके भावी प्रशासन के लिए एक संविधान की संरचना करने का वचन देती है ।
- इसमें ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र, भारतीय राज्यों के क्षेत्र और वह क्षेत्र जो ब्रिटिश भारत और भारतीय राज्यों की सीमा से बाहर है और जो स्वतंत्र, प्रभुसत्ता संपन्न भारत के संवैधानिक भाग बनना चाहते हैं, सबको एकीकृत किया जाएगा ।

- ये सभी क्षेत्र अपनी वर्तमान सीमाओं तथा संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं के साथ भारत के स्वायत्त एकल माने जायेंगे । संघ के लिए नियोजित अथवा अन्तर्निहित शक्तियों के अतिरिक्त वह सरकार और प्रशासन के लिए सभी अवशिष्ट शक्तियों का प्रयोग करेंगे ।
- स्वतंत्र भारत की संपूर्ण शक्ति और सत्ता तथा प्रशासनिक उपकरण भारतीय जनता से व्युत्पन्न है ।
- भारत की जनता को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय की गारंटी दी जाएगी । कानून और सार्वजनिक नैतिकता के अंतर्गत सबको पदोन्नति के समान अवसर, विचार की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, धर्म, आस्था, उपासना व्यवसाय तथा कार्यकारिता के अवसर प्रदान किये जाते हैं ।
- इसमें अल्पसंख्यकों, पिछड़े तथा अदिवासियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाएगी।
- इस प्राचीन देश को विश्व में सम्मानित स्थान प्राप्त हुआ है और यह विश्व शांति तथा मानव कल्याण के लिए जी-जान से सहयोग देगा ।

संविधान की प्रस्तावना में इन सभी आदर्शों को समाहित किया गया है । मूल रूप से संविधान की प्रस्तावना नेहरू द्वारा प्रस्तुत तथा सर्वसम्मति से संविधान सभा द्वारा अंगीकृत उद्देश्यों के प्रस्ताव पर आधारित है। कानून की दृष्टि से प्रस्तावना संविधान का अंग नहीं है, किंतु व्यवहार में यही कार्यपालिका आौर व्यवस्थापिका का मार्गदर्शन करने वाला प्रकाश स्तंभ है ।

2.2.2 संप्रभुत्व राष्ट्र (Sovereign Nation)

प्रस्तावना ये दावा करती है कि भारत एक संप्रभुत्व संपन्न देश है । भारत किसी भी विदेशी और आंतरिक शक्ति के नियंत्रण से पूर्णत: मुक्त सुंप्रभुता संपन्न राष्ट्र है । भारत की विधायिका को संविधान द्वारा तय की गयी कुछ सीमाओं के विषय में देश में कानून बनाने का अधिकार है । **संप्रभुता** शब्द का अर्थ है कि भारत अपने आंतरिक और बाह्य मामलों में पूर्णत: स्वतंत्र है । अन्य कोई सत्ता इसे अपने आदेश के पालन के लिए विवश नहीं कर सकती है ।

भारत ने स्वतंत्र होने के बाद से 1949 में राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वेच्छा से ली थी । अत: भारत की संप्रभुता का उल्लंघन नहीं है । संप्रभुता ऐसी सर्वोच्च एवं शुद्ध सत्ता का धोत्तक है जिस पर किसी आंतरिक या बाहरी सत्ता का कोई नियंत्रण नहीं होता ।

संप्रभुता का शाब्दिक अर्थ वर्तमान वैश्वीकरण की प्रक्रिया में सीमित हो गया है । संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन, अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ, समझौते आदि राज्य पर ऐसे दायित्व डाल देते हैं, उस पर अंकुश लगा देते हैं । जिसमें संप्रभुता शब्दश: सही नहीं मानी जा सकती । संपूर्ण संप्रभुता पर थोड़ी बहुत आँच आती ही है ।

संप्रभुता शब्द का उल्लेख अन्य देशों के संविधानों में भी है । उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया के संविधानों को लें । हमने यहाँ सुस्प्ष्ट रूप से हम **'भारत के लोग'** शब्दावली का प्रयोग किया है । भारत के लोग समग्र संयुक्त रूप से इस संविधान को स्वीकृत, अधिनियमित एवं समर्पित करते हैं। ये सबलोग एक हैं । संप्रभुता भारत के लोगों की हैं न कि अलग-अलग राज्यों की जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान की उद्देशिका में हम संयुक्त राज्य के लोगों का उल्लेख है तथा 13 स्वतंत्र राज्यों के लोगों का उल्लेख इसके प्रथम प्रारूप में किया गया था जो अपेक्षाकृत अधिक परिपूर्ण संघ चाहते थे । उन्होंने एक राष्ट्र के अखण्ड लोगों का उल्लेख नहीं किया ।

अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया में संप्रभुता, संघ अथवा कॉमनवेल्थ तथा राज्यों के बीच बँटी हुई है और प्रत्येक राज्य संविधान द्वारा सौंपे गये क्षेत्र में प्रभुत्व संपन्न है । भारत में संप्रभुता का कोई विभाजन नहीं है । हमारी राष्ट्रीय संप्रभुता अखण्ड एंव अविभाज्य है । कोई भी राज्य या राज्यों का समूह संविधान द्वारा स्थापित संघ से बाहर नहीं जा सकता । इससे भी उपर यह व्यवस्था की गई है कि आपात स्थितियों के दौरान संघ राष्ट्रीय हित में राज्यों के अधिकार क्षेत्र को लाँघ सकता है । अनुच्छेद 249 के अधीन राज्य-सूची में समाविष्ट विषयों पर कानून बना सकता है । हमारे देश की कार्यप्रणाली में संप्रभुता भारत के लोगों में निहित है । संघ तथा राज्यों के सभी अंग अपनी शक्ति भारत के लोगों से ही प्राप्त करते हैं ।

2.2.3 प्रजातांत्रिक एवं धर्मनिरपेक्ष नीति (Democractic and Secular Policy)

जनतंत्र 'डेमोक्रेसी' (Democracy) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है । अंग्रेजी के Democracy शब्द की उत्पत्ति दो ग्रीक शब्दों - डेमोस और क्रेसी (Demos and Cracy) से हुई है । डेमोस का अर्थ है - जनता और क्रेसी का अर्थ है शासन । इस प्रकार इसका शब्दिक अर्थ हुआ - जनता के हाथ में निहित शक्ति । अमेरिका के पूर्व महान राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपने विचार दिये - "लोकतंत्र शासन की वह प्रणाली है जिसमें जनता का शासन, जनता द्वारा और जनता के लिए होता है ।

"Democracy is the government of the people, by the people and for the people."

जनतंत्र से धारणा होती है कि राज्य, जनता, चुनाव, संसद आदि का निर्माण करना । जनतंत्र को सफल बनाने के लिए इसके सिद्धांतों तथा मूल्यों का प्रयोग जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सभी क्षेत्रों में किया जाना चाहिए ।

आर्थिक जनतंत्र में राज्य की आर्थिक शक्ति किसी विशिष्ट वर्ग या कुछ पूंजीपतियों के हाथों में न होकर जनता के हाथों में होती है । अर्थात् देश की आर्थिक व्यवस्था में प्रत्येक नागरिक का समान रूप से भाग होता है । इस अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग पर बल दिया जाता है । इस व्यवस्था में किसी भी व्यक्ति के आर्थिक शोषण की संभावना नहीं रहती है क्योंकि उत्पति के समस्त साधनों पर जनता का अधिकार होता है । सामाजिक जनतंत्र में प्रत्येक आधार जैसे - लिंग, रंग, रूप, जाति, धर्म, वर्ग आदि एकसमान माना जाता है । समाज के प्रत्येक नागरिक के साथ बर्ताव भेद-भाव रहित किया जाता है । नागरिकों को सामाजिक जनतंत्र के अंतर्गत प्रयोग के अवसर प्रदान किये जाते हैं । उसमें प्रत्येक व्यक्ति के आदर के साथ-साथ भाईचारे एवं आपसी सहयोग की भावना होनी चाहिए ।

जनतंत्र की परिभाषाएँ (Definition of Democracy)

"जनतंत्र जनता की सरकार है ।" - **अरस्तु**

"A Government by the many" — **Aristotle**

"जनतंत्र वह सरकार है जिसमें सब भाग लेते हैं ।" - **सीले**

"Democracy is a government in which everybody has to share" — **Seelay**

धर्मनिरपेक्ष नीति (Secular Policy)

संविधान के अनुसार सरकारी विद्यालयों में किसी धर्म की शिक्षा न दी जाए परंतु यह उचित नहीं है क्योंकि धार्मिक शिक्षा पर एक ओर प्रतिबंध लगाया गया है वहीं दूसरी ओर नैतिक शिक्षा के विषय में कुछ भी नहीं कहा गया है । संविधान में वर्णित है कि किसी भी अल्पसंख्यक संस्था पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । सर्वप्रथम **जॉर्ज जेकब हालीडेक** द्वारा सेकुलरिज्म (Secularism) शब्द का प्रयोग किया गया था । जिसका अर्थ है वर्तमान स्थिति । धर्मनिरपेक्ष राज्य वह राज्य होता है जिसकी ओर से किसी धर्म विशेष का प्रचार-प्रसार या नियंत्रण नहीं किया जाता है और वह धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास रखते हुये सभी नागरिकों को बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के समान सुविधा प्रदान करता है । धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है सभी धर्मों के प्रति समभाव या आदर रखना और सभी को समान दृष्टि से तार्किक आधार पर विश्लेषित करना ।

"हम सभी धर्मों एवं विश्वासों को समान आदर प्रदान करते हैं अर्थात् हम सर्वधर्म समभाव में आस्था रखते हैं ।" - **महात्मा गाँधी** ("We believe in sarva dharma sambhava having equal regard for all traits and creeds" — **Mahatma Gandhi)**

धर्मनिरपेक्षता के लक्षण (Characteristics of Secular Policy)

- **बुद्धिवाद का विकास (Development of Intellecutalism) :** धर्मनिरपेक्षता के कारण प्रत्येक घटना के लिए धर्म पर आश्रित होने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है । आजकल तार्किक बातों एवं व्यवहारों को ही उचित माना जाता है ।
- **धार्मिकता में न्यूनता (Deficiency in Religiousity) :** धर्मनिरपेक्षता के कारण पहले की अपेक्षा अब धार्मिक संस्थाओं का महत्व कम होने लगा है । आजकल धर्म के नाम पर उच्च स्तर या निम्न स्तर निर्धारित नहीं किया जाता, शिक्षा को प्रमुखता दी जाती है ।
- **विभेदीकरण की वृद्धि (Increase of Differentiation) :** पहले प्रत्येक घटना के पीछे धर्म की आड़ ली जाती थी । आजकल प्रत्येक घटना के अलग-अलग कारणों की छान-बीन की जाती है । इस कारण विभेदीकरण की मात्रा बढ़ती जा रही है ।
- **समानता (Equality) :** भारत में पहले धर्म, जाति, लिंग एवं संप्रदाय आदि के आधार पर परस्पर भेद-भाव होता था । धर्मनिरपेक्षता के वातावरण के कारण आजकल यह भेद-भाव समाप्त हो गया है । सभी धर्म के लोगों को अपने-अपने विशिष्ट क्षेत्रों में समान अवसर सुलभ हो जाते हैं ।
- **वैज्ञानिक अवधारणा (Scientific Concept) :** धर्मनिरपेक्षता एक वैज्ञानिक अवधारणा है । धर्मनिरपेक्षता तार्किक अवधारणा पर बल देती है ।

2.2.4 स्वतंत्रता (Liberty)

हमारा संविधान प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता का अधिकार देता है । संविधान के अनुच्छेद 19 से 22 तक स्वतंत्रता के अधिकारों का वर्णन किया गया है । जिसके अनुसार उन्हें भाषण देने, विचार प्रकट करने, कहीं भी घूमने, संपत्ति खरीदने व बेचने व किसी भी व्यापार को चुनने की स्वतंत्रता है । परंतु इन पर तब बंधन भी लगाये जा सकते हैं जब इससे किसी संघ या संस्था को अशांति फैलाने का डर हो या देश की प्रभुसत्ता या अखण्डता के लिए खतरा पैदा हो ।

शिक्षा की दृष्टि से यदि देखा जाए तो इसी संवैधानिक मूल्य के अनुसार देश में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उचित शिक्षा प्राप्ति हेतु स्वतंत्र है । राज्य के फण्ड द्वारा संचालित शैक्षिक विद्यालयों में किसी भी धर्म का शिक्षण नहीं दिया जा सकता है तथा किसी को भी अपने धर्म के कारण किसी सार्वजनिक संस्था में प्रवेश से नहीं रोका जायेगा ।

शिक्षा में इसी संवैधानिक मूल्य का अनुशरण करते हुये संविधान की धारा 21A द्वारा शिक्षा के अधिकार को भी लागू किया गया है, जिसके अनुसार राज्य का यह कर्त्तव्य है कि राज्य प्रत्येक बच्चे को 6 से 14 वर्ष तक शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध करायेगा । अत: इस कानून के अनुसार सभी को समान रूप से शिक्षा का अधिकार मिल गया है ।

2.2.5 समानता (Equality)

संविधान में निहित यह संवैधानिक मूल्य देश के कानून के सम्मुख सबको बराबर मानता है । इसके अनुसार प्रत्येक नागरिक को कानून से संरक्षण मिल सकता है तथा कानून किसी भी नागरिक के साथ जाति, वर्ग या धर्म के आधार पर भेद-भाव नहीं कर सकता है । समता के इस अधिकार को व्यक्ति तभी व्यवहार में ला सकता है जब वह पूर्ण शिक्षित हो ।

जहाँ तक शिक्षा की बात है, शिक्षा के क्षेत्र में समदृष्टि (Equity) बनाम समानता (Equality) एक बड़े दार्शनिक विश्लेषण का विषय है । विद्वानों की राय में हर व्यक्ति अपने जन्मजात गुणों और योग्यताओं, सामाजिक, आर्थिक स्तर व अन्य मनोसामाजिक कारकों के फलस्वरूप एक-दूसरे से भिन्न होता है, जिसका सीधा अर्थ है कि वे अपनी उपलब्धियों में भी समान नहीं हो सकते । सभी अर्थों में समान बनाना न तो संभव है और न ही वांछित है । मानव जाति न तो अपने जन्मजात गुणों एवं प्रतिभाओं के मामले में समान होती है और न हीं अभिप्रेरणा के मामले में । किन्तु मानवीय, सामाजिक और जनतांत्रिक विचारधारा के अनुसार सभी मनुष्य समान रूप से समाज की जिम्मेदारी और परवाह के सुपात्र हैं ।

अरस्तु ने कहा है - "The only stable state is the one in which all men are equal before the law."

शिक्षा के संबंध इसी संवैधानिक मूल्य के आधार पर ही 'शैक्षिणक अवसरों की समानता' की संकल्पना कोठारी आयोग ने स्कूली स्तर के लिए की व 'समान विद्यालय प्रणाली' की बात कही । हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी इसी संवैधानिक मूल्य के आधार पर एक निश्चित स्तर तक हर शिक्षार्थी को बिना किसी जाति, धर्म, स्थान या लिंग भेद के लगभग एक जैसी अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने की घोषणा की थी ।

2.2.6 भ्रातृत्व/बन्धुत्व (Fraternity)

संविधान में निहित इस मूल्य द्वारा राष्ट्र की एकता व व्यक्ति की गरिमा को मान्यता दी गयी है । स्वतंत्रता, समता तथा न्याय के मूल्य तो भारतीय संविधान में निहित हैं ही, परंतु एक व्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरे की स्वतंत्रता के बीच में रूकावट भी बन सकती है तो इस दिशा में 'स्वतंत्रता' का अधिकार अनुमान्य नहीं की जा सकती है । इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे संविधान में व्यक्ति की मान-मर्यादा को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है, किन्तु यह राष्ट्र की एकता के बीच में रूकावट नहीं बनना चाहिए और इसके लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुछ सीमा तक अंकुश अवश्य होना चाहिए ।

शिक्षा का कार्य नई पीढ़ी को इसी बंधुत्व के मूल्य से परिचित कराना है कि बंधुत्व हमारे संविधान का

अभिन्न अंग है । अतः शिक्षा द्वारा हमारी चेष्टा होनी चाहिए कि एक कल्याणकारी राज्य का निर्माण हो, जिसमें अधिकतम व्यक्ति अधिकतम प्रगति कर सकें ।

हमारी शिक्षा के उद्देश्यों में संविधान के चार आदर्श संवैधानिक मूल्य न्याय, स्वतंत्रता, समता तथा बन्धुत्व वास्तव में इस कारण शामिल किये गये कि सामाजिक असमानताएँ, आर्थिक विभेद तथा राजनीतिक विशेषाधिकार समाप्त किये जा सकें । हमारे संविधान में यह स्पष्ट किया गया कि कानून के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का स्तर बराबर है । किसी को भी न्याय से वंचित नहीं रखा जाएगा । प्रत्येक को विचारों की, अभिव्यक्ति की, अपनी आस्था और विश्वास में रहने की स्वतंत्रता होगी तथा प्रत्येक की आत्म-प्रतिष्ठा को मान्यता दी जाएगी । इन सभी का शिक्षा की दृष्टि से बहुत महत्व है ।

2.2.7 न्याय (Justice)

न्याय का तात्पर्य किसी अदालत द्वारा किये जानेवाले न्याय से नहीं है, बल्कि न्याय की अवधारणा कुछ विस्तृत रूप में हमारे संविधान द्वारा अपनायी गयी है । यह सब व्यक्तियों के बीच में तथा व्यक्ति तथा राज्य के बीच में न्यायपूर्ण संबंधों की ओर केन्द्रित है । संविधान न्याय को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में प्रदान करने पर बल देता है क्योंकि इन सभी क्षेत्रों के न्याय से ही शिक्षा का अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त हो सकता है ।

(क) सामाजिक न्याय (Social Justice)

सामाजिक न्याय से तात्पर्य है समाज में असमानताओं को दूर करना तथा सामाजिक समता की स्थापना करना । यह प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा द्वारा समाज में उचित स्थान प्राप्त करने का विश्वास दिलाता है तथा इस समान स्तर को प्राप्त करने में आनेवाली कठिनाईयों को दूर करने की प्रेरणा भी देता है । सामाजिक न्याय को प्रभावी बनाने हेतु ही संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि राज्य किसी भी नागरिक में धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग भेद, या जन्म स्थान के आधार पर विभेद नहीं करेगा तथा इसी प्रकार व्यक्ति को इन सभी आधारों पर राज्य की किसी भी सेवा में नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं समझा जाएगा ।

यदि हम शिक्षा में भी सामाजिक न्याय के मूल्य का अनुसरण करते हैं तो हमें अपनी शैक्षिक संस्थाओं का संगठन इस प्रकार करना चाहिए कि उनके दरवाजे देश के किसी भी नागरिक के लिए हमेशा खुले रहें । हमारे राष्ट्र में कोई भी शैक्षिक संस्था जो राज्य द्वारा संचालित है, वह किसी विशेष धर्म, जाति या प्रजाति या क्षेत्र के लिए ही केवल आरक्षित नहीं की जा सकती है । अतः इस संवैधानिक मूल्य के अनुसार विद्यालयों में किसी भी प्रकार का भेदभाव समाज के विभिन्न वर्गों या जातियों में नहीं किया जा सकता है ।

(ख) आर्थिक न्याय (Economical Justice)

आर्थिक न्याय से तात्पर्य है कि प्रत्येक नागरिक को संपत्ति अर्जित करने का, रखने का और उपयोग करने का अधिकार है एवं वह कोई भी व्यवसाय अपने विकल्प के अनुसार अपना सकता है । शिक्षा के क्षेत्र में यदि हम सामाजिक न्याय की बात करें तो इसका अभिप्राय है कि राज्य किसी को किसी भी प्रकार की जीविका चुनने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है । अतः उसका कार्य है कि वह सभी प्रकार के व्यवसायों हेतु उचित शिक्षण-प्रशिक्षण की व्यवस्था करे तथा सभी को अपनी मर्जी के अनुसार व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता प्रदान करे तथा उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार प्रशिक्षण के अवसर दे ।

(ग) राजनैतिक न्याय (Political Justice)

प्रत्येक व्यक्ति जो 18 वर्ष से अधिक आयु का हो, उसे वोट देने का अधिकार है । वह राज्यसभा या लोकसभा के लिए अपने प्रतिनिधि का चुनाव कर सकता है । शिक्षा की दृष्टि से भी यह प्रावधान महत्वपूर्ण है क्योंकि इस अधिकार ने शिक्षा व शिक्षकों के उपर जनतंत्र के लिए उत्तम नागरिकों को बनाने का उत्तरदायित्व डाल दिया है, ताकि वोट के अधिकार का दुरूपयोग न हो सके । इसी प्रकार इस संवैधानिक मूल्य के अनुसार प्रौढ़ों को भी शिक्षा देने का अधिकार मिल गया जिससे प्रौढ़ शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा, खुली शिक्षा, ओपेन स्कूल प्रणली को भारी बल मिल गया ।

2.3 सारांश (Summary)

संविधान के प्रस्तावना में मूल उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को स्पष्ट किया जाता है । यह संविधान की आत्मा, कुंजी तथा मानदण्ड है । संप्रभुता शब्द का अर्थ है कोई भी देश अपने आंतरिक और बाह्य मामलों में स्वतंत्र है । कोई भी अन्य सत्ता इसे अपने आदेश के पालन के लिए विवश नहीं कर सकती है । जनतंत्र को सफल बनाने के लिए इसके सिद्धांतों तथा मूल्यों का प्रयोग जीवन के आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा शैक्षिक सभी क्षेत्रों में किया जाना चाहिए । धर्मनिरपेक्षता व्यक्ति को बिना किसी भेद-भाव के समान सुविधा प्रदान करता है । इसमें स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व एवं न्याय का भी वर्णन किया गया है जिससे जनता उसके आधार पर अपना जीवन आसानी से तथा नियमित रूप से व्यतीत करते हैं ।

2.4 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. जनतंत्र से आप क्या समझते हैं? प्रजातांत्रिक शिक्षा के विचार तथा उद्देश्यों का विवेचना करें ।
   What do you mean by Democracy? Discuss the view and aims of Democratic Education.
2. संवैधानिक पारितोष के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय का वर्णन करें ।
   Describe the Social, Economic and Political Justice of the Constitutional Promise.
3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना के आदर्शों की विवेचना करें ।
   Discuss the Ideals contained in the preamble of the Indian Constitution.

2.5 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. पचौरी, गिरीश (2012) : शिक्षा के सामाजिक आधार, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ ।
2. कोठारी, ममता (2012) : शिक्षा और समाज, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
3. अग्रवाल, जे०सी० (2010) : शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक एवं आर्थिक आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
4. सक्सेना, स्वरूप, एन०आर० (2013) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ ।
5. मदान, पूनम, पाण्डेय रामशकल (2017) : समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।

❒ ❒ ❒

इकाई : 3 विविधता के संदर्भ में भारतीय समाज की समझ
Understading Indian Society with Reference to Diversities

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

3.2 भारतीय समाज की संरचना (Structure of Indian Society)

3.3 सामाजिक विविधता की अवधारणा (Concept of Social Diversities)

3.4 विविधता के सामाजिक आर्थिक पहलू (Aspect of Socio-Economic Diversity)

3.5 भारतीय संविधान में सामाजिक-आर्थिक कमजोर वर्ग एवं विशेष रूप से पिछड़ी जाति एवं पिछड़े वर्गों के हितों के बचाव के लिए सुनिश्चित संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय (Constitutional protective measure for the protection of the interests of the socio-economically weaker sections and especially the bacward caste and backward classes in the Indian Constitution)

3.6 शिक्षा में केन्द्रीय व राज्य सरकार की भूमिका (Role of Central and State Government in Education)

3.7 सारांश (Summary)

3.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

3.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

3.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ भारतीय समाज की संरचना को समझ सकेंगे ।

- ❖ सामाजिक विविधता को जान सकेंगे ।
- ❖ सामाजिक विविधता को अलग-अलग आयामों में जान सकेंगे ।
- ❖ भाषागत, धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक पहलूओं को विस्तारपूर्वक समझ सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

3.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक विविधता नामक इस इकाई में विद्यार्थियों के सामाजिक संरचना और उससे सम्बन्धित पहलूओं से विस्तृत रूप से अवगत कराया गया है । यही नहीं इस पाठ में सामाजिक-संरचना के विभिन्न पहलूओं के अन्तर्गत भाषायी विविधता, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलूओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है । सामाजिक-आर्थिक पहलूओं से जुड़े आयामों उससे उत्पन्न परिस्थितियों के सुधारात्मक प्रयासों को भी बताने का प्रयास किया गया है । चूंकि व्यक्ति समाज का हिस्सा है । अतः सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न समस्या से उन्हें सामना करना पड़ता है । विभिन्न समस्याओं का सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव व्यक्ति पर क्या पड़ता है, इसकी भी चर्चा है ।

अतः इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

3.2 भारतीय समाज की संरचना (Structure of Indian Society)

भारत एक विशाल जनसंख्या वाला देश है । यहाँ की सामाजिक संरचना काफी पुराना है । यद्यपि हमारा देश 15 अगस्त, 1947 ई० को स्वतंत्र हुआ, लेकिन इसका इतिहास 5000 वर्ष से भी अधिक पुराना है । भारत की सभ्यता विश्व की पुरानी सभ्यताओं में से एक है । भारत का लिखित इतिहास 2500 वर्ष पुराना है । भारत अपनी गौरवमयी अतीत के लिए विश्व में प्रचलित रहा । भारत अपने स्वर्णिम इतिहासों के गाथा विभिन्न साक्ष्यों के माध्यम से आज भी बखान कर रहा है ।

स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज (Indian Society before Independence) : स्वतंत्रता से पूर्व भारतीय समाज कई स्तर पर बटा हुआ था । समाज की संरचना मुख्य रूप से चार भागों में विभाजित थी :

ब्राह्मण - अध्यापक/बुद्धिजीवी ।

क्षत्रिय - योद्धा या समाज के रक्षक ।

वैश्य - व्यापारी जो समाज की दिनचर्या की वस्तुएँ उपलब्ध कराते हैं ।

शूद्र - सेवक जो समाज की विभिन्न प्रकार की सेवा करते हैं ।

मनु जो अपने समय के एक सामाजिक, दार्शनिक और अर्थशास्त्री थे, उन्होंने जो समाज के स्वभाव और संरचना का वर्णन किया है, वह उस समय के अनुसार है और संगत है । विस्तृत रूप से कहा जाए तो प्रगतिशील अर्थव्यवस्था और समाज को जीवित रखने के लिए व्यवसायिक क्रियाकलापों को चार भागों में विभाजित करना आवश्यक था । "अरस्तु" ने भी जो एक महान ग्रीक दार्शनिक थें, उन्होंने भी सशक्त समाज और प्रगतिशील अर्थव्यवस्था को बनाए रखने के लिए समाज को चार भागों में बाटने का समर्थन किया ।

भारतीय समाज अपनी सामाजिक संरचनाओं की वजह से अपने शासनिक इकाई को सुचारू रूप से चलाने

में मददगार साबित हो रहा है । हालांकि इसका परिणाम नकारात्मक भी पड़ा । इसके नकारात्मक परिणाम का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि संविधान में इसके लिए अलग से अनुच्छेद बनाने की आवश्यकता पड़ गयी ।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज (Indian Society after Independence) : भारत सदियों तक विदेशियों के हाथों गुलाम रहने पर विवश रहा और उन विदेशी आक्रमणकारियों का वर्चस्व और प्रभाव भारतीय संस्कृति पर व्यापक रूप में पड़ा । आजादी की लंबी लड़ाई के बाद अन्ततः भारत को 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता मिली । भारत और पाकिस्तान अधिराज्य में बंट गए । देश के विभाजन का परिणाम लोगों को हिंसा, दंगा और अलगाव के रूप में भुगतने पड़े ।

स्वतंत्र भारत अपने संविधान की शक्ति के कारण सफलतापूर्वक अपनी शासन व्यवस्था को चला रही है । देश आज तरक्की के नित्य नए परचम लहरा रही है ।

3.2.1 भारतीय समाज की संरचना के पहलू (Aspects of Strcture of Indian Society)

भारतीय समाज को मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों में विभाजित किया जा सकता है :

जाति (Caste) के आधार पर

ब्राह्मण — क्षत्रिय — वैश्य — शूद्र

धर्म (Religion) के आधार पर

हिन्दू — इस्लाम — इसाई — सिक्ख — अन्य

वर्ग (Class) भारतीय आर्थिक और सामाजिक स्तर पर

उच्च वर्ग — मध्यम वर्ग — निम्न वर्ग

व्यवसाय (Business) के आधार पर

व्यापारी वर्ग — सेवा वर्ग — श्रमिक वर्ग

भाषा (Language) के आधार पर विविधता इस प्रकार है :

- द्रविड़ समूह: तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ भाषाएँ
- यूरोपीयन समूह: अंग्रेजी एवं फ्रेंच भाषाएँ
- इंडो-आर्यन समूह: हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, संस्कृत, बंगाली, उड़िया, बिहारी, राजस्थानी, आसामी, सिंधी और कश्मीरी भाषाएँ

इस प्रकार भारतीय समाज की संरचना को उपरोक्त आधार पर विभाजित कर सकते हैं । इसी संरचना के कारण हमें भाषा, धर्म, जाति, वर्ग और परम्पराओं का सामाजिक और शैक्षणिक स्तर पर सम्मान करना चाहिए । हम शैक्षणिक परिवेश में अक्सर इस प्रकार की विविधताओं का अनुभव करते हैं । परन्तु एक शिक्षक होने के नाते हमें इन विविधताओं की महत्ता को और इसके सकारात्मक पहलूओं को बच्चों को बताना चाहिए और एक समावेशी माहौल में शिक्षा प्रदान करनी चाहिए ।

3.3 सामाजिक विविधता की अवधारणा (Concept of Social Diversity)

विविधता शब्द असमानताओं के बजाय अंतरों पर बल देता है । सामाजिक विविधताओं से तात्पर्य समाज में अलग-अलग प्रकार के लोगों के रहन-सहन और विचारधारा के होने से लगा सकते हैं । उपरोक्त संरचना से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संरचना में जाति, धर्म, भाषा, वर्ग, रहन-सहन के आधार पर विभिन्नता है । अलग-अलग जाति, वर्ग और धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं । जिनकी विचारधारा और मान्यताएँ अलग-अलग हैं । अलग-अलग विभिन्नता के कारण हमारे देश में सामाजिक रूप से दो वर्ग उभर कर सामने आए हैं । एक उच्च वर्ग वाले जिनकी समाज में सम्मानित स्थिति है । राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक वर्चस्व इनका निम्न और साधनहीन वर्ग पर कायम रहता है । जिसकी वजह से हमारे समाज में एक ऐसे वर्ग का उदय हुआ जिनको हम अछूत, दलित, कमजोर और शोषित वर्ग के नाम से जानते हैं । समय के साथ-साथ इनकी स्थिति और भी दयनीय होती गई । जिसका ज्वलन्त प्रमाण हम इतिहास के पन्नों में हरिजन संघ और स्पृश्यता कानून आदि के रूप में देखते हैं । जिसको हमारे संविधान निर्माताओं ने इस समस्याओं से निपटने के लिए अलग से आयोग बनाने की सिफारिश की और अलग-अलग अनुच्छेदों में इनको समाज में बेहतरी के लिए कोशिश की गई । स्वतंत्र भारत निर्माताओं ने देश के कमजोर वर्ग का विशेष ध्यान रखा । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के नेताओं ने लोकतांत्रिक समाज की स्थापना के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए । मौलिक अधिकारों के तहत समानता के अधिकार के द्वारा समाज के विसंगतियों को दूर करने का प्रयास किया गया । अल्पसंख्यक और कमजोर वर्ग के हितों की रक्षा का विशेष ध्यान रखा गया । कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए पंचवर्षीय योजना, सामुदायिक विकास योजना, समाज कल्याण कार्यक्रम, अंत्योदय योजना आदि चलाया गया । अनेक प्रयासों के बाद भी आज भी विषमताएँ पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी हैं ।

इस प्रकार सामाजिक विविधता से आशय यह है कि समाज के संरचना में रहने वाले लोगों की विचार धाराएँ, मान्यताएँ और रीति-रिवाज में भिन्नता से हैं जो सभी व्यक्तियों को एक-दूसरे से अलग करता है, लेकिन यही भिन्नता कहीं न कहीं सभी के लिए आवश्यक है तभी सभी लोगों की आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं ।

3.3.1 भाषा के आधार पर विविधता (Diversity at the level of Language)

मानव विकास में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । समाज में ही हर तरह का विकास संभव है । सामाजिक प्राणी होने में भाषा एक सशक्त भूमिका निभाती है । अगर हम कहें कि मानव की धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी प्रकार की संस्थाएँ तथा व्यवहार भाषा के कारण ही संभव है तो ये गलत नहीं होगा । भाषा ही है जो हमारी संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करती है । सिर्फ संस्कृति को ही नहीं बल्कि अपने भावों, संवेगों, अनुभवों एवं ज्ञान को एक समाज से दूसरे समाज में हस्तान्तरित करता है । मानव चिंतन की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भाषा है ।

भारत एक बहुभाषी शब्द है । अर्थात् भारत में विभिन्न भाषाओं और बोलियों को बोलने वाले लोग रहते हैं । भारत की विशाल जनसंख्या अलग-अलग क्षेत्र, समाज एवं समुदाय में बंटा है । अलग-अलग क्षेत्र, समाज और समुदाय के अपने रहन-सहन, आचार-विचार और भाषाएँ भी उनकी अपनी हैं । भाषा के आधार पर एक सर्वेक्षण किया गया जिसके आधार पर यहाँ लगभग 179 भाषाएँ तथा 544 बोलियां प्रचलित हैं ।

भारतीय भाषाओं और बोलियों के अध्ययन में **"जॉर्ज ग्रियसन"** का नाम उल्लेखनीय है । कुछ विद्वानों का मानना है कि भारत में 1650 भाषाएँ एवं बोलियां बोली जाती है । ग्रामीण क्षेत्र में एक कहावत भाषा के लिए प्रचलित है कि "हर पाँच कोस पर पानी और वाणी बदल जाती है ।"

भाषा के साथ-साथ सांस्कृतिक विशेषताओं में भी अंतर देखने को मिलता है । "श्रीमती कार्वे" का एक मत है कि यादि भारतीय संस्कृति को समझना चाहते हैं तो हमें जाति एवं परिवार के साथ-साथ यहाँ के भाषायी क्षेत्र का भी अध्ययन करना होगा । इतना ही नहीं भाषा को धर्म से भी जोड़ दिया गया । जैसे - हिन्दी और संस्कृत हिन्दूओं की भाषा, अरबी एवं उर्दू इस्लामों की, गुरूमुखी सिखों की, प्राकृत एवं पाली बौद्धों की भाषा है ।

"इरावती कार्वे" के अनुसार, भारतीय समाज में तीन भाषायी परिवारो की भाषाएँ बोली जाती हैं, जिसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :-

3.3.2 इण्डो-यूरोपीय भाषायी परिवार

भारत में 78.4 फीसदी लोग आर्य भाषा समूह की बोली बोलते हैं। इसमें पंजाबी, सिंधी, बिहारी, बंग्ला, असमिया, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, उड़िया, कश्मीरी इत्यादि भाषाएँ सम्मिलित हैं ।

3.3.3 द्रविड़ भाषायी परिवार

भारत में करीब 19 प्रतिशत लोग द्रविड़ भाषा बोलते हैं । इसमें तेलगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम, कोडगू, गोंडी इत्यादि भाषाएँ आती हैं ।

3.3.4 आस्ट्रो-एशियाई भाषायी परिवार

इसमें मुंगरी, बौन्दो, जुआंग, भूमिया, संथाली, खासी इत्यादि भाषाएँ आती हैं ।

भारतीय संविधान में वर्त्तमान में 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है । वे हैं - असमिया, बंग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिन्धी, तमिल, तेलगू, उर्दू, कोंकणी, मणिपूरी, नेपाली, मैथली, संथाली, वोडो, खासी ।

कुछ मुख्य भारतीय भाषाओं की चर्चा इस प्रकार है, जैसे -

हिन्दी - यह भाषा इण्डो-आर्यन भाषा परिवार की एक प्रमुख भाषा है । जिसकी लिपि देवनागरी है । इसे बोलने वाले लोग 33.72 करोड़ अर्थात् कुल जनसंख्या का लगभग 39.85 प्रतिशत भाग है । उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार एवं झारखण्ड प्रांतों में हिन्दी भाषा का प्रचलन मुख्य रूप से है । हिन्दी भाषा का प्रयोग कई रूपों में हम करते हैं । जिसमें मुख्य दो रूप हैं, जैसे उत्तरी भारत के पश्चिमी भागों में हिन्दी के हिन्दुस्तानी, ब्रज भाषा, खड़ी बोली, कन्नौजी, बुन्देली एवं बॉगरन रूप देखने को मिलते हैं । जबकि पूर्वी भागों में अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी बोलियाँ मुख्य हैं । संविधान के अनुच्छेद 243(1) में हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकार किया गया है जिसकी लिपि देवनागरी होगी।

उर्दू - यह भाषा अरबी, फारसी और हिन्दी तीनों के मिश्रण से बनी है । उर्दू भाषा का भारत में प्रचलन मुस्लिम शासकों के समय से प्रचलित हुआ । ऐसे तो इसका प्रयोग दक्षिण भारत में सबसे पहले हुआ था । लेकिन आज उत्तरी भारत में अधिक बोली जाती है । उर्दू भाषा अपनी तहज़ीब के लिए जानी जाती है । शेरो-शायरी में हम उर्दू का अधिक उपयोग करते हैं । आज उर्दू को विदेशी भाषा के रूप में नहीं बल्कि हिन्दुस्तान की भाषा का ही हिस्सा माना जाता है ।

बंगला - बंगला मुख्य रूप से बंगाल में बोली जाती है । बंगला भाषा बोलने वाले लोगों की संख्या 6.95 करोड़ अर्थात् 8.22 प्रतिशत है । भाषा की दृष्टि से यह भाषा बहुत ही मधुर और सरल है । इस भाषा में संस्कृत एवं मगधी भाषा के अपभ्रंश शब्दों की बहुलता देखी जाती है । बंगला भाषा में ही रविन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी प्रसिद्ध रचना गीतांजली लिखी है । इस भाषा को समृद्ध करने में कई महान विद्वानों का हाथ है । जैसे - शरत् चन्द्र राय, बंकिम चन्द्र चटर्जी, राजा राम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि ।

असमिया - इस भाषा का प्रयोग असम प्रांत में किया जाता है । इस भाषा को बोलने वालों की संख्या 1.30 करोड़ अर्थात् 1.55 प्रतिशत है । बंगाल और असम दोनों पड़ोसी राज्य की बंगला और असमी भाषाएँ बहुत मिलती-जुलती है । हालांकि दोनों के व्याकरण और उच्चारण में थोड़ा बहुत अंतर है । असमिया साहित्य असम के राजाओं द्वारा प्रचलित किया गया, जिसे संविधान की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है ।

उड़िया - उड़िया भाषा मुख्यत: उड़िसा में बोली जाने वाली भाषा है । इसे करीब 2.8 करोड़ अर्थात् 3.22 प्रतिशत लोगों द्वारा बोली जाती है । इसका व्याकरण और उच्चारण अधिक विकसित नहीं है । यह भाषा भी मग्धी, असमिया और बंगाली का अपभ्रंश शब्द से मिलता है ।

पंजाबी - पंजाबी भाषा की लिपि गुरूमुखी है । पंजाबी भाषा का प्रयोग पंजाब, हरियाणा एवं राजस्थान के उत्तरी भागों में किया जाता है । पंजाबी भाषा बोलने वाली की संख्या 2.3 करोड़ अर्थात् 2.76 प्रतिशत है । इस भाषा को भी पूर्वी और पश्चिमी क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है । पश्चिमी पंजाबी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव है । पूर्वी पंजाबी भाषा लाहौर तथा अमृतसर के आस-पास बोली जाती है ।

सिन्धी - इस भाषा का प्रयोग सिन्ध प्रांत के निवासी करते थे जो अब पाकिस्तान क्षेत्र में आते हैं । भारत विभाजन के समय सिन्ध से भारत आने वाले लोग इस भाषा का प्रयोग करते हैं । वर्त्तमान में इस भाषा का प्रयोग करने वालों की संख्या 21 लाख अर्थात् 0.25 प्रतिशत है । सिन्धी भाषा को संविधान की भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है । सिन्धी भाषा के अन्तर्गत बोलियाँ हैं - सिरैकी, विकोली, थरेली, लासी, लाड़ी और कच्छी ।

मराठी - मराठी भाषा मुख्यत: महाराष्ट्र क्षेत्र में बोली जाती है । इसको बोलने वाले लोगों की संख्या 6.2 करोड़ अर्थात् 7.38 प्रतिशत है । इसमें भी दो तरह की बोलियाँ प्रचलित हैं - कोंकणी तथा हलवी । कोंकणी गोवा प्रान्त में बोले जाते हैं । जबकि हलवी छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में बोली जाती हैं । शिवाजी के शासन काल में इस भाषा को काफी प्रश्रय मिला । इस भाषा का सम्पर्क उत्तरी भारत और दक्षिण भारत के कई भागों में हुआ । आज अन्य भाषाओं पर भी इसका प्रभाव देखने को मिलता है ।

गुजराती - गुजराती भाषा मुख्यत: गुजरात एवं काठियावाड़ में प्रयोग किया जाता है । इस भाषा का प्रयोग करीब 4 करोड़ अर्थात् 4.81 प्रतिशत लोग करते हैं । इस भाषा पर भी अन्य भाषा की तरह हिन्दी और राजस्थानी का प्रभाव है ।

राजस्थानी - राजस्थानी भाषा हिन्दी की ही उपभाषा है, लेकिन इसे अलग भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया । इसके लिए राजस्थानी भाषा में समाचार आदि प्रसारित किए जाते हैं । राजस्थानी भाषा में मालवी, जयपुरी, मारवाड़ी और मेवाती बोलियों का मिश्रण पाया जाता है । प्रारंभ में राजस्थानी बोलियों पर अन्य भाषाओं का भी प्रभाव था । जैसे - ब्रज भाषा, पश्चिमी हिन्दी आदि ।

बिहारी - बिहारी भाषा अधिकांशत: बिहार प्रान्त में बोली जाती है । इसका प्रचलन मग्धी भाषा के अपभ्रंश से हुआ है । इसमें भोजपुरी, मैथिली और मगही तीन बोलियाँ प्रमुख हैं । भोजपुरी उत्तरी भारत की एक प्रमुख भाषा है । मैथिली भाषा उत्तर बिहार में बोली जाती हैं ।

हिमाली - यह भाषा पूर्वी कश्मीर से भूटान तक के पहाड़ी ढलानों में बोली जाती है । इसके भी तीन भाग हैं - पश्चिमी, पूर्वी एवं मध्यम हिमाली । पश्चिमी हिमाली का प्रचलन चम्बा से गढ़वाल एवं कुमायु क्षेत्र तक, मध्य हिमाली गढ़वाल और कुमायु क्षेत्र में पाया जाता है । पूर्वी हिमाली में खसपुरा, गुरखाली और पर्वतीयं भाषाएँ बोली जाती हैं ।

तेलगू - तेलगू भाषा द्रविड़ भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है । इस भाषा का प्रचलन उत्तरी तमिलनाडु, दक्षिणी हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश एवं मैसूर के कुछ भागों में बोली जाती है । इस भाषा को बोलने वालों की संख्या 6.60 करोड़ अर्थात् 7.80 प्रतिशत है । आन्ध्र प्रदेश में ही इस भाषा का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है । तेलगू भाषा के कंबन साहित्य एवं कई अन्य प्रचलित साहित्य इसे सुदृढ़ता प्रदान करता है ।

कन्नड़ - कन्नड़ भाषा को समृद्ध बनाने में जैन लिगांयतो एवं ब्राह्मणों का काफी सहयोग रहा है । इस भाषा का प्रयोग करने वालों की संख्या 3.87 प्रतिशत अर्थात् 3.27 करोड़ है । कन्नड़ भाषा में संस्कृत भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है ।

तमिल - तमिल साहित्य भी काफी समृद्ध रहा है । इसके बोलने वाले लोगों की संख्या 5.3 करोड़ है अर्थात् 6.26 प्रतिशत है । कई महान साहित्य की रचना तमिल भाषा में की गई । जैसे - वैष्णव, शैव और शन्ति आदि ।

मलयालम - मलयालम भाषा तमिल भाषा की एक शाखा है । इस भाषा का प्रचलन केरल प्रान्त में किया जाता है । मलयालम भाषा बोलने वालों की संख्या 3 करोड़ अर्थात् 3.59 प्रतिशत है । इस भाषा पर भी तमिल की भांति संस्कृत भाषा का प्रभाव रहा है ।

संस्कृत - संस्कृत भाषा वैदिक काल से प्रचलित प्राचीन भाषा है । इस भाषा से कई भाषाओं का उद्‌भव हुआ है । जैसे - तमिल, तेलगू, मलयालम, मराठी आदि । इसे देव भाषा भी कहा जाता है । संस्कृत भाषा को संविधान में मान्यता प्रदान की गई है ।

अन्य भाषाएँ - इन भाषाओं के अलावा भी कई अन्य भाषा भी प्रचलित हैं । जैसे - टोडा, मुण्डा, कोरवा, भूमिज, बिरटोर, खरिया, संथाली, मुण्डारी, कोटकू आदि ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक भाषाएँ अस्तित्व में हैं जो भिन्न-भिन्न प्रान्तों को परस्पर अलग कर देती हैं ।

साईमन कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार यहाँ व्यवहार में लाई जाने वाली भाषाओं की संख्या लगभग 222 है । इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में लगभग 545 भाषाएँ व्यवहार में लाई जाती हैं । इन विभिन्न भाषाओं के कारण भारत में विविधता दर्शित होती है । हालांकि भाषायी विविधता के नकारात्मक पहलू यह भी हैं कि ये एक क्षेत्र के लोगों से दूसरे क्षेत्र के लोगों को पृथक करता है । कई बार भाषागत विवाद के कारण क्षेत्रियतावाद को बल मिला । भाषा के आधार पर कई बार विवाद पैदा हुआ और अलग क्षेत्र बनाने की माँग की गई । कई क्षेत्र भाषागत पृथकता के कारण अलग हुए । जैसे - हैदराबाद, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्र भाषागत विविधता के कारण अलगाव वाद को जन्म दिया है ।

भाषागत समस्या के समाधान के लिए सभी भाषाओं को फलने-फूलने का अवसर देकर राष्ट्रभाषा को पूरे भारत में लागू किया जाए । राजनीति दल अपने संकीर्ण मानसिकता को त्याग कर राष्ट्रीय भावना से कार्य करें तो कभी भाषायी विवाद नहीं होंगे ।

3.3.5 संस्कृति के संदर्भ में विविधता (Diversity at the level of Culture)

भारत एक विविधताओं वाला देश है । यहाँ की विभिन्नताएँ हमारे समाज की खूबसूरती है । हमारे समाज में विधमान विभिन्न समुदायों का समूह है । अलग-अलग समूह और समुदाय के लोगों के भाषा, धर्म, रहन-सहन खान-पान, वेष-भूषा, रीति-रिवाज, परम्पराएँ अलग-अलग होती हैं । अलग-अलग प्रदेश की परम्पराओं में देखते हैं कि कहीं विवाह प्रणाली अलग है अर्थात् अलग-अलग समाज की अलग-अलग रस्मों-रिवाज में वैवाहिक कार्य । इतना ही नहीं अलग-अलग समाज के धार्मिक संस्कार भी अलग-अलग हैं । जनजातीय समुदायों में अलग-अलग उपजातियाँ भी हैं । उनके रीति-रिवाज और मान्यताएँ भी अलग हैं । कुछ जाति समुदायों की व्यक्तिगत लोकाचार हैं । जैसे विवाह, मुण्डन, अन्नप्रासन, मृत्यु संस्कार आदि । इनके संस्कारों के साथ-साथ उनके लोकगीत, लोक नृत्य भी अलग-अलग शैली में प्रचलित होते हैं । इसलिए भारतीय संस्कृत को काफी समृद्ध माना गया है । शायद ही कोई देश में एक साथ इतनी सांस्कृतिक विविधताएँ देखने को मिलती है ।

भारत में सदियों तक विदेशी लोगों का शासन रहा । वहाँ की संस्कृति को भारत में आई जिससे भारतीय सांस्कृतिक विकास में उनका भी योगदान है ।

3.3.6 धार्मिक विविधता की अवधारणा (Concept of Religious Diversity)

भारत में धर्म के आधार पर विविधताएँ देखने को मिलती है । पूरे विश्व के धार्मिक अनुयायी भारत में रहते हैं । इसलिए भारत में कई धर्मों को मानने वाले अनुयायी रहते हैं । जैसे - हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई व अन्य । अलग-अलग धर्मों में भी कई सम्प्रदाय हैं, जैसे - हिन्दू धर्म में, शैव, वैष्णव, लिगांयत आदि । इस्लाम में शिया, सुन्नी । ईसाई में प्रोटेस्टेण्ट तथा कैथोलिक । सिक्ख में अकाली और गैर-अकाली । बौद्ध धर्म में हिनयान, महायान । जैन धर्म में श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि प्रमुख सम्प्रदाय हैं ।

भारतीय जनसंख्या में विभिन्न धर्म को मानने वाले लोगों की दशकीय वृद्धि तालिका अग्रलिखित हैं :-

प्रतिशत में

क्रम सं०	धर्म	1961	1971	1981	1991
1	हिन्दू	83·51	82·82	82·63	82·41
2	इस्लाम	10·70	11·20	11·30	11·67
3	ईसाई	02·44	2·59	2·43	2·32
4	सिक्ख	01·79	1·89	1·96	1·99
5	बौद्ध	0·73	0·71	0·71	0·77
6	जैन	0·46	0·40	0·48	0·41
7	पारसी एवं अन्य	0·37	0·41	0·43	0·43

भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है । यहाँ सभी धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं । अलग-अलग धर्म के मानने वालों के संख्या के साथ उनकी विशिष्टता का वर्णन इस प्रकार है :-

3.3.6.1 हिन्दू धर्म (Hindu Religion)

हिन्दू धर्म को भारत का सबसे प्राचीन धर्म माना गया है । वेदों और पुराणों की रचना के समय से ही इसे वैदिक धर्म भी कहा गया । हिन्दू धर्म भारत में 5000 वर्ष पूर्व आर्यों के आगमन के समय से माना गया है । भारत में सबसे अधिक हिन्दू धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं ।

हिन्दू धर्म की अपनी मान्यताएँ और विचार धाराएँ हैं जो इसके वेदों, रचना, पुराणों और महाग्रंथों में परिलक्षित होती हैं ।

हिन्दू धर्म में पाँच महायज्ञों को महत्व दिया गया है, जो निम्नलिखित हैं :-

1. बाह्य यज्ञ 2. देव यज्ञ 3. भूत यज्ञ 4. पितृ यज्ञ 5. मनुष्य यज्ञ

इन पाँच यज्ञों के अलावा 16 संस्कार की भी चर्चा की गई है ।

3.3.6.2 इस्लाम धर्म (Islam Religion)

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मोहम्मद साहब को माना जाता है । इस्लाम का समस्त उल्लेख कुरान में मिलता है । इस्लाम का अर्थ होता है समर्पण अथवा उत्सर्ग जिसका अभिप्राय है अल्लाह की इच्छा के सामने झुकना । वर्त्तमान समय में भारत में इस्लाम धर्म का प्रतिशत 11.67 है । भारत में इस्लाम धर्म का आगमन इस्लाम विदेशी आक्रमणकारियों के समय से माना जाता है । इस्लाम धर्म भी अन्य धर्मों की तरह भारतीय राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी पक्षो को प्रभावित किया । जिसका हम भारतीय संस्कृति में झलक देख सकते हैं ।

इस्लाम धर्म भी एकेश्वर वादी है । कुरान प्रत्येक मुस्लमानों के लिए पाँच कृत्यों को मानने का आदेश देता है । जैसे - (1) कलमा पढ़ना (2) दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ना (3) रमज़ान के महीनों में रोज़ा रखना (4) ज़कात अथवा अपनी वार्षिक आय का चालिसवाँ भाग देना (5) अपने जीवन काल में हज करना ।

इस्लाम धर्म के भी अपनी नियम, विचारधारा है जो सभी अनुयायी मानते हैं ।

3.3.6.3 ईसाई धर्म (Christian Religion)

जनसंख्या की दृष्टि से ईसाई धर्माविम्लबियों की संख्या 1.89 करोड़ है । कुल जनसंख्या में इनका प्रतिशत 2.32 है । ईसाई धर्म का उल्लेख बाईबिल में मिलता है । ईसाई धर्म अपने अनुयायिओं को दस आदेश (Ten Commandments) का पालन करने का निर्देश देता है । ईसाई धर्म भाईचारा, दया, करूणा और सहिष्णुता का पाठ पढ़ाता है । ईसाई धर्म का मानना है कि ईश्वर समय-समय पर जन-कल्याणार्थ पृथ्वी पर अवतारित होते हैं । यह धर्म भी इस्लाम की तरह एकेश्वरवाद पर विश्वास करता है । पाँच अनुष्ठानों द्वारा इसके नियमों को बतलाया गया है । ईसाई धर्म की मुख्य विशेषताएँ हैं :-

- ईसाई धर्म एकेश्वरवाद में विश्वास करता है ।
- ईसाई धर्म ईसा मसीह में विश्वास करने पर जोर देता है ।
- ईसाई धर्म आत्मा की पवित्रता में विश्वास करता है ।
- यह धर्म चर्च में विश्वास करता है, चर्च के माध्यम से ही ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है ।

- ईसाई धर्म पाँच धार्मिक अनुष्ठानों - बपतिस्मा, पुष्किरण, आत्म-निवेदन, पवित्र संचार एवं विवाह में विश्वास करता है ।
- ईसाई धर्म मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करता है ।
- यह समानता तथा भातृत्व की भावना में विश्वास करता है ।

ईसाई धर्म की दो प्रमुख शाखाएँ हैं - कैथोलिक एवं प्रोटेस्टेण्ट । इन दोनों शाखाओं की अपनी विशेषता हैं । जैसे - कैथोलिक धर्म परम्परावादी अर्थात् नियम पालन शुरू की गई है उसे मानना और प्रोटेस्टेण्ट समय के साथ उसमें सुधारात्मक मान्यताओं को प्रमुखता दी है ।

3.3.6.4 सिख धर्म (Sikh Religion)

हिन्दू धर्म की ही एक अलग शाखा के रूप में सिख धर्म भी उभर कर सामने आया । इस धर्म के संस्थापक के रूप में गुरू नानक देव को माना जाता है । सिख धर्म पाखण्ड, अंधविश्वासों और रूढ़ियों को तोड़कर समरसता और सौहार्द को अपनाया । गुरू ग्रंथ साहिब नामक प्रसिद्ध ग्रंथ से सिख धर्म की शिक्षा मिलती है । सिखों के दसवें गुरू श्री गुरू गोविन्द सिंह महाराज हुए । उन्होंने 1705 में गुरू ग्रंथ साहिब को नया रूप दिया ।

इस धर्म में यह बतलाया गया है कि व्यक्ति को मुक्ति के लिए गुरू की शरण में जाना आवश्यक है । 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में सिख धर्म मानने वालों की संख्या 1.8 प्रतिशत है ।

3.3.6.5 बौद्ध धर्म (Buddh Religion)

बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध हैं । जिनका जन्म नेपाल की तराई में कपिलवस्तु के समीप लुम्बिनी गाँव में हुआ । बुद्ध ने जो उपदेश आोर शिक्षा दी वह बौद्ध धर्म के नाम से जानी जाती है । भारत में बौद्ध धर्मावलम्बियों की संख्या करीब 60.30 लाख है जो कुल जनसंख्या का 0.77 प्रतिशत है । बौद्ध धर्म के उदय का मुख्य कारण तात्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को माना जाता है । बौद्ध धर्म एक ऐसा धर्म है जो मध्यम मार्ग पर चलते हुए लोगों के व्यवहारिक जीवन के अनुकूल था । बौद्ध धर्म रूढ़िवादी कर्मकाण्डों के बदले सत्य आचरण, शुद्ध विचार, शुद्ध कर्म और शुद्ध भावना को अधिक तव्वजो देता है ।

बौद्ध धर्म की विशेषताएँ चार आर्य सत्य हैं :-

(1) जीवन दु:खमय है । (2) प्रत्येक दु:ख का कारण होता है । (3) दु:ख से छुटकारा प्राप्त किया जा सकता है । (4) दु:ख से छूटने का मार्ग भी है जिसे दु:ख निरोधगामिनी प्रतिपक्ष कहते हैं ।

बौद्ध धर्म में मोक्ष प्राप्ति को जीवन का मुख्य लक्ष्य बताया गया है ।

बौद्ध धर्म पुर्नजन्म में विश्वास नहीं करता है बल्कि यह स्वीकार करता है कि आत्मा शरीर की तरह नश्वर है । इस धर्म की लोकप्रियता इसी से लगाया जा सकता है कि भारत ही नहीं इसे मानने वाले की संख्या भारत के बाहर भी है । जैसे चीन, जापान, मलाया एवं तिब्बत आदि ।

3.3.6.5 जैन धर्म (Jain Religion)

बौद्ध धर्म के समकालीन जैन धर्म का उदय हुआ था । इसके संस्थापक जैन महावीर थे । जैन धर्म के

संस्थापक को तीर्थंकर कहा जाता है । महावीर जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थकर थे । महावीर का जन्म 599 ई०पू० वैशाली के समीप कुण्डग्राम में हुआ था । तीस वर्ष की कठोर तप के उपरान्त उन्हें कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति हुई । भारत में जैन अनुयायिओं की संख्या करीब 34 लाख है जो सम्पूर्ण जनसंख्या का 0.41 प्रतिशत है ।

जैन धर्म के भी अन्य धर्म की तरह अपने कुछ सिद्धांत हुए । जैसे वे अनेकात्मवाद में विश्वास करते हैं। कर्म फल में भी विश्वास करते हैं । बौद्ध धर्म की तरह यह भी निर्माण प्राप्ति पर बल दिया और तप कर्म और त्रिरत्न मार्ग अपनाने का समर्थक रहे । जैन धर्म भी दो सम्प्रदाय में बट गये - श्वेताम्बर और दिगम्बर । श्वेताम्बर श्वेत वस्त्र धारण करने वाले हुए और दिगम्बर वस्त्रों को साधना में बाधक मानते हैं । जैन धर्म अहिंसा के प्रबल समर्थक हैं । जैन धर्म स्यादवाद में विश्वास करता है अर्थात् कोई भी दृष्टिकोण पूर्ण रूप से सत्य नहीं है बल्कि आंशिक रूप से साथ है । स्यादवाद स्वीकार के बाद किसी एक ही विचाधारा पर अटल नहीं रहता है ।

3.3.6.7 पारसी धर्म (Parsi Religion)

पारसी धर्म के संस्थापक जरत्रुस्ट को माना गया है । इसकी उत्पत्ति ईसा पूर्व 600 वर्ष पूर्व ईरान में हुआ । पारसी धर्मावलिम्बयों की संख्या अधिकांशत: महाराष्ट्र मे है जो कि कुल जनसंख्या का 6.43 प्रतिशत है । पारसी धर्म में ईश्वर को होरमज्द कहा जाता है । हिन्दू धर्म की धार्मिक पुस्तक वेद की तरह इनकी धार्मिक पुस्तक अवेस्ता है । ये भी हिन्दू और इस्लाम की तरह होरमज्द को गॉड मानते हैं । ये भी यज्ञ अनुष्ठानों को मानते हैं । अग्नि के उपासक हैं । ईसाई धर्म की तरह ये भी सदविचार सर्दकर्म को माना है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत एक बहुधर्मी राष्ट्र है । यहाँ सभी धर्म को मानने की इजाजत हमारा संविधान देता है । तभी तो भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र कहा जाता है । भारत में अलग-अलग धर्म को मानने वाले लोग रहते हैं । अत: भारत में धार्मिक रूप से भी विविधता है । यही विविधता भारतीय संस्कृति का गहना है ।

3.4 विविधता के सामाजिक-आर्थिक पहलू (Aspect of Socio-Economic Diversity)

सामाजिक-आर्थिक अवधारणा से तात्पर्य ऐसे वर्ग से है जो सामाजिक रूप से पिछड़े अर्थात् वंचित वर्ग हैं । जिनका आर्थिक स्तर भी संतोषजनक नहीं होता है । जिसका परिणाम यह होता है कि वे सामाजिक-आर्थिक, सांस्कृतिक कई प्रकार की समस्याओं से घिर जाते हैं । यह भी कहा जा सकता है कि ऐसा वर्ग जिनकी स्थिति समाज में सम्मानजनक नहीं होती है, आर्थिक स्थिति से भी ये पिछड़े होते हैं ।

हमारे देश में सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े लोगों के अन्तर्गत निम्नलिखित लोग आते हैं :-

(1) स्त्रियाँ (2) पिछड़े वर्ग (3) आर्थिक रूप से पिछड़े हुए समुदाय (4) अल्पसंख्यक समूह

सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन के कारण अग्रलिखित हैं :-

सामाजिक रूप से वंचित होना (Social Deprivation) : सामाजिक रूप से वंचित होने में, निम्न जाति से सम्बन्ध रखने वाले लोगों को उच्च जाति के लोगों के साथ सामाजिक सम्बन्ध रखने की अनुमति नहीं दी जाती । उच्च जाति के लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कुओं, रास्तों एवं तालाबों का प्रयोग में लाने की अनुमति निम्न जाति के लोगों को नहीं है ।

आर्थिक रूप से वंचित होना (Economical Deprivation) : उच्च जाति एवं निम्न जाति के लोगों में जीवन के अर्थशास्त्र के मुद्दे पर बहुत अधिक अंतर होता है । निम्न जाति के लोगों को जमीन या सम्पत्ति पर कब्जा करने की अनुमति नहीं होती । इससे लोगों की आर्थिक विषमता बढ़ जाती है ।

सांस्कृतिक पृथकता (Cultural Deprivation) : पृथकता से आशय यह है कि सामाजिक-आर्थिक पिछड़े को सामान्य लोगों की तरह मंदिर में प्रवेश की अनुमति नहीं होती है । यह पृथकता समाज को जाति, वर्ग के भेद में बाँट देती है ।

राजनैतिक पृथकता (Political Deprivation) : सामाजिक-आर्थिक पिछड़ेपन का इससे भी अनुमान लगा सकते हैं कि पिछड़े वर्ग के लोगों को नेतृत्व करने, उच्च वर्ग के लोगों के बारे में कहने का अधिकार नहीं। उनकी स्थिति दासों वाली होती है । हालांकि संविधान में उनकी स्थिति में सुधार के लिए कई प्रावधान किये गये हैं । भारतीय संविधान में कहा गया है कि राज्य सावधानी पूर्वक कमजोर वर्ग एवं विशेष रूप से पिछड़ी जातियों एवं पिछड़े वर्गों के शैक्षणिक व आर्थिक हितों को बढ़ावा देगा और सब प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उन्हें बचाव प्रदान करेगा ।

3.5 भारतीय संविधान में सामाजिक-आर्थिक, कमजोर वर्गों एवं विशेष रूप से पिछड़े वर्गों के हितों के बचाव के लिए सुनिश्चित संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय (Constitutional protective measure for the protection of the interests of the socio-economically weaker sections and especially the bacward caste and backward classes in the Indian Constitution)

भारतीय संविधान में सामाजिक, आर्थिक कमजोर वर्गों एवं विशेष रूप से पिछड़ी जाति एवं पिछड़े वर्गों के हितों के बचाव के लिए सुनिश्चित संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय प्रदान किये गए हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

- **धारा 15** : पिछड़ी जाति के लोगों को अन्य जातियों के लोगों के समान कुओं, तलाबों एवं नदियों का प्रयोग करने की स्वतंत्रता प्रदान करती है ।
- **धारा 17** : यह अस्पृश्यता को एक सामाजिक अपराध मानते हैं ।
- **धारा 29** : यह सभी स्कूलों एवं कॉलेजों में प्रवेश के लिए समान अधिकार प्रदान करती है ।
- **धारा 15 एवं 325** : पिछड़ी जातियों एवं पिछड़े वर्गों के पक्ष में सभी सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया गया है ।
- अस्पृश्यता नियम एवं जातिगत अक्षमता उन्मूलन नियम जो 1955 में पास हुए थे सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को उनकी शिक्षा, नौकरी, आदि के संदर्भ में विशेष प्रावधान करते हैं ।

3.5.1 भारतीय शिक्षा आयोग, 1964

इसके तहत "शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य पिछड़ी जातियों अथवा अन्य अधिकार वाली जातियाँ एवं व्यक्तियों को समान अधिकार देकर इस योग्य बनाना है कि वे शिक्षा को अपनी स्थिति में सुधार लाने के लिए सम सहायक दण्ड के रूप में प्रयोग में ला सकते हैं ।" प्रत्येक समाज को सामाजिक न्याय का महत्व देता है और सामान्य व्यक्ति के जीवन को सुधारने एवं उपलब्ध प्रतिभा को विकसित करने के लिए सभी वर्गों के लिए अवसरों की प्रगतिशील समानता को सुनिश्चित करता है । मात्र यही इग्लेटेरियन मानक समाज, जिसमें कमजोर वर्ग का शोषण न्यूनतम होगा, की गारण्टी दे सकता है ।

अब तक शिक्षा के अवसरों की समानता शब्द का अर्थ समान्यत: सभी समुदायों के बच्चों के लिए उचित दूरी पर स्कूल खोलना, स्कूल छोड़कर जाने वालों का दर कम करना और विविध उपायों द्वारा स्कूल न जाने

वाले बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का प्रावधान करना । पूर्व मैट्रिक एवं मैट्रिक के बाद छात्रवृतियाँ देना एवं बच्चों की स्कूली शिक्षा को सुविधाजनक बनाने के लिए विविध सहायक सेवाओं का प्रावधान करने से है । ऐसे प्रावधानों का लाभ उठाने वाले द्वारा या तो पूरा प्रयोग नहीं किया गया या उन्हें ठीक स्वरूप में समझा नहीं गया । दूसरी बात यह है कि आर्थिक निर्धनता भले ही एक मुख्य कारण है फिर भी भारतीय समाज के शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के शैक्षणिक विकास में यही एकमात्र बाधा नहीं है । कुछ और भी कारण जैसे कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक रूकावटें, बच्चों में उनकी शिक्षा के लिए प्रेरणा की कमी, उनके माता-पिता की अपने बारे में निम्न धारणा, घरों में अपर्याप्त सुविधाएँ, पिछड़े समुदायों से सम्बन्ध रखने वाले, सीखने वालों की शैक्षणिक प्रगति के प्रति अध्यापकों का निष्क्रिय दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है । सामान्य रूप से इन समुदायों के शैक्षणिक विकास में अध्यापक की सक्रिय भागीदारी एवं विशेष रूप से उन बच्चों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देने से निश्चित रूप से शिक्षा में उनकी सफलता का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा ।

3.5.2 कमजोर वर्गों एवं स्त्रियों की शिक्षा के लिए उठाए गए कदम (Steps taken for Education for Women and Weaker sections)

भारत सरकार ने समय-समय पर पिछड़ी जातियों, पिछड़े हुए कबीलों के लोगों, स्त्रियों एवं अल्पसंख्यकों की वर्त्तमान दशा एवं समस्याओं को खोजने के लिए विविध कमीशन (आयोग) नियुक्त किए ।

3.5.2.1 धीबर आयोग (Dhebar Commission), 1960-61 :

सरकार द्वारा धीबर की अध्यक्षता में यह आयोग नियुक्त किया गया था । इस आयोग ने कमजोर वर्गों की प्राइमरी शिक्षा के विस्तार के लिए निम्नलिखित सिफारिशें की :

(i) पिछड़ी जाति/पिछड़े कबीले/ओबीसी लोगों को व्यवहारिक निपुणताओं में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ।

(ii) ऐसे बच्चों को पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए अध्यापकों को विशेष भत्ते दिये जाने चाहिए ।

(iii) स्कूलों में मुफ्त भोजन, कपड़े, पुस्तकें एवं कापियाँ दी जानी चाहिए ।

(iv) नियुक्त किए गए अध्यापक अपनी संस्कृति से भली-भाँति परिचित होने चाहिए ।

(v) पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्ग/ओबीसी बच्चों को अपनी मातृभाषा में प्राइमरी शिक्षा दी जानी चाहिए ।

(vi) अनुकूल पुस्तकें मातृभाषा में छपवाई जानी चाहिए ।

(vii) नियुक्त किए गए अध्यापकों को अपने क्षेत्र में स्थापित किए गए संस्थानों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि अध्यापक लोगों की जीवन शैली उनकी आदतों एवं उनकी स्थिति से परिचित हो जाएँ ।

3.5.2.2 कोठारी आयोग (Kothari Commission), 1964-66 :

धीबर आयोग द्वारा दी गई सिफारिशों के अतिरिक्त कोठारी आयोग ने पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निम्नलिखित सिफारिशों का सुझाव दिया :

(i) **प्राइमरी शिक्षा :** प्राइमरी शिक्षा अच्छी तरह से संगठित होनी चाहिए एवं पिछड़े जाति, पिछड़े वर्ग के घनी आबादी वाले क्षेत्रों में बहुत से स्कूल खोले जाने चाहिए ।

(ii) **सेकेण्डरी शिक्षा :** छात्रावास, छात्रवृतियाँ एवं वजीफों जैसी सुविधाओं के साथ और अधिक सेकेण्डरी स्कूल खोले जाने चाहिए ।

(iii) **उच्चतर शिक्षा :** पिछड़ी जातियों, पिछड़े वर्गों एवं ओबीसी वर्ग के विद्यार्थियों की उच्चतर शिक्षा के लिए और अधिक धन का प्रावधान किया जाना चाहिए और ऐसे लोगों की सेवा में लगे हुए लोगों को विशेष भत्ते दिए जाने चाहिए ।

3.5.2.3 शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (National Policy of Education), 1986 :

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति का मुख्य केन्द्र व उद्देश्य शैक्षणिक विकास एवं शिक्षा के सभी स्तरों पर पिछड़ी जातियों/पिछड़े वर्गों के लोगों व गैर पिछड़ी जातियाँ व गैर पिछड़े वर्गों के लोगों में समानता लाना है ।

शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (NPE) 1986 के लक्ष्य एवं उद्देश्य इस प्रकार हैं :-

(i) कक्षा 1 से 5 तक पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्गों के बच्चों का शत-प्रतिशत नामांकन एवं शिक्षा की प्राथमिक अवस्था की संतोष्ज्ञजनक समाप्ति तक उन्हें स्कूल में टिकाए रखना ।

(ii) 11-14 वर्ष आयु के कम से कम 75% बच्चों को स्कूल में रोका जाना चाहिए । इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गए हैं :-

  (i) पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्ग के लोगों के बच्चों के लिए पूर्व मैट्रिक छात्रवृतियाँ ।

  (ii) पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्ग/ओबीसी के लिए हॉस्टल सुविधाओं का प्रावधान ।

  (iii) पिछड़ी जाति/पिछड़े वर्ग की बस्तियों एवं कबीलों के गाँवों में स्कूल इमारतों बाल-बाड़ियाँ एवं प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों को बनाना ।

  (iv) पिछड़े वर्गों के विषय में पाठ्यक्रम को विषय व मूल्य उन्मुखी बनाना ।

  (v) घुमन्तु, अल्प घुमन्तू एवं सूची से बाहर रखे जाने वाले समुदायों की विशेष आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी जायेगी ।

3.6 शिक्षा में केन्द्रीय व राज्य सरकार की भूमिका (Role of Central and State Government in Education)

भारत 1947 को आजादी प्राप्त करने के साथ-साथ एक लोकतांत्रिक देश बना । लोकतांत्रिक राष्ट्र में राष्ट्र के प्रत्येक लोगों के हितों तथा उनके स्तर को बनाए रखने के लिए संविधान में कई सार्थक प्रयास किए गए। इसके लिए हर स्तर पर प्रयास किए गए, पंचवर्षीय योजनाएँ चलाई गई । हर संभव विकास के लिए सरकार कृत संकल्प थी । इसके लिए शिक्षा को मुख्य आधार बनाया गया । सदियों से चली आ रही शिक्षा के ढाँचे में व्यापक बदलाव लाकर उसमें कई सुधारात्मक कदम उठाए गए ।

केन्द्र सरकार के द्वारा समय-समय पर समितियों और आयोगों का गठन किया गया । जैसे राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग, नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति आदि । आयोगों और समितियों द्वारा दिए गए सुझावों को सरकार ने हर संभव कोशिश कर पूरा करने का प्रयास, विभिन्न योजनाओं के माध्यम से किया जा रहा है । आज उन योजनाओं का ही प्रयास है कि शिक्षा दर में वृद्धि हुई और पहले से शिक्षा के स्तर में सुध ार हुए । शिक्षा को पंचवर्षीय योजनाओं की बनावट में ये घोषित किया गया कि मशीनों से ज्यादा मनुष्य महत्वपूर्ण है । अत: माल की योजना की तुलना में मनुष्यों पर धन लगाना ज्यादा जरूरी है ।

3.7 सारांश (Summary)

सामाजिक संरचना से स्पष्ट होता है कि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जातिगत और भाषागत विविधता है ।

उपरोक्त संरचना में विविधता के अलग-अलग आधार पर वर्णन कर उसकी विशिष्टता से अवगत कराया गया है । **डॉ0 कार्वे** के विचारानुसार "भाषायी विविधता को बताने का प्रयत्न किया गया ।"

धार्मिक विभिन्नता में यह दिखाया गया है कि भारत में अलग-अलग धर्मावलिम्बयों की अलग-अलग विचारधाराएँ हैं, उनके सिद्धांत है । सामाजिक आर्थिक पहलू से तात्पर्य देश में रहने वाले लोग के सामाजिक और आर्थिक पहलू से है । यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि समाज में अलग-अलग वर्ग के लोगों के स्तरीकरण में उनकी स्थिति कैसी रही । जिसमे स्तरीकरण में निम्नवर्ग की स्थितियाँ और चुनौतियाँ उच्च वर्ग से कई गुणा ज्यादा संघर्षमय रहा है । जिससे उनकी स्थिति शिक्षा में काफी पिछड़ गयी । ऐसे वर्गों के उत्थान और न्यायपूर्ण जीवन यापन में संविधान में कई प्रावधान किए गए और राज्य और केन्द्र सरकार द्वारा योजनाएँ और नीतियाँ बनाई गई । इस प्रकार इकाई अध्ययन में भारत की सामाजिक संरचना और विविधता को दर्शाते हुए उनके सकारात्क और नकारात्क प्रभावों को बतलाया है ।

3.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. भारतीय समाज की संरचना पर सोदाहरण विस्तारपूर्वक लेख लिखिए ।

   Write a detailed note on the structure of Indian Society with suitable illustration.

2. सामाजिक-आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के हितों के बचाव के लिए संविधान द्वारा किए गए उपायों का वर्णन करें ।

   Describe the provisions of the constitution which safeguard the interests of socially-economically weaker sections.

3. भारतीय संविधान की प्रस्तावना के आदर्शों की विवेचना करें ।

   Describe the Ideals contained in the preamble of the Indian Constitution.

3.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Shri Vinod Pustak Mandir, Contemporary India & Education, Guru Sharan Das Tayagi, Ram Sakal Pandey.
2. Agarwal Publication, Contemporary India & Education, Poonam Madan, Ram Sakal Pandey.

❑ ❑ ❑

इकाई : 4 सामाजिक असमानता एवं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक एवं शैक्षिक अभिप्राय/निहितार्थ

Issues of Inequality in Society and their Socio-Cultural and Educational Implications

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

4.2 भारतीय समाज की संरचना (Structure of Indian Society)

4.3 सामाजिक असमानता एवं इनसे उत्पन्न मुद्दे (Issues arrising due to Social Inequality)

4.4 अनुसूचित जातियों (दलितों) का कल्याण : संवैधानिक व्यवस्थाएँ (Welfare of Scheduled Caste (Dalit) : Constitutional Provisions)

4.5 भारत में शिक्षा में समानता और निष्पक्षता को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयास (Efforts made to Achieve Equality and Fairness in Education in India)

4.6 सारांश (Summary)

4.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

4.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

4.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ सामाजिक संरचना को समझ सकेंगे ।
- ❖ सामाजिक असमानता के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- ❖ सामाजिक असमानता के कारण अपने सामाजिक-सांस्कृतिक शैक्षिक चुनौतियों को समझेंगे ।
- ❖ सामाजिक भिन्नता के कारण सामाजिक संस्करण में कमजोर वर्ग के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक योग्यताओं को समझ सकेंगे ।

- ❖ अनुसूचित जातियों के कल्याणार्थ संवैधानिक प्रावधानों को जान सकेंगे ।
- ❖ भारत में शिक्षा में निष्पक्षता और समानता के बारे में जान सकेंगे ।
- ❖ शैक्षणिक अभिप्रायों को समझ सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

4.1 प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक असमानता नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को सामाजिक संरचना और उससे सम्बन्धित पहलूओं जैसे - सामाजिक विविधता क्या है? समाज में जाति, वर्ग, धर्म, भाषा के स्तर पर किस प्रकार भिन्नता है? विविधता के कारण समाज के स्तरीकरण में क्या प्रभाव पड़ा आदि इन सारी बातों के संबंध में विस्तार से चर्चा की गई है ।

समाज के पिछड़े और कमजोर वर्ग के उत्थान के लिए हमारे संविधान में क्या प्रावधान किए गए हैं? उनके शैक्षणिक अभिप्रायों और शिक्षा में निष्पक्षता से अवगत कराने का प्रयास किया गया है, चूंकि शिक्षा ही किसी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उन्नति के परिचायक है ।

अतः इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

4.2 भारतीय सामाजिक संरचना (Structure of Indian Society)

यदि हमें विभिन्नता व असमानता को शैक्षिक संदर्भ में देखें तो हमारे देश में विभिन्नताओं की भरमार है । प्रकृति के साथ-साथ निवास कर रहे लोगों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक स्तर पर विभिन्नताएँ हैं । पाठकगण हम समाज के संरचना को बिंदुवार ढंग से वर्णन निम्नलिखित प्रकार से कर रहे हैं :-

भारतीय समाज की संरचना के विविध पहलू इस प्रकार हैं :-

1. जाति (Caste)
2. धर्म (Religion)
3. वर्ग (Class)
4. व्यवसाय (Business)
5. भाषा (Language)

जाति (Caste) के आधार पर

- ब्राह्मण
- क्षत्रिय
- वैश्य
- शूद्र

धर्म (Religion) के आधार पर

- हिन्दू
- इस्लाम
- इसाई
- सिक्ख
- अन्य

वर्ग (Class) भारतीय आर्थिक और सामाजिक स्तर पर

- उच्च वर्ग
- मध्यम वर्ग
- निम्न वर्ग

व्यवसाय (Business) के आधार पर

- व्यापारी वर्ग
- सेवा वर्ग
- श्रमिक वर्ग

भाषा (Language)

भारत सम्पूर्ण देश में बोली जानेवाली विविध भाषाओं के लिए जाना जाता है । ठीक ही कहा गया है कि भारत में हर 5 किलोमीटर की दूरी पर भाषा बदल जाती है । इन विभिन्न भाषाओं को तीन मुख्य समूहों में बाँटा जा सकता है, जो इस प्रकार है :-

(i) द्रविड़ समूह

(ii) यूरोपियन समूह

(iii) इंडो-आर्यन समूह

अत: भाषा के आधार पर भारतीय समाज के ढाँचे को निम्नलिखित तरीके से हम रेखाचित्र के माध्यम से प्रस्तुत कर सकते हैं ।

भाषा के आधार पर

द्रविड़ समूह	यूरोपियन समूह	इंडो-आर्यन समूह
तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड़ भाषाएँ	अंग्रेजी एवं फ्रेंच भाषाएँ	हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, संस्कृत, बंगाली, उड़िया, बिहारी, राजस्थानी, असमिया, सिंधी और कश्मीरी भाषाएँ

जाति शब्द की उत्पत्ति : जाति शब्द Spanish word 'Casta' से लिया गया है । जिसका अर्थ है वंशानुक्रम योग्यता अर्थात् यह वंश परम्परा से संबंधित है । भारत में इसे जाति शब्द से जाना जाता है ।

परिभाषा - "जाति का अर्थ उस समूह से है जो जन्म के आधार पर निर्धारित होती है अर्थात् बच्चा जिस परिवार में जन्म लेता है वह उसी जाति से संबंधित होता है ।

वैदिक काल में जाति व्यवस्था - वैदिक काल में जाति कर्म के आधार पर निर्धारित होती थी । जिसका जैसा काम होता था वही उसकी जाति माना जाता था । जैसे - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ।

आधुनिक समय में जाति - आधुनिक समय में जाति जन्म से आधारित होती है जिसमें परिवार के सामान्य रीति-रिवाज, जन्म, विवाह, मृत्यु से संबंध में कर्म तथा सामान्य उपनाम और सामान्य विशेषताएँ सम्मिलित होती है ।

4.3 सामाजिक असमानता एवं उससे उत्पन्न मुद्दे (Issues arrising due to Social Inequality)

उपरोक्त भारतीय संरचना को देखते हैं तो यह जान पाते हैं कि भारत में हर स्तर की विविधता है । यह विविधता जाति, वर्ग, धर्म, भाषा के आधार पर अलग-अलग प्रान्तों में है ।

भिन्नता तो प्रकृति को सुदृढ़ता और स्थायित्व प्रदान करती है । चल-अचल प्रकृति मे हर स्तर पर

विविधता देखते हैं, जो हमारे राष्ट्र के धरोहर हैं । यदि हम इन विभिन्नताओं व असमानताओं को शैक्षिक संदर्भ में देखें तो भारत में यहाँ के लोगों के रहन-सहन, मान्यताओं, विश्वासों, लोक परंपराओं आदि में भिन्नताएँ देखने को मिलती है । हमारे समाज में विधमान विभिन्न समुदायों व लोगों की क्षमताएँ व खासियत अलग-अलग है । एक लोकतांत्रिक एकता व व्यवस्था की यह भूमिका होनी चाहिए कि इन विविध जनों व समुदायों के विकास में उन्हें बेहतर जीवन जीने की व्यवस्था को बिना भेदभाव के उपलब्ध कराये । परन्तु हमारे समाज में मानव सभ्यता के विकासक्रम में सत्ता व व्यवस्था के भिन्न-भिन्न रूपों को देखा जा सकता है । वे वर्चस्व वादी ताकतों के अनुरूप जीवन जीने को बाध्य हुए । सहस्त्राब्दियों तक सुविधा विहीन, धन-प्रतिष्ठा व ताकत से महरूम पिछड़े वर्ग को सुविधायुक्त बेहतर व सम्भावित जीवन जीने की व्यवस्थाओं से दूर रखा गया ।

असमानता को समाजिक संदर्भ में व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार और उनकी संस्कृति (भाषा-साहित्य, धर्म-दर्शन एवं रीति-रिवाज) से देखते हैं ।

असमानता उपरोक्त पहलूओं के साथ-साथ आर्थिक पहलूओं में भी अंतर होने से है । असमानता सभी व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के समान सुविधााएँ प्रदान करना व उन्हें विकास के समान अवसर न देने से है । हम देखते हैं सामाजिक संरचना में जाति, वर्ग, रहन-सहन, भाषा, धर्म के आधार पर लोगों का एक-दूसरे से भिन्नता असमानता को जन्म देती है ।

वर्ण व्यवस्था में सामाजिक स्तरीकरण में वितरण की वजह से कुछ खास वर्ग अधिक उन्नत और समाज में उनकी स्थिति सम्मानजनक हो गई । जबकि इसके विपरित एक वर्ग ऐसा हो गया जो समाज के स्तरीकरण में उनकी स्थिति निम्न और संतोष जनक नहीं थी । भाषा के स्तर पर भी भिन्नता अलग-अलग समुदाय और क्षेत्र के लोगों को एक-दूसरे से असमान बना दिया ।

असमानताएँ इतनी बढ़ गई है कि पिछड़े वर्ग के रूप में (दलित, शोषित, कमजोर वर्ग) एक वर्ग है, जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषित एवं अपेक्षित रहा है । देश की करीब 40 प्रतिशत जनता इस श्रेणी में आती है । वर्त्तमान समय में यह वर्ग राजनीतिक दृष्टि से सशक्त प्रभावशाली हो गया है, जो महत्वपूर्ण निर्णयों के लिए उत्तरदायी हैं ।

4.3.1 सामन्तवादी और पूँजीवादी वर्ग की अवधारणा (Concepts of Feudalism and Capitalism)

सामन्तवादी और पूँजीवादी वर्ग की अवधारणा से तात्पर्य एक ऐसे वर्ग से है जिनकी राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक-आर्थिक स्थिति समाज में सम्मानजनक है । वे प्रशासनिक कार्यों में सहयोग करते थें और उनकी सामाजिक स्तरीकरण में स्थिति उच्च थी । समाज में इनका वर्चस्व कायम हो गया । शिक्षा पर इनका एकाधिकार कायम हो गया । इनकी उन्नति व प्रगति हर स्तर से संभव हो गया । समाज में भी इनका प्रभुत्व कायम हो गया जबकि कमजोर वर्ग की सामाजिक स्तरीकरण में स्थिति निम्न थी । ये स्थिति दिनों-दिन इतनी निम्न हो गयी कि समाज में विसंगतियाँ बढ़ गई ।

4.3.2 कमजोर वर्ग की अवधारणा (Concept of Weaker Section)

संवैधानिक दृष्टि से कमजोर/दुर्बल या दलित वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ तथा कुछ अन्य पिछड़े हुए समूह आते हैं । इसमें समाज के साधन हीन वर्ग को सम्मिलित किया गया है । भारतीय संविधान मातृत्व एवं समानता पर जोर देता है । अत: संविधान निर्माताओं ने सोचा कि यदि समानता को एक वास्तविकता प्रदान करनी है तो समाज के इन दलित, दुर्बल और कमजोर वर्गों को ऊँचा उठाना होगा

और अन्य उच्च वर्गों एवं स्वर्ण हिन्दुओं की भाँति ही उन्हें विकास की सुविधाएँ प्रदान करनी होगी । यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 46 में इस संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया गया है - "राज्य जनता के दुर्बलत्तर अंगों के विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से रक्षा करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा ।"

"एम.डी. देसाई", जी. पार्थ सारथी, जी.डी. रामाराव, बी.एस. मिन्हास एवं योगेश अटल आदि अर्थशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने कमजोर वर्ग को परिभाषित करने के लिए मुख्य रूप से आर्थिक सामाजिक मापदण्ड निर्धारित किया है । इन विज्ञानों के अनुसार कमजोर या दुर्बल वर्ग के अन्तर्गत निम्नांकित विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है ।

4.3.3 कमजोर वर्ग की विशेषताएँ

1. वे व्यक्ति जो अपने जीवन की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न कर सके । भोजन, वस्त्र, आवास तथा चिकित्सा की सुविधा जुटाने में असमर्थ हो और उनकी आय निर्धनता रेखा (Poverty Line) से बहुत नीचे हो ।
2. व्यक्ति जो मुख्यत: दैनिक मजदूरी पर ही आश्रित हो और वह भी अनियमित तथा ऋतुओं के परिवर्तन पर आश्रित हो ।
3. वे व्यक्ति जिनके उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के उपरान्त भी निरन्तर श्रम का शोषण किया जाता रहा हो और जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋणग्रस्त हो ।
4. वे व्यक्ति जिनके पास इतनी लागत पूँजी भी नहीं है कि वे कच्चे माल तथा अन्य उत्पादित वस्तुओं को खरीद सके ।
5. लघु तथा सीमान्त कृषक जो सिंचाई आदि की सुविधाओं से वंचित हों ।
6. वे व्यक्ति जो मानवीय ऊर्जा जिसमें परिवार के सदस्य हीं कार्य करें तथा पशु ऊर्जा के सहारे हीं जीवन यापन करें ।

उपरोक्त मानदण्डों को कमजोर वर्गों की श्रेणी में शामिल किया गया है । इन मानदण्डों के आधार पर अनुसूचित जनजातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़े वर्ग, लघु तथा सीमान्त कृषकों, भूमिहीन मजदूरों, बन्धुआ मजदूरों एवं परम्परागत कारीगरों को कमजोर वर्ग के अन्तर्गत माना गया है । हम कमजोर वर्ग के एक भाग दलितों/अनुसूचित जातियों की समस्याओं एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न पहलूओं पर व्याख्या करेंगे ।

दलित वर्ग कौन हैं? कब से हैं? इनकी स्थिति दयनीय क्यों है? वैदिक काल से ही वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की चर्चा की गई है । जिसमें ब्राह्मण को मुख से, क्षत्रिय को भुजाओं से, वैश्य को जाँघ से और शूद्र को पैर से उत्पन्न माना गया है । वैदिक युग में केवल ऊपर के तीन व्यवस्थाओं को हीं मान्यता प्राप्त थी ।

शूद्र अर्थात् दास का बाद में वर्णन मिलता है । 1935 के दशक में या कहें कि स्वतंत्रता आंदोलन के आखिरी पड़ाव पर इनकी स्थिति पर चिंतकों, विचारकों ने राय रखी । महात्मा गाँधी ने इन्हें "हरिजन" के नाम से पुकारा, भीमराव अंबेडकर ने इन्हें बहुजन के नाम से सम्बोधित किया । ब्रिटिश काल में इन्हें अस्पृश्य और दलित कह कर पुकारा गया । इन्हें सभी अधिकारों से पवित्रता एवं अपवित्रता की धारणा से दबाकर कर रखा गया । हिन्दु समाज में कुछ व्यवसायों को या कार्यों को पवित्र एवं कुछ कार्यों को अपवित्र माना गया । शिक्षा

एवं पूजा-पाठ को पवित्र कार्य माना गया और मनुष्य शरीर या पशु-पक्षी के शरीर से निकले हुए पदार्थों को अपवित्र माना गया है । इन पदार्थों से सम्बन्धित व्यवसाय में लगे जातियों को अपवित्र समझा गया । इन्हें अस्पृश्य कहा गया अर्थात् छूने योग्य नहीं । अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा थी कि जिन्हें छूने, देखने, छाया पड़ने मात्र से व्यक्ति अपवित्र हो जाता है ।

इस सम्बन्ध में **डॉ. के.एन. शर्मा** ने लिखा है - "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाए और उसे पवित्र होने के लिए कुछ संस्कार करने पड़े ।"

डॉ. डी.एन. मजूमदार के अनुसार - "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक नियोग्यताएँ से पीड़ित हैं । जिनमें बहुत सी नियोग्यताएँ उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गई है ।"

4.3.4 दलितों (अनुसूचित जातियाँ/अस्पृश्यों) की नियोग्यताएँ (Disabilities of Dalits/ Scheduled Caste/Untouchable People)

सामाजिक संरचना के तहत् उपजे सामाजिक भिन्नता अलग-अलग वर्ग, समुदाय, जाति, रंगभेद के कारण समाज उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की गहरी खाई में बँट गया । दलित, कमजोर वर्ग विसंगतियों को झेलने को मजबूर हुआ । अर्थात् कमजोर वर्ग को कुछ अधिकारों या सुविधाओं को प्राप्त करने के अयोग्य माना गया जिसके कारण उन्हें जीवन में आगे बढ़ने और व्यक्तित्व विकास करने का मौका नहीं मिल सका । 19वीं सदी के अन्त तक ये विसंगतिया विराजमान रही लेकिन 20वीं सदी के आरंभ से ही सुधार आन्दोलनों तथा बाद में स्वतंत्र भारत में सरकारी प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप इनमें काफी कमी आई । धर्म ग्रंथों, पुराणों, स्मृतियों में वर्णित दलितों की निर्योग्यताएँ की चर्चा इस प्रकार की गई है :-

4.3.4.1 दलितों की धार्मिक नियोग्यताएँ (Religious Disability of Dalit)

1. दलितों (अस्पृश्य) को अपवित्र माना गया और उनपर कई नियोग्यताएँ लाद दी गई । इन लोगों को मंदिर में प्रवेश, पवित्र नदी, घरों के उपयोग तथा पवित्र स्थानों पर आने तथा अपने ही घरों पर देवी-देवताओं की पूजा करने का अधिकार नहीं दिया गया । इतना ही नहीं वेदों तथा अन्य धर्म ग्रंथों के अध्ययन की आज्ञा भी नहीं दी गई ।
2. दलितों को सब प्रकार की धार्मिक सुविधाओं से वंचित कर दिया गया । अर्थात् उन्हें पूजा कीर्तन, भजन आदि का कोई अधिकार नहीं दिया गया । ब्राह्मणों को उनके यहाँ पूजा, श्राद्ध तथा यज्ञ की आज्ञा नहीं दी गई ।
3. दलित को जन्म से हीं अपवित्र माना गया है और इसी कारण इनके शुद्धिकरण के लिए संस्कारों की व्यवस्था नहीं की गई है । हिन्दुओं के शुद्धिकरण हेतु धर्म ग्रंथों में सोलह संस्कार जो प्रदान किए गए उनसे भी दलितों को वंचित रखा गया है ।
4. इतना ही नहीं खुद दलित जाति का भी स्तरीकण आपस में है और ये तीन समूह में बँटे हुए हैं ।

4.3.4.2 दलितों की आर्थिक निर्योग्यताएँ (Economical Disabilities of Dalit)

1. दलितों को आर्थिक निर्योग्यताओं का आकलन करें तो काफी आश्चर्य होगा । सवर्णों और दलितों की आर्थिक स्थिति में इतना अन्तर था कि वे (दलित) मजबूरी वश सबसे निम्न काम करने को मजबूर थे ।

जैसे शरीर के मल को उठाना, मरे जानवरों को उठाना, चमड़े का समान बनाना आदि । सवर्णों का बचा जूठा खाना उनका फटा-पुराना कपड़ा पहनना आदि ।

2. दलितों को धन संग्रह की इजाजत नहीं थी न उनकी अपनी भूमि होती थी बल्कि वे दूसरे की भूमि पर खेती करते थे ।

4.3.4.3 दलितों की राजनीतिक निर्योग्यताएँ (Political Disabilities of Dalits)

दलितों की राजनीतिक निर्योग्यताएँ की बात करें तो राजनीतिक जीवन में प्रवेश का कहीं कोई रास्ता दलितों के लिए नहीं था । राजनीतिक क्षेत्र से लेकर सरकारी नौकरी प्राप्त करने या राजनैतिक सुरक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया । दलितों की निर्योग्यताएँ मध्यकालीन समाज में अधिक सम्बन्धित रहा है । दलित के सभी अधिकार को सीमित कर दिया गया था मानों वो चेतना शुन्य हो । कालांतर में उनकी स्थिति में बदलाव आया लेकिन स्थिति आज भी सामान्य नहीं हो पाई है । इसका ज्वलंत प्रमाण आरक्षण की सुविधा है ।

हमारे संविधान में दलित ओर कमजोर वर्गों को मुख्यधारा में सामान्य न्याय दिलाने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई लेकिन सामाजिक परिवर्तन की गति आज भी धीमी है ।

यह सच है कि आजादी के बाद उनकी स्थिति में काफी सुधार हुए । पिछड़ी और कमजोर वर्गों की स्थिति में सुधार के लिए संविधान में विशेष रूप से व्यवस्था किए गए । कई अनुच्छेदों मैं उनके लिए प्रावधान किए गए जिससे उनकी स्थिति को बेहतर किया जा सके योजनाएँ चलाई गई जिससे उनकी स्थिति में सुधार लाया जा सके । मगर सामाजिक विविधता के कारण एक पहलू ये भी देखने को मिला कि सामाज के एक वर्ग में जाति, रंग, भेद, वर्ग के नाम से काफी भेदभाव है । उनसे निपटने के लिए कई प्रयास किए गए । दलितों की स्थिति को सुधारने के लिए कई स्तर पर काम किए गए, ताकि समाज में उनको सम्मान से जीवन जीने का हक मिल सके ।

4.4 अनुसूचित जातियों (दलितों) के कल्याणार्थ संवैधानिक व्यवस्थाएँ (Constitutional Provisions for Welfare of the Scheduled Caste (Dalits)

देश की आजादी के पहले दलितों की स्थिति बहुत दयनीय थी उनकी स्थिति में सुधार के लिए संविधान निर्माता ने पूरी कोशिश की उनकों न्यायसंगत जीवन प्रदान करने के लिए हमारे संविधान में उनके लिए कई प्रकार की व्यवस्था की गई ।

4.4.1 संवैधानिक प्रावधान

सामाजिक विभिन्नता के कारण आए सामाजिक परिवेश में बदलाव के कारण सामाजिक भिन्नता की खाई काफी बढ़ गई । यह खाई मुख्यत: दो समुदायों में बँट गया । जैसे - सवर्ण जो साधन सम्पन्न वर्ग कहलाए और दूसरा सुविधाहीन वर्ग जो दलित और कमजोर वर्ग कहलाए । उनकी स्थिति में सुधार के लिए, समानता का जीवन व्यतीत करने के लिए उन्हें संवैधानिक व्यवस्था के तहत न्यायपूर्ण विकास को बल प्रदान किया गया है ।

संविधान के भाग-III, अनुच्छेद 12 से 35 तक में मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गई । अर्थात् देश के सभी नागरिकों को जाति, वर्ग, धर्म, लिंग, भेद के आधार पर भिन्नता न करते हुए सभी को समान मूलभूत अधिकार प्रदान किए गए जिसमें -

अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी भी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थल अथवा इनमें से किसी एक आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा । दुकानों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश करने और साधारण जनता के उपयोग के लिए बने कुओं, तालाबों, स्नान-घाटों, सड़कों आदि के प्रयोग से कोई किसी को नहीं मना करेगा ।

अनुच्छेद 17 के अनुसार, अस्पृश्यता का अन्त कर उसका किसी भी रूप में प्रचलन निषिद्ध कर दिया गया है ।

अनुच्छेद 19 के अनुसार, अस्पृश्यों की व्यावसायिक नियोग्यता को समाप्त किया जा चुका है और उन्हें किसी भी व्यवसाय को अपनाने की आजादी प्रदान की गई है ।

अनुच्छेद 25 में हिन्दुओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थान सभी जातियों के लिए खोल देने की व्यवस्था की गई है ।

अनुच्छेद 29 के अनुसार, राज्य द्वारा पूर्ण अथवा आंशिक सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में किसी नागरिक को धर्म, जाति, वंश अथवा भाषा के आधार पर प्रवेश से नहीं रोका जा सकता है ।

अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि राज्य दुर्बलतर लोग जिनमें अनुसूचित जातियाँ तथा आदिम जातियाँ आती हैं, की शिक्षा सम्बन्धी तथा आर्थिक हितों की रक्षा करेगा और सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय एवं शोषण से उनको बचाएगा ।

अनुच्छेद 330, 332 और **334** के अनुसार, अनुसूचित जातियों तथा आदिम जातियों के लिए संविधान लागू होने के 20 वर्ष तक लोकसभा, विधान सभाओं, ग्राम-पंचायतों और स्थानीय निकायों में स्थान सुरक्षित रहेंगे । बाद में यह अवधि दस वर्ष के लिए तीन बार और बढ़ा दी गयी । इसके बाद यह अवधि 2010 तक के लिए बढ़ा दी गई है और अभी भी लागू है ।

अनुच्छेद 146 एवं **338** के अनुसार, अनुसूचित जातियों के कल्याण एवं हितों की रक्षा के लिए राज्य में सलाहकार परिषदों एवं पृथक-पृथक विभागों की स्थापना का प्रावधान किया गया है । साथ ही यह भी बताया गया है कि राष्ट्रपति अनुसूचित जातियों और अनुसूचित आदिम जातियों के लिए एक विशेष पदाधिकारी नियुक्त करेगा । इन संवैधानिक व्यवस्थाओं के द्वारा अस्पृश्यता निवारण एवं अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के उत्थान का सरकार के द्वारा विशेष प्रयत्न किया गया है ।

4.4.2 शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ (Educational Facilities)

पिछड़े व कमजोर वर्गों के लोगों को समान लोगों की तरह अवसर उपलब्ध कराने के कई सार्थक प्रयास किए गए हैं । पिछड़े जातियों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजातियों के लोगों को शिक्षा में प्रोत्साहन विशेष सुविधाएँ व योजनाएँ चलाकर उनकों शैक्षणिक सेवा प्रदान किया जा रहा है । देश के सभी सरकारी शिक्षण-संस्थाओं में अनुसूचित जातियों की व्यवस्था की गई है । इन वर्गों में शिक्षा का अधिक से अधिक प्रसार के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई साथ ही निःशुल्क किताबें, पोशाकें और छात्रवृतियाँ की व्यवस्था की गई । इतना ही नहीं मध्याह्न भोजन के द्वारा दोपहर भोजन की भी व्यवस्था की गई । छोटे बच्चों के लिए आँगन-बाड़ी सेवा के तहत अल्प पोषाहार की भी व्यवस्था की गई है । इतना ही नहीं सरकार कल्याण विभाग के माध्यम से छात्रवृति एवं छात्रावास की सुविधा मुहैया करा रही है । इन जातियों के प्रतिभाशाली छात्रों के लिए उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए छात्रवृति दी जाती है । इतना ही नहीं मेडिकल,

इंजिनियरिंग तथा अन्य औद्योगिक शिक्षण संस्थाओं में इनके प्रवेश हेतु विशेष व्यवस्था की गई है । संघीय लोक सेवा आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग में भी इनके लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।

4.4.3 विधान मण्डलों एवं पंचायतों में प्रतिनिधित्व (Representations in the Legislature and Panchayats)

संविधान द्वारा समानता के अधिकार के तहत हर क्षेत्र में इनकी भागीदारी को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से आरक्षण की विशेष व्यवस्था की गई है । खास कर प्रशासनिक कार्यों में इनके निर्णय सुनिश्चित हो इसके लिए विधान मण्डलों एवं ग्राम पंचायतों में भी इनके लिए स्थान सुरक्षित रखे गए हैं । जैसे लोकसभा में वर्त्तमान में 543 में से 82 और राज्यों की विधान सभाओं में भी 4,041 स्थानों में से 547 स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रखे गए हैं । पंचायती राज व्यवस्था में भी अनुसूचित जातियों/जनजातियों और पिछड़े वर्ग की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है ।

4.4.4 कल्याण एवं सलाहकार संगठन (Welfare and Advisory Organisation)

केन्द्र एवं राज्यों में अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण हेतु अलग-अलग विभागों की स्थापना की गई है । कई राज्यों में तो अनुसूचित जातियों व पिछड़े वर्गों के कल्याण को ध्यान में रखते हुए पृथक मंत्रालय भी स्थापित किए गए हैं । केन्द्र स्तर पर विभिन्न कल्याण कार्यक्रमों का दायित्व गृह मंत्रालय को है । भारत सरकार ने सन् 1968, 1971 एवं 1973 में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए चल रहे कल्याण कार्यों की प्रगति का मूल्यांकन करने हेतु संसदीय समितियाँ भी गठित की । कुछ राज्यों में भी राज्य स्तर पर इसी प्रकार की समितियाँ बनायी गयी है । वर्त्तमान में अनेक ऐच्छिक संगठन भी अनुसूचित जातियों व अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण कार्यों में अपने आपको लगाए हुए हैं ।

4.4.5 सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व (Representation in Government Service)

दलित और कमजोर वर्गों के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उन्नति के लिए सरकारी नौकरियों में प्रतिनिधित्व को सुरक्षित रखा गया है । जैसे खुली-प्रतियोगिता द्वारा अखिल-भारतीय स्तर पर की जाने वाली नियुक्तियों में 15% तथा अन्य प्रकार से की जाने वाली नियुक्तियों में $16\frac{2}{3}$ प्रतिशत स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रखे गए हैं ।

तीसरी और चौथी श्रेणी में सीधी नियुक्ति के लिए जिनमें सामान्य रूप से स्थानीय अथवा क्षेत्रीय उम्मीदवार आते हैं, राज्यों तथा केन्द्र शासित क्षेत्रों की अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुपात में स्थान सुरक्षित किए जाते हैं । दूसरी, तीसरी तथा चौथी में विभागीय परीक्षाओं के आधार पर तथा तीसरी एवं चौथी श्रेणी में चयन के आधार पर होने वाली पदोन्नति के सम्बन्ध में भी अनुसूचित जातियों के लोगों के लिए 15% स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं । बशर्ते इन श्रेणियों में सीधी भर्ती 50% से अधिक न होती हो ।

वरिष्ठता के आधार पर होने वाली पदोन्नति में भी 27 नवम्बर, 1972 से अनुसूचित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है ।

4.4.6 आर्थिक उन्नति हेतु प्रयास (Process for Economical Progress)

अनुसूचित जातियों के व्यक्तियों को आर्थिक उन्नति के अवसर प्रदान करने हेतु सरकार ने उन्हें विशेष

सुविधा देने का प्रयास किया । कृषि एवं उद्योगों के क्षेत्र में अस्पृश्यों को आगे बढ़ने का मौका दिया गया है । चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक उनको आर्थिक संरक्षण देने हेतु भूमि भी प्रदान की गई है । स्व० भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी के 20 सूत्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत इन जातियों के ऋणग्रस्त व्यक्तियों को ऋण से मुक्त करने, भूमिहीनों में भूमि का वितरण करने तथा बन्धक श्रमिक प्रथा को समाप्त करने हेतु सार्थक प्रयास किए गए हैं । जनवरी, 1976 में सरकार द्वारा पारित बन्धक श्रमिक उन्मूलन कानून का विशेष लाभ अनुसूचित जातियों के लोगों को ही मिला है । सन्1978 में सरकार द्वारा इस उद्देश्य से एक उच्चाधिकार समिति का गठन भी किया गया है ताकि अस्पृश्य जातियों की आर्थिक स्थिति को सुधारा जा सके ।

4.4.7 वंचितों के लिए शिक्षा चुनौतियाँ और भावी योजनाएँ (Challange and Future Plans of Education for Marginalized People)

शिक्षा ही वह हथियार है जो अज्ञानता, दरिद्रता, अयोग्यता जैसी बुराईयों को लड़कर दूर कर सकती है । यह सामाजिक व्यवस्था के पुर्ननिर्माण का भी माध्यम है जो सामान्यत: सामाजिक स्तरीकरण में व्यवस्थित है और जहाँ सर्वत्र असमानताएँ व्याप्त है । भारतीय समाज अनिवार्य और ऐतिहासिक रूप से जातीय आधार पर संरचित है । जातियों की असमानता की वजह से ये जातियाँ और जनजातियाँ दशकों तक शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से पिछड़ी रही है । जिनके कारण उसका व्यक्तित्व विकास भी हाशिए पर पहुँच गया है ।

4.5 भारत में शिक्षा में समानता एवं निष्पक्षता को प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयास (Efforts Made in India to Achieve Equality and Equity in Education)

स्वतंत्रता के बाद भारत में शिक्षा में समानता एवं निष्पक्षता की समस्याओं के समाधान की दिशा में किए गए प्रयासों में से कुछ इस प्रकार हैं :

4.5.1 विद्यालय शिक्षा : प्राथमिक और माध्यमिक (School Education : Primary & Secondary)

सार्वजनिक विद्यालय व्यवस्था (Common School System) : भारतीय शिक्षा आयोग (1964-66) ने भारत में शिक्षा की समानता एवं निष्पक्षता को ध्यान में रखते हुए सामान्य या सार्वजनिक विद्यालय व्यवस्था के लिए संस्तुति की ।

पड़ोसी विद्यालय (Neighbourhood School) : बाद में सार्वजनिक विद्यालय व्यवस्था में संशोधन किया गया तथा पड़ोस विद्यालय की अवधारणा विकसित हो गई । गोशल (1983) पड़ोस विद्यालय व्यवस्था का पाठ्यक्रम मूलभूत आवश्यकताओं पर आधारित होना चाहिए । दैनिक जीवन की समस्यात्मक स्थितियों का सामना करने के कौशल एवं उपयुक्तता को बढ़ाने वाल भी होना चाहिए ।

नवोदय विद्यालय (Navodaya Vidalays) : बच्चों को गुणवत्ता परक शिक्षा देने के लिए नवोदय विद्यालय खोले गए थे ।

पब्लिक स्कूलों में स्थानों का आरक्षण (Reservation of Seats in Public School) : शिक्षा में निष्पक्षता के समावेश के लिए पब्लिक स्कूलों में स्थानों के आरक्षण की नीति को लागू करना है ।

प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण (Universalisation of Primary Education) : 6-14 वर्ष की आयुवर्ग के बच्चों के लिए प्राथमिक स्तर पर शिक्षा की सार्वभौमिक व्यवस्था का प्रावधान किया गया है ।

माध्यमिक शिक्षा के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक कार्यक्रम (Formal and Non-formal Programme for Secondary Education) : माध्यमिक स्तर पर औपचारिक एवं अनौपचारिक पाठ्यक्रम है । इस वर्ग के विद्यार्थियों के उत्पादक स्वभाव को ध्यान में रखते हुए व्यावसायीकरण को भी शामिल किया गया है ।

वर्ष 15-65 वर्ष की आयु के वर्ग के विषय में यह माना जाता है कि ये उत्पादन तथा आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में सहगामी होने चाहिए ।

4.5.2 उच्च शिक्षा (Higher Education)

उच्च स्तर पर शिक्षा की सुविधाएँ योग्यता के आधार पर दी जाती है । समानता के अतिरिक्त शिक्षा में निष्पक्षता प्रदान करने के लिए इस स्तर पर आरक्षण नीति का भी पालन किया जाता है ।

4.5.3 शिक्षा की राष्ट्रीय नीति 1986 के अन्तर्गत प्रावधान (Provisions under the National Policy on Education, 1986)

शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति, 1986 में विसंगतियों को दूर करने पर बल दिया है तथा देश को आर्थिक विकास की ओर ले जाने वाले समय वांछित सामाजिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में समानता की अवधारणा अधिक निष्पक्ष तथा उचित बन रही है । इन व्यवस्थाओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :-

1. **नारी शिक्षा (Women Education) :** नारी शिक्षा भारतीय समाज की एक बड़ी समस्या है । नारी शिक्षा के प्रति जनता में जागरूकता का अभाव है जिसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार एवं विभिन्न शिक्षा नीतियाँ में इसके सुधार पर बल दिया गया है । हरियाणा में लड़कियों के लिए कॉलेज स्तर तक मुफ्त शिक्षा है । इसी प्रकार अन्य राज्य भी भारत में उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं के लाभ उठाने तथा महिलाओं की उनमें सहभागिता को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक कदम उठा रहे हैं तथा इस प्रकार उन्हें आराम तथा राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में योगदान देने के योग्य बनाया जा रहा है ।
2. **अनुसूचित जातियों की शिक्षा (Education of Scheduled Castes) :** अनुसूचित जातियों के विद्यार्थियों की समानता की व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा रहे हैं :-
   - 6-14 वर्ष के बच्चों के नाम लिखवाने के लिए नामांकन अभियान किए जा रहे हैं ।
   - आवश्यक शिक्षा प्राप्त करने की सम्भावनाओं को बढ़ाने के लिए पहली से 10वीं तक की कक्षा के अनुसूचित विद्यार्थियों के लिए छात्रवृति योजना अपनाई जा रही है ।
   - अनुसूचित जाति के अध्यापकों की भर्ती हो रही है ।
   - विद्यालयों, बालबाड़ियों तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का निर्धारण भी इस बात को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता है कि यहाँ अनुसूचित जातियों के बच्चों को अधिक से अधिक सुविधा मिल सके ।
   - ऐसी नयी पद्धति की खोज के लिए अनुसंधान किए जा रहे हैं कि उनके द्वारा उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा पाने के लिए प्रेरित किया जा सके ।
3. **अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा (Education of Scheduled Tribes) :** अनुसूचित जनजातियों के लिए कई प्रकार के ठोस कदम उठाए गए हैं, जैसे -

- जनजातीय क्षेत्रों में विद्यालयों को खोलने को प्राथमिकता दी जा रही है ।
- प्रारंभ में जनजातीय भाषा का ही प्रयोग किया जा रहा है ।
- जनजातीय युवकों को शिक्षण का प्रशिक्षण इस उद्देश्य से दिया जा रहा है ताकि वे शिक्षण के द्वारा अपने क्षेत्रों की स्वयं सेवा कर सकें ।
- जनजातीय क्षेत्रों में आँगन बाड़ियों तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र खोलने को प्राथमिकता दी जा रही है ।
- जनजातियों से सम्बन्धित बच्चों के नामांकन की प्रक्रिया के लिए कदम उठाए जा रहे हैं ।

4. **शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों या क्षेत्रों की शिक्षा (Education of Educationally Backward Sections or Areas) :** शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े और कमजोर वर्ग के लिए शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जैसे -

- बिना किसी भेदभाव के शिक्षा का सार्वभौमीकरण ।
- प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताओं, योग्यताओं एवं समर्थताओं के अनुसार शिक्षा के लिए समान अवसर ।
- शिक्षा की पहचान कल्याणकारी सेवा के रूप में करना ।
- भेद-भाव न करना एवं शिक्षा के अधिकार के सिद्धांतों का अनुसरण करना ।
- किसी भी व्यक्ति को सफलता की सीढ़ी पर तब तक चढ़ने से रोका नहीं जाएगा जब तक उसमें स्वयं को ऊपर चढ़ने की योग्यता न हो ।
- कोई भी विद्यार्थी दयनीय आर्थिक स्थितियों के आधार पर अपंग नहीं रहना चाहिए ।
- चलने योग्य दूरी के अन्तर्गत स्कूलों का प्रावधान ।

5. **विकलांगों के लिए शिक्षा (Education for Handicapped) :** विकलांगों के लिए सामान्य व्यक्तियों की तरह अपने नित्य कार्य करने एवं अपने जीवन में व्यक्ति की क्षमताओं का विकास करने के लिए अवसर उपलब्ध कराना । इनके लिए विशेष कार्य किए गए हैं, जैसे -

- सामान्य बच्चों की भाँति जीवन-यापन करने के विश्वास को विकसित करने के उद्देश्य से अल्प विकलाँगता से प्रभावित बच्चों को सामान्य बच्चों के साथ ही शिक्षा प्रदान की जाती है ।
- विकलांग बच्चों के लिए जिला स्तर पर छात्रावासों का भी प्रावधान है ।
- इन बच्चों को व्यवसायिक और तकनीकी शिक्षा की सुविधा भी प्रदान की जा रही है ।
- विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा शिक्षक भी इस प्रकार प्रशिक्षित किए जा रहे हैं कि वे विकलांग बच्चों की समस्याओं का समाधान कर सकें ।
- विकलांगों की शिक्षा हेतु वांछित प्रयास करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

6. **प्रौढ़ शिक्षा (Adult Education) :** औपचारिक शिक्षा के तहत 15-35 वर्ष आयु के अशिक्षित जनता को अनौपचारिक माध्यमों से शिक्षा प्राप्त कर सकती है । नयी शिक्षा नीति, 1986 में भारत सरकार ने प्रौढ़ों की शिक्षा पर बल दिया है । यह नीति इस बात पर भी बल देती है कि केन्द्र और राज्य सरकारें, राजनीतिक दल तथा इनके संगठन, संचार साधन तथा शिक्षा संस्थाओं को व्यापक साक्षरता कार्यक्रम के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए । प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम में भाग लेने के लिए अध्यापकों, छात्रों, युवाओं, स्वैच्छिक संगठनों तथा नौकरी पेशा लोगों आदि को प्रेरित किया गया ।

7. **पत्राचार शिक्षा (Distance Education) :** शिक्षा में समानता एवं विवेकशीलता प्रदान करने में पत्राचार शिक्षा सुविधाएँ सार्थक रूप से योगदान दे रही हैं । चूंकि पत्राचार शिक्षा ऐसे लोगों के लिए सुविधा प्रदान कर रही हैं जो लोग किसी भी कारण से अपनी पढ़ाई पूरी नहीं कर पा रहे थे । प्राचीन समय से ही सम्पन्नता और विषमता के बीच भेदभाव का अस्तित्व विद्यमान है । लेकिन आज अनेक पहल और प्रयासों के द्वारा इन भेदभाव को दूर किया जा रहा है ।

8. **शैक्षिक अभिप्राय (Educational Implications) :** शिक्षा के अभाव में किसी भी व्यक्ति, समुदाय, जाति, वर्ग और समाज का उत्थान संभव नहीं है । सामाजिक, सांस्कृतिक भिन्नता के कारण शिक्षा भी अलग-अलग लोगों के अधिकार क्षेत्र में बंट गयी जिसका असर यह हुआ कि समाज का एक महत्वपूर्ण और बड़ा समुदाय शिक्षा से वंचित हो गया । जिसकी वजह से आज शिक्षा में सुधार और शिक्षा दर को शत-प्रतिशत करने के लिए शैक्षणिक नीति योजनाएँ और कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता पड़ी ।

   आज सामाजिक, सांस्कृतिक भिन्नता को शिक्षा के द्वारा दूर करने के लिए इस पर कई रूपों में ध्यान दिया गया ।

   (i) **शिक्षा तन्त्र में संरचनात्मक परिवर्तन (Structured Change in System of Education) :** स्वतंत्रता के 50 वर्ष से भी अधिक समय में नई प्रगतियों के साथ-साथ हमें शिक्षा तंत्र में भी संरचनात्मक परिवर्तन लाना होगा । विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में भी दोनों समय (अवधि) और विषय सामग्री (शिक्षा के विषय) में भी मौलिक परिवर्तन होने चाहिए । राष्ट्रीय छवि, इतिहास, राष्ट्रीय आचार-विचार और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करनी चाहिए ।

   (ii) **आरंभिक शिक्षा (Elementary Education) :** सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों में जागरूकता केवल मूल और आरंभिक शिक्षा से ही आ सकती है । इसलिए शिक्षा का अधिकार की पृष्ठभूमि पर आरंभिक शिक्षा को प्राथमिकता देनी चाहिए । पंचायत या NGO को साझेदार बनाना चाहिए ।

   (iii) **आरंभिक शिक्षा के लिए मूलभूत सुविधाएँ (Physical Infrastructure for Elementary Education) :** भारतीय समाज को आरंभिक विद्यालयों में मूलभूत भौतिक सुविधाएँ, योग्य और प्रशिक्षित अध्यापकों को उपलब्ध कराने का एक साहसी निर्णय लेना चाहिए ।

   (iv) **मूल्य शिक्षा (Value Education) :** बच्चों में तथा युवाओं में मानवीय युक्त नैतिकता और संस्कार उत्पन्न करने में माता-पिता, बुजुर्गों और अध्यापकों का बहुत बड़ा योगदान होता है । भारतीय मूल्यों तथा आधुनिक मूल्यों के प्रसार के लिए जनसंचार के उपयोग की आवश्यकता है ।

   (v) **शिक्षा का माध्यम (Medium of Instruction) :** पहले तीन वर्षों तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए तथा इसके पश्चात् ही दो भाषाओं का परिचय होना चाहिए । इससे व्यवहार में संस्कार और मानवीय गुणों में वृद्धि होगी । इसके अतिरिक्त बौद्धिक क्षमताओं और योग्यताओं की उन्नति में भी यह योगदान देगी ।

   (vi) **योग्य छात्रों को अलग करना (Filteration of Meritorious Students) :** यह ठीक है कि सभी को समानता का अवसर उपलब्ध कराते हुए शिक्षा में सभी वर्ग को समान अवसर मिला लेकिन प्रतिभाओं को भी नजर अंदाज नहीं किया गया । राष्ट्र के कल्याण के लिए योग्यता और सृजनात्मकता को उत्पन्न करना चाहिए तथा 10+2 के बाद केवल योग्य छात्रों को ही उच्च शिक्षा के लिए चुना जाना चाहिए । अर्थात् दूसरे छात्रों को दूसरे प्रशिक्षण क्षेत्रों में लगाना चाहिए ताकि व्यावसायिक वृद्धि हो सके ।

(vii) **मानव अधिकार और कर्त्तव्यों के लिए शिक्षा (Education for Human Rights and Duties) :** सभी कार्य स्थलों और शैक्षणिक संस्थाओं में मानव अधिकार और कर्त्तव्यों के लिए शिक्षा देनी चाहिए । इसके अतिरिक्त कर्त्तव्यों को निभाने की शिक्षा भी सभी स्तरों पर देनी चाहिए ।

(viii) **पर्यावरण शिक्षा (Environmental Education) :** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने सभी विश्वविद्यालयों को आदेश दिया है कि स्नातक स्तर और स्नातकोत्तर स्तर पर पर्यावरण शिक्षा का विषय भी मुख्य शिक्षा में सम्मिलित करे । विद्यालय स्तर पर भी शिक्षा को पर्यावरण से जोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए । स्थानीय पर्यावरण समस्याओं को समुदाय जागरूकता कार्यक्रमों की सहायता से हल करना चाहिए ।

(ix) **सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) :** सूचना प्रौद्योगिकी का मूलभूत ज्ञान सभी नागरिकों को देना चाहिए । सूचना प्रौद्योगिकी के लिए विशेष पाठ्यक्रम बनाना चाहिए और उच्च शिक्षा में सम्मिलित करना चाहिए । यह अंतर्राष्ट्रीय मापदण्ड को प्राप्त करने और दूसरे प्रगतिशील देशों से प्रतिस्पर्द्धा करने में सहायता करेगा । इससे उत्पादन क्षमता बढ़ेगी और जीवन बेहतर होगा ।

(x) **अभिभावक शिक्षा (Parents Education) :** नई प्रगतियों और सामाजिक जीवन में सभी स्तरों और क्षेत्रों में परिवर्तन के कारण अभिभावकों का शिक्षित होना आवश्यक है । शिक्षित होने पर अभिभावकों को परिवर्तन क्रियाओं में अपनी भूमिका का ज्ञान होना होता है । बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में वे शैक्षणिक संस्थाओं की सहायता कर सकते हैं ।

(xi) **स्वास्थ्य, स्वच्छता और पोषण शिक्षा (Health, Hygiene and Nutrition Education) :** किसी राष्ट्र का स्वास्थ्य उसके नागरिकों के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है । योग, खेल, प्रतियोगिता और शारीरिक क्रियाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए । स्वच्छता और पोषण भी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण भाग होना चाहिए। अज्ञानता और निरक्षरता के कारण इन पहलूओं पर ध्यान नहीं दिया गया । परन्तु शिक्षा के द्वारा लोगों को इसके लिए जागरूक करना चाहिए ।

4.6 सारांश (Summary)

प्रस्तुत अध्याय में समाज की संरचना को भलीभाँति समझाने का प्रयास किया गया है । सामाजिक भिन्नता के तहत सामाजिक असमानता को भी भलीभाँति समझाने का प्रयास किया गया है । सामाजिक असमानता के कारण उत्पन्न दो वर्ग साधन सम्पन्न वर्ग और सुविधाहीन वर्ग की विस्तृत चर्चा की गई है । सामाजिक असमानता के कारण उत्पन्न सामाजिक शैक्षिक, सांस्कृतिक अभिप्रायों के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है ।

कमजोर और दलित वर्ग के सामाजिक, शैक्षिक, राजनैतिक, धार्मिक, नियोग्यताओं को विस्तारपूर्वक समझाया गया है । सामाजिक असमानता की खाई को पाटने के लिए संविधान द्वारा उनके कल्याणार्थ कई अनुच्छेदों में प्रावधानों को दर्शाया गया है । सामाजिक, आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के शिक्षा की चुनौतियों और भावी योजनाओं का वर्णन किया गया है । भारतीय समाज को समानता प्रदान करने के लिए किए गए प्रयासों की व्याख्या की गई है । साथ-ही उनके शैक्षिक अभिप्रायों को भी समझाया गया है । शिक्षा के द्वारा लोगों को इसके लिए जागरूक करना चाहिए ।

4.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. भारतीय समाज की संरचना पर विस्तापूर्वक लेख लिखिए ।

   (Write a detailed note on the structute of Indian society.)

2. भारतीय समाज की संरचना के फलस्वरूप उत्पन्न असमानता के कारण पिछड़े वर्ग की निर्योग्यताओं का वर्णन कीजिए ।

   (Describe the disadvantages of the backward class due to the inequality as a result of the structure of Indian society.)

3. सामाजिक रूप से वंचित वर्ग के शिक्षा के उत्थान के लिए संविधान द्वारा किए गए शैक्षणिक प्रावधान की चर्चा करें ।

   (Discuss the educational provisions made by the constitution for the upliftment of socially deprived classes.)

4.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Twenty First Century : Contemporary India & Education by Ms. Sachdeva, K.K Sharma, Chandan Kumar & Sunita Sharma.
2. अग्रवाल पब्लिकेशन, समसामयिक भारत और शिक्षा, पूनम मदान/राम शकल पाण्डेय ।
3. Philosophical and Sociological Per's of Education in Contemporary India, Bhavna Shukla.

❐ ❐ ❐

इकाई : 5 शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण एवं हाशियेकरण बाधक
Discrimination and Marginilization as Barriers for Universalization of Education

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

5.2 विविधता की अवधारणा (Concept of Diversity)

5.3 असमानता (Inequality)

5.4 हाशियेकरण (Marginalisation)

5.5 विविधता, असमानता और हाशियेकरण में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in Diversity, Inequality and Marginalisation)

5.6 सारांश (Summary)

5.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

5.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

5.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ विविधता का अर्थ समझ सकेंगे ।
- ❖ असमानता का तात्पर्य समझ सकेंगे ।
- ❖ हाशियेकारण का अर्थ समझ सकेंगे ।
- ❖ विविधता, असमानता और हाशियेकरण में शिक्षा, विद्यालय और शिक्षक की भूमिका के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

5.1 प्रस्तावना (Introduction)

किसी भी राष्ट्र की सफलता का मापदण्ड वहाँ की शिक्षा व्यवस्था है । लोकतांत्रिक व्यवस्था का सफल संचालन करने के लिए योग्य, अनुभवी और प्रबुद्ध नागरिकों की आवश्यकता होती है । इसलिए समाज में जो वंचित वर्ग के लोग हैं उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाना अति आवश्यक है । हमारी संपूर्ण प्रकृति तमाम

वविधताओं से भरी पड़ी है । भिन्न-भिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, जीवों, स्थलाकृतियाँ आदि के रूप में विविधता ही प्रकृति का सौन्दर्य है । हमारा समाज भी भिन्न-भिन्न रंग-रूप, क्षमता, प्रकृति, भाषा, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, आदि से संबंधित विविध व्यक्तियों व समुदाय से समृद्ध है । यही विविधता हमारे समाज की खूबसूरती है । हमारे समाज में विधमान विभिन्न समुदाय और लोगों की क्षमताएँ व खासियत अलग-अलग है । अत: इस लोकतांत्रिक सत्ता व व्यवस्था की यह भूमिका होनी चाहिए कि बिना किसी भेदभाव के सभी लोगों को बेहतर जीवन जीने का प्रबंध करें, तभी बेहतर राष्ट्र की संकल्पना की जा सकती है ।

परन्तु हमारे समाज में कमजोर वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से शोषित एवं उपेक्षित रहा है । देश के करीब 40 प्रतिशत जनतागण इस श्रेणी में आती है । जिन्हें सुविधायुक्त बेहतर एवं सम्मानित जीवन जीने की व्यवस्थाओं से दूर रखा गया । मौलिक सुविधाओं से वंचित किये जाने से ही असमानता जन्म लेती है । वर्त्तमान समय में यह वर्ग राजनीतिक दृष्टि से सशक्त एवं प्रभावशाली हो गया है जो अनेक महत्वपूर्ण निर्णय के लिये उत्तरदायी है ।

स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माताओं ने देश के कमजोर वर्ग का विशेष ध्यान रखा और उनके विकास एवं उत्थान हेतु संविधान में अनेक प्रावधान किये । कमजोर वर्ग के उत्थान के लिये पंचवर्षीय योजना, सामुदायिक विकास योजना, समाज कल्याण कार्यक्रम, अंत्योदय योजना एवं अनेक कार्यक्रम को अपनाया गया । हमारे अनेक प्रयोग के बावजूद भी समाज के कमजोर वर्ग के लोगों की समस्याएँ कम नहीं हुई और आर्थिक विषमता दिनों-दिन बढ़ती गयी जो विकास आयोजकों के लिये चिंता और चुनौती का विषय है । अत: जरूरत है ऐसे शिक्षार्थी माहौल का निर्माण करना जिसमें विविधताओं का सम्मान हो । किसी भी प्रकार की असमानताओं का व्यवहार न हो तथा एक समावेशी वातावरण में बच्चों को विकास करने का अवसर मिले ।

वर्त्तमान समय में हमारे देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति लागू है । फिर भी इसमें भी विभिन्नता है । हमारे देश में किसी राज्य में केवल 8वीं कक्षा तक शिक्षा नि:शुल्क है तो कहीं 10वीं कक्षा तक नि:शुल्क है और किसी राज्य में सम्पूर्ण शिक्षा नि:शुल्क है, जैसे - जम्मु और कश्मीर के प्रांत में हैं । इतनी ही लड़कियों की शिक्षा में भी विभिन्नता है क्योंकि किसी राज्य में 10वीं तक की शिक्षा नि:शुल्क है तो कहीं 12वीं तक और किसी में स्नातक तक की शिक्षा नि:शुल्क है । देश में जाति के नाम पर भी असमानता है । हमारे संविधान में निम्न वर्ग के लोगों का सामाजिक-आर्थिक स्तर उठाने के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था की है परन्तु सरकार जाति के नाम पर असमान व्यवहार कर रही है । देश में अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों की शिक्षा नि:शुल्क है और इन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाती है । भले ही इस वर्ग के कुछ व्यक्ति कितने भी संपन्न क्यों न हों। दूसरी और सामान्य जाति के कुछ बच्चे जो अति निर्धन हैं उन्हें शिक्षा तो नि:शुल्क दी जाती है लेकिन शिक्षा के दौरान आश्यक जरूरतों हेतु आर्थिक सहायता नहीं दी जाती है ।

इसी प्रकार की असमानताएँ कई स्तरों पर व्याप्त हैं, जैसे भाषायी आधार पर, विद्यालय के प्रकार के आध ार, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आधार पर भी व्याप्त हैं ।

5.2 विविधता की अवधारणा (Concept of Diversity)

आम बोलचाल की भाषा में जब भिन्न-भिन्न प्रकार की चीजें, प्राणी एक साथ रहते हैं तो उसे विविधता कहते हैं । अर्थात् विभिन्न प्रकार के प्राणियों का सह-अस्तित्व ही विविधता है । आपने अपने पास एक सुंदर बगीचा या उद्यान देखा होगा । बगीचा इसलिये खुबसूरत नहीं होता है कि उसमें फूलों के पौधे लगे होते हैं ।

बल्कि वो खूबसूरत इसलिए होता है कि उसमें विभिन्न प्रकार के सजावटी पौधों एवं फूलों के पौधे लगे होते हैं । विभिन्न रंग-रूप और आकार के पौधे बगीचे के सौन्दर्य में चार चाँद लगा देते हैं ।

भारत भी एक विशाल क्षेत्रफल वाला देश है । जहाँ एक अरब से अधिक लोग निवास करते हैं । इन लोगों की अलग-अलग धर्म में रहने वाले निवासियों की प्रथाएँ अलग-अलग हैं । व्यक्तियों के विश्वासों में भी भारी भिन्नता है । यहाँ तक कि एक ही परिवार के सदस्य अलग-अलग देवताओं की उपासना करते हैं । यहाँ के लोगों का रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, मान्यताओं, लोक परंपराओं में भी विविधता पायी जाती हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारत अनेकता का देश है परन्तु अनेकता में एकता भारत की विशेषता है । भारत के प्रत्येक व्यक्ति में अन्य लोगों के लिये बन्धुत्व की भावना रहती है । यह बंधुत्व भाव ही प्रजातंत्र की सफलता का एक प्रमुख सोपान है ।

भारत एक विभिन्नताओं का देश है । जहाँ सर्वत्र अनेकता हैं । क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद और धार्मिक विभिन्नता संपूर्ण समाज में व्याप्त है । इसी कारण भारतीय समाज में अनेकता में एकता देखने को मिलती है । इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत का एक महान चरित्र है - विविधता में एकता, जो इंसानियत के संबंध में सभी धर्मों को बाँधकर रखता है । यही अनूठा रूप सामाजिक विविधता कहलाता है क्योंकि भारतीय समाज में सैकड़ों जातियाँ एवं उपजातियाँ पायी जाती हैं । साथ ही अनेक धर्मों की जन्मस्थली भी है । यहाँ तो कोई हिन्दू, तो कोई मुसलमान, तो कोई ईसाई है तो कोई बौद्ध और सिक्ख । इस प्रकार की विविधता में भी भारतीय संस्कृति में एक अभूतपूर्व एकता दिखाई पड़ती है ।

5.2.1 शिक्षा में विविधता (Educational Diversity)

शिक्षा में भी विविधता का एक महत्वपूर्ण स्थान है । शिक्षा में विविधता का दर्शन कई स्तरों एवं रूपों में देखा जा सकता है । यह छात्रों के समूह में, वर्ग, लिंग एवं योग्यता पर आधारित हो सकता है । साथ-ही आर्थिक साधनों के स्वामित्व के आधार पर भी शिक्षा में विविधता देखने को मिलता है । इसका अध्ययन निम्नांकित शीषकों के अंतर्गत किया जा सकता है ।

5.2.2 भौगोलिक विविधता (Geographical Diversity)

भारत की जलवायु में भी विविधता देखने को मिलती है । भारत को भौगोलिक दृष्टिकोण से पाँच बड़े खण्डों में विभाजित किया गया है :-

(i) उत्तर का पर्वतीय प्रदेश

(ii) उत्तर भारत का मैदान

(iii) दक्षिण का पठारी प्रदेश

(iv) राजस्थान का मरूस्थल

(v) समुद्र तटीय मैदान

इन विविध क्षेत्रों में जलवायु संबंधी विविधता देखने को मिलती है । मैदानी इलाके में ग्रीष्म काल की जलवायु अधिक गर्म एवं सर्दी में अधिकांश ठंड । अनेक प्रदेशों जैसे असम में भारी वर्षा होती है तो दूसरी ओर राजस्थान का सूखा क्षेत्र जहाँ वर्षा बहुत कम होती है । अतः विभिन्न स्थानों की सामाजिकता में विभिन्नता का आना जलवायु संबंधी विभिन्नता का कारण भी है ।

5.2.3 सांस्कृतिक विविधता (Cultural Diversity)

भारत एक ऐसा महान राष्ट्र है जहाँ अनेक क्षेत्रों में सांस्कृतिक विविधता दिखाई पड़ती है । लोगों का रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, रीति–रिवाज, परंपराएँ भी अलग–अलग हैं । साथ ही मानसिकता भी अलग–अलग प्रकार की हैं । जैसे – उत्तर भारत में अनेक जगह शिक्षित सभ्य लोग मिलते हैं । वहीं पूर्वोत्तर राज्यों में अपेक्षाकृत कुछ कम शिष्ट एवं सुसंस्कृत लोग मिलते हैं । अतः सांस्कृतिक दृष्टि से भी व्यक्तियों की मान्यताओं एवं मूल्यों में अंतर होता है ।

5.2.4 धार्मिक विविधता (Religious Diversity)

भारत एक विशाल देश है जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं । जिनका मत भी अलग–अलग हैं । अतः विभिन्न धर्म और मतों के अनुयायियों में भी धार्मिक विविधता दिखाई देती है । जैसे जैन धर्म के लोग चींटी तक को मारना पाप समझते हैं, कन्द मूलों को खाना उचित नहीं समझते, जबकि अन्य सम्प्रदाय में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है ।

5.2.5 भाषायी विविधता (Language Diversity)

प्रकृति ने मनुष्य के मुँह को एक ऐसा उपकरण के रूप में उपहार प्रदान किया और उससे अपेक्षा की होगी कि संसार के सभी प्राणी अपनी वाणी द्वारा संसार को कुशल रखने में अपने दायित्वों को निर्वहन पूर्ण आत्मीयता से करेंगे । इसलिये समाज में भाषा–बोली का महत्वपूर्ण स्थान है । हमारा देश भारत बहुभाषायी राष्ट्र है । भारतीय समाज में बहुत सी भाषाएँ बोली, समझी एवं लिखी जाती है । साइमन कमिशमन के रिपोर्ट के अनुसार यहाँ व्यवहार में लायी जाने वाली भाषाओं की संख्या लगभग 222 है । इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न भागों में लगभग 545 भाषाएँ व्यवहार में लायी जाती है । इन विविध भाषाओ के कारण भारत में विविध ता दिखाई पड़ती है । जब संविधान लागू हुआ था तो आठवीं अनुसूची में 14 भाषाओं को स्थान दिया गया था । सन् 1967 में सिन्धी और सन् 1992 में कोंकणी, मणिपुरी, और नेपाली भाषाएँ इसमें जोड़ दी गई । इस प्रकार वर्तमान मे भारत के संविधान द्वारा 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है । ये भाषाएँ हैं – हिन्दी, बांगला, पंजाबी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, उर्दू, सिन्धी, कश्मीरी, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, कोंकणी, मणिपुरी, नेपाली, संस्कृत, डोगरी, संथाली, वौडा व मैथिली है ।

भारत एक बहुभाषी देश है जहाँ विभिन्न भाषाएँ बोली जाती है और विभिन्न कामकाज कई भाषाओं में एक साथ होता है । जैसे – अखबार, फिल्में, किताबे, शिक्षा, कचहरी एवं कार्यालय । इस प्रकार भारत में भाषायी विविधता के कई आयाम हैं । अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन ही भाषा है । भाषा के माध्यम से ही विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों को एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को स्थानान्तरित किया जाता है । अतः भारत विभिन्न भाषायी लोगों का देश है जहाँ अनेकता में एकता है ।

5.2.6 आर्थिक विविधता (Economical Diversity)

भारत एक विशाल देश है जहाँ आर्थिक दृष्टिकोण से भी विविधता दिखाई पड़ती है । एक ओर जहाँ ऐसा वर्ग है जिन्हें काफी मेहनत करने के बाद भी दो वक्त की रोटी सही ढंग से नहीं मिल पाती । वहीं दूसरी ओर ऐसे धनी वर्ग के लोग हैं जिनकी आर्थिक स्थिति इतनी सुदृढ़ है कि इस वर्ग की गणना विश्व में अनेक धनी

वर्ग के साथ की जाती है । प्रारंभिक विद्यालय में पढ़ने वाले छात्र विभिन्न आर्थिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं । गाँवों में रहने वाले लोगों को कारवकार, खेतिहर मजदूर, घरेलू काम काज व अन्य कार्य करने वालों की कोटि में बाँटा जा सकता है । जनसंख्या रिपोर्ट, 2001 एवं अन्य रिपोर्ट के आधार पर बिहार की 89.54 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र तथा 10.46 प्रतिशत जनसंख्या ही शहरों में रहती है । ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित प्रारंभिक विद्यालयों में कारतकार, खेतिहार मजदूर, घरेलू कामकाज व अन्य वर्ग के कार्य करने वाले बच्चे पढ़ते हैं । जिसमें अनु० जाति के बच्चे भी शामिल हैं । शहरों में स्थित प्रारंभिक विद्यालयों में निम्न आय वर्ग के वे सभी बच्चे जो आर्थिक तंगी के कारण भी विद्यालयों में नहीं जाते हैं, शिक्षण प्राप्त करते हैं । शहरी प्रारंभिक विद्यालयों में घरेलू कामकाज करने वाले, प्रतिदिन मजदूरी करने वाले एवं सरकारी एवं निजी संस्थानों में कार्य करने वालों के बच्चे भी पढ़ते हैं । किन्तु यह स्पष्ट है कि जो निजी शिक्षा के फीस देने में सक्षम है वो गुणवत्ता की दृष्टि से उन विद्यालयों को भी पसंद करते हैं ।

5.2.7 जातीय विविधता (Caste Diversity)

भारतीय सामाजिक संस्थाओं में जाति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । आदिकाल से ही भारत में जाति-प्रथा का प्रचलन रहा है । पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एवं वर्ग । डॉ० सक्सेना का मत है कि जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक मुख्य आधार रहा है । हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र का अध्ययन बिना जाति के विशलेषण के अपूर्ण ही रहता है । जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है । सामान्यत: भारत जातियों एवं सम्प्रदाय की परंपरात्मक स्थली माना जाता है । ऐसा कहा जाता है कि यहाँ की हवा में जाति घूली है और यहाँ तक कि मुसलमान एवं ईसाई भी इससे अछूते नहीं बचे हैं। अत: भारत में जातीय विविधता भी देखने को मिलती है ।

पारंपरिक रूप से जातियाँ व्यवसाय से जुड़ी होती थी । एक जाति में जन्म लेने वाला व्यक्ति उस जाति से जुड़े व्यवसाय को ही अपनाता था । अत: वह व्यवसाय वंशानुगत होता था । दूसरी ओर एक विशेष व्यवसाय, किसी जाति से जुड़े होने के कारण उसी जाति के लोग अपना सकते थे । किसी दूसरी जाति के सदस्य उस कार्य को नहीं अपना सकते थे । सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जब जाति जन्म द्वारा कठोरता से निर्धारित हो गयी । उसके बाद किसी व्यक्ति के लिये सैद्धांतिक स्तर पर कभी भी उसका जीवन बदलता असंभव था। चाहे उच्च जाति के लोग उस उच्च स्तर के लायक हो या न हों । उनका स्तर सदैव उच्च रहता था । जबकि निम्न जाति के लोगों का स्तर हमेशा निम्न रहता था ।

5.2.8 लैंगिक विविधता (Gender Diversity)

भारतीय समाज में लैंगिक विविधता भी दिखाई पड़ती है । भारत में सदैव से ही पितृ सत्तात्मक परिवार का महत्व रहा है । जिसके अंतर्गत व्यक्ति की पहचान पिता के नाम से होती है । यदि वह बालिका है तो विवाह के पश्चात उसकी पहचान पति के नाम पर होती है । उपरोक्त स्थिति स्त्री की स्थिति को समाज में निम्न स्तर प्रदान करती है । यह परंपरागत व्यवस्था भारतीय समाज में आज भी मध्य वर्गीय तथा निम्न वर्गीय लगभग सभी वर्गों के समाज में पायी जाती है । भारत में संतान के रूप में हमेशा पुत्री की अपेक्षा पुत्र का महत्व अधिक रहा है । समाज में जब बालक का जन्म होता है तो परिवार में खुशियाँ मनायी जाती है तथा बालिका के जन्म पर शोक । बालिकाओं का जन्म परिवार में आर्थिक दृष्टि से भार समझा जाता है । वहीं बालक को आमदनी का साधन समझा जाता है । इस प्रकार परिवार में शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण से लड़की की अपेक्षा

लड़के को अधिक सुविधा प्रदान की जाती है । जहाँ शिक्षा का अभाव है वहाँ पर कन्या भ्रूण हत्या की संख्या अधिक है तथा महिलाओं के साथ लैंगिक भेदभाव भी उन्हीं क्षेत्रों में अधिक होते हैं जहाँ समाज के लोग अशिक्षित हैं ।

असंतुलित लिंगानुपात एवं लड़कियों की घटती संख्या वर्त्तमान भारतीय समाज की सबसे बड़ी चुनौती है। राजस्थान में लिंगानुपात प्रारंभ से ही पुरूषों के पक्ष में रहा है अर्थात् प्रति एक हजार पुरूषों के पीछे स्त्रियों की संख्या सामान्यतया एक हजार से कम 922 रही है । विभिन्न प्रदेशों में भी लिंगानुपात भी भिन्न-भिन्न हैं । यह दर्शाता है कि भारतीय समाज में लैंगिक विविधता है । परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस असमानता को दूर करने का प्रयास केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार दोनों स्तर पर किये जाते रहे हैं ।

NUEPAA 2009-10 के अनुसार प्राथमिक एवं अप्राथमिक शिक्षण में लैंगिक विविधता

	वर्ग I - IV				वर्ग VI - VII				वर्ग I - VIII			
राज्य	लड़के	लड़कियाँ	कुल	GPI	लड़के	लड़कियाँ	कुल	GPI	लड़के	लड़कियाँ	कुल	GPI
बिहार	403046	403676	805722	1.00	160330	165144	325474	1.03	562376	568820	1131196	1.01

5.3 असमानता (Inequality)

समाज में वर्गीकरण की परंपरा आदि काल से चली आ रही है । कार्य, काल और परिस्थितियों के आधार पर समाज का वर्गीकरण नया नहीं है । अधिकांश समाजों में व्यक्ति स्वयं को कुछ वर्गों मे वर्गीकृत कर लेते हैं । ऐसे वर्गों को परिभाषित करने की प्रक्रिया को सामाजिक वर्गीकरण कहते हैं । सामाजिक वर्गीकरण का आधार सामाजिक असमानता होती है । सभी समाज किसी न किसी सीमा तक अपने सदस्यों का वर्गीकरण कर सामाजिक असामानता को प्रोत्साहित करते हैं ।

वास्तव में कुछ समाजकारी इस वर्गकाल को समाज की एक व्यवहारिक आवश्यकता बताते हैं क्योंकि समाज में उच्च स्तरीय कार्यों का आवंटन उच्च वर्ग को दिया जाता है तथा निम्न स्तर का कार्य निम्न वर्ग को दिया जाता है, क्योंकि वह बौद्धिक दृष्टि से अधिक समर्थ नहीं हैं, किंतु वर्गीकरण जब जन्मजात हो जाता है तो उसमें कठोरता आ जाती है और निम्नवर्गों की सामाजिक गतिशीलता अवरूद्ध हो जाती है । जिससे अवसर एवं वंचना की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है । जाति प्रथा के अनुसार - भारतीय समाज में चार वर्ग प्रचलित थे। जिनमें ब्राह्मण वर्ग केवल अनुष्ठान कार्य करते थे, क्षत्रीय रक्षा का कार्य करते थे, वैश्य व्यापार तथा शुद्र उपरोक्त की सेवा का कार्य करते थे । परन्तु इस आधार पर समाज में निम्न वर्ग को बहिष्कार का शिकार होना पड़ता था । उच्च वर्ग उसे सहन नहीं करता था । परिणामस्वरूप उनमें हीन भावना आने लगी ।

इस प्रकार समाज में दो प्रकार का विभेदीकरण देखने को मिलता है (1) व्यक्तिगत (2) सामाजिक । दो व्यक्तियों में शारीरिक बनावट और आयु के आधार पर विभेद व्यक्तिगत विभेद है । इसके साथ धर्म, संस्कृति, रूचि, राजनीतिक और आर्थिक आधार पर किया जाने वाला विभेद सामाजिक विभेद है । इसी सामाजिक विभेदीकरण में उच्चता और निम्नता के भाव जुड़ जाने के कारण सामाजिक स्तरीकरण भी उत्पन्न हो जाती है।

हमारे देश में आर्थिक दृष्टिकोण से तीन वर्ग - धनी वर्ग, निर्धन वर्ग और मध्यम वर्ग हैं और तीनों के बीच भारी असमानता है । देश में 60 प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग हैं जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं । कुछ ऐसे लोग है जिनके पास अपार धन और संपत्ति है । इन तीनों वर्गों के बीच बहुत बड़ी खाई है । इस भिन्नता से अशिक्षा, अज्ञानता, बेकारी, कुपोषण और रूढ़िवादिता को प्रोत्साहन मिलता है । ऐसे व्यक्ति

में निराशा, कुण्ठा की स्थिति उत्पन्न होती है और कभी-कभी संघर्ष की स्थिति भी पैदा हो जाती है ।

5.3.1 असामनता के कारण (Cause of Inequality)

असमानता के विभिन्न स्वरूप सामाजिक वर्गीकरण एवं विविधता के आधार पर निर्भित होते हैं । भारत वर्ष में सामाजिक वर्ग स्थिति को देखने से पता चलता है । यहाँ के लोगों में जमीन एवं पूँजी में असमानता देखने को मिलती है । उँचे वर्ग के लोगों पर जमीन एवं पूँजी का बाहुल्य परिलक्षित होता है परन्तु इस अनुपात में निम्न वर्ग के लोगों पर जमीन एवं पूँजी का नितांत अभाव है । अत: आर्थिक दृष्टिकोण से समाज में तीन वर्ग पाये गये हैं :-

(i) धनी वर्ग (ii) मध्यम वर्ग एवं (iii) निम्न वर्ग ।

इन तीनों वर्गों के सामाजिक स्तर का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि इनके सामाजिक स्तर में आर्थिक आधार पर अनेक भिन्नताएँ पायी जाती हैं । इसके निम्न कारण हैं :-

(a) आर्थिक संपन्नता के क्षेत्र में असमानता (Inequality in the field of economic prosperity)

(b) व्यवसायिक प्रतिष्ठा में असमानता (Inequality in vocational status)

(c) शिक्षा प्राप्ति के अवसरों में असामानता (Inequality in acheiving educational opportunity)

(d) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक (Social and cultural factor)

(e) भौगोलिक कारक (Geographical factor)

(f) प्रौद्योगिकी कारण (Technical factor)

(g) व्यक्ति की असीमित इच्छाएँ (Unlimited desires of people)

5.4 हाशियेकरण (वंचित) (Marginalisation)

हाशिये से तात्पर्य समाज के उन वंचित समूहों से है जो भिन्न कारण से अपनी उन्नति नहीं कर पाये हैं। उन वंचित वर्गों को शिक्षा की मुख्य धारा में लाना है । यानि हाशयाई का मतलब होता है कि जिसे किनारे या हाशिये पर ढकेल दिया गया हो । ऐसे समूह के व्यक्ति किसी भी कार्यक्रम में केन्द्र में नहीं रहता । जैसे - अनु० जाति/जनजाति/महिलायें एवं अल्पसंख्यक वर्ग जो हाशिये पर खड़े हैं क्योंकि उन्हें समाज के उच्च एवं धनी वर्ग के समान सुविधाएँ नहीं प्राप्त हो रहे हैं । संविधान में उन समूहों के लिये विशेष प्रावधान होने के बावजूद भी सदियों से आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भेदभाव होने के कारण समाज की मुख्यधारा से अलग-थलग है । इनका अपेक्षित विकास नहीं हो पाता है ।

हाशियेकरण की परिभाषा विभिन्न विद्वानों ने इस प्रकार दी है :-

गार्डन (Garden) के अनुसार - "वंचित होना बाल्य जीवन की उधीपकों दशाओं की न्यूनता है ।"

(To be deprived is the deficiency of stimulus conditions of child life)

श्रीमती आर0 के शर्मा (R.K. Sharma) के अनुसार - "वंचन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश से जुड़े आवश्यक एवं अपेक्षित अनुभव उधीपकों का अभाव है, इस वंचन के फलस्वरूप बालक का

अपेक्षित विकास नहीं हो पाता ।"

(Deprivation is the lack of social, economical and cultural environment necessary and expected experiencial stumuli due to which child's desired development does not occur)

वॉलमैन (Wolman) के अनुसार – "वंचित होना निम्न स्तरीय जीवन दशा या अलगाव को घोषित करता है जो कि कुछ व्यक्तियों को उनके समाज की सांस्कृतिक उपलब्धियों में भाग लेने से रोकता है ।"

(Depriviation or to be deprived indicates to low category life conditions or separations which stops some people from participating in their society's cultural acheivements)

5.4.1 अपवंचित बालकों (हाशियेकरण) की समस्याएँ (Problems of Deprived Children)

- वंचित बालक जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं ।
- वंचित बालक पूर्वाग्रहों से ग्रसित होते हैं ।
- वंचित बालक का सामाजिक-आर्थिक स्तर निम्न होता है ।
- ऐसे बालक अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं से अनभिज्ञ रहते हैं ।
- वंचित बालक हीन-भावना से ग्रसित होते हैं ।
- वंचित बालक की शैक्षिक उपलब्धि निम्न स्तरीय होती हैं ।
- इसमें चिंता और भय की मात्रा अधिक रहती है ।
- वंचित बालक अन्तर्मुखी होते हैं ।
- इनका बौद्धिक स्तर निम्न होता है ।

5.5 विविधता, असमानता और हाशियेकरण में शिक्षा की भूमिका (Role of Education in Diversity, Inequality and Marginalisation)

भारत एक विशाल देश है जहाँ विभिन्न जाति, धर्म, समुदाय, संस्कृति के लोग निवास करते हैं । उन सभी लोगो का रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, मान्यताएँ एवं परंपराएँ भी अलग-अलग हैं । इसमें कोई संदेह नहीं भारत अनेकता में एकता स्थापित करने वाला देश है । स्वतंत्रता के बाद जब वातावरण में स्थिरता आई तो अनेक नकारात्मक बिन्दुओं ने सकारात्मक तस्वीर के निरूद्ध अपना खाका तैयार कर, ताना बाना बुनना प्रारंभ कर दिया । ऐसे समय में जब भारत एक संक्रमण काल से उबरकर शाँति और अमन का साँस ले रहा था, तब जातिवाद धार्मिक कट्टरता, सम्प्रदायवाद, भाषावाद, आर्थिक विषमताएँ सामाजिक विषमताएँ एवं लिंग भेद पनपने लगे । इन सभी के कारण मानव मन इस स्वतंत्रता के स्वरूप को अन्त: मन से कोसने लगा । एक वाह्य शत्रु से छुटकारा पाया तो दूसरा अन्दर का शत्रु अपने ही समाज से उत्पन्न होकर भारत के लिये समय और शक्ति क्षरण का कारण बन गया ।

इस भारत में लिंग भेद, धर्मवाद, जातिवाद की समस्याएँ भी उपस्थित हो गयी जो आजतक बनी हुई है ।

देश के विकास और स्वर्णिम भविष्य के लिये इनका समाधान किया जाना आवश्यक है । इसलिये देश में विविधता में एकता स्थापित करने और असमानता को दूर करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही समाज का बहुमुखी विकास तथा प्रत्येक बालक/बालिकाओं का सर्वांगीण विकास निहित होता है । इसलिये शिक्षा के लिये ऐसी योजना बनानी चाहिये जिससे बालकों में देश की विविधता में एकता की भावना की जानकारी हो सके, साथ ही इसके कारण पैदा होने वाली समस्याओं को दूर करने के लिये दृढ़संकल्पित हो, तभी देश में अनेता में एकता स्थापित हो सकती है ।

5.5.1 शिक्षा की भूमिका (Role of Education)

विविधता में एकता स्थापित करने और असमानता को दूर करने में शिक्षा की निम्न भूमिका हैं :-

- छात्रों का चारित्रिक एवं नैतिक विकास करना ।
- छात्रों मे विभिन्न संस्कृतियों के प्रति आदर की भावना जागृत करना ।
- छात्रों में प्रजातांत्रिक गुणों का विकास करना ।
- छात्रों को अधिकार एवं कर्त्तव्यों की जानकारी प्रदान करना ।
- छात्रों में व्यवसायिक कुशलता का विकास करना ।
- सभी धर्मों का आदर करने की भावना का विकास करना ।
- सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय की भावना का विकास करना ।
- छात्रो में बहुभाषा सीखने की योग्यता विकसित करना ।
- राष्ट्र विरोधी प्रवृतियों के विरूद्ध लड़ने की क्षमता विकसित करना ।
- सभी जातियों को समानता की दृष्टि से देखना ।
- पाठ्यक्रम में विज्ञान विषयों को प्रमुखता देनी चाहिये ताकि विचारों की संकीर्णता, अंधविश्वास एवं जाति भेद जैसी समस्याओं का अंत हो सके ।
- देश के विभिन्न भागों में रहने वाले व्यक्तियों के रहन-सहन, आचार-विचार एवं रीति-रिवाज आदि का सामान्य ज्ञान बालकों को कराना चाहिये ।
- भिन्न-भिन्न वर्ग के विद्यार्थियों एवं युवाओं के लिये नाटक, नृत्य, संगीत तथा खेलकूद का आयोजन किया जाए । जिसमें उनमें परस्पर सदभाव एवं मेल मिलाप बढ़ेगा एवं वर्ग विभेद की संकुचित भावना समाप्त होगी ।

5.5.2 विविधता, असमानता और हाशियेकरण में विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका (Role of School and Teachers in Diversity, Inequality and Marginilisation)

शिक्षक को शैक्षिक व्यवस्था का आधार बिंदु माना जाता है । इसलिये शिक्षक की भूमिका प्रत्येक क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानी जाती है । शिक्षक को एक आदर्श बिंदु के रूप में स्वीकार किया जाता है । शिक्षक को ब्रह्मा,

विष्णु एवं महेश की उपमा प्रदान की गई है जो किसी व्यवसाय के व्यक्ति को प्रदान नहीं की जाती । शिक्षक सदैव सकारात्मक परिवर्तन की ओर कार्य करता है तथा नकारात्मक प्रभावों को समाप्त करता है । एक अभिभावक विद्यालय में बालक/बालिकाओं का नामांकन दिलाता है कि उसके बालक/बालिकाओं में सकारात्मक परिवर्तन होगा तथा उसका सर्वाजनिक विकास होगा ।

शिक्षा की सफलता शिक्षक पर निर्भर करती है । शिक्षा के माध्यम से विविधता में एकता की भावना का विकास करने और असमानताओं को तभी दूर किया जा सकता है, जब शिक्षक योग्य, कुशल, अनुभवी एवं विषय में निपुण हो । उसे राष्ट्र की गौरवमयी सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण ज्ञान हो । वह राष्ट्र की ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से पूरी तरह अवगत हो, साथ-ही वह अपने विचारों को सशक्त ढंग से दूसरे के सामने रखने की क्षमता रखता है । वह अपने कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक हो, कथनी और करनी में अंतर न हो, देश प्रेम की भावना से ओत-प्रोत हो और संकट के समय राष्ट्र की बलिवेदी पर अपने प्राणों को निछावर करने की इच्छा रखता है ।

यदि हम अपने छात्रों में देश प्रेम और विविधता में एकता की भावना का विकास करना चाहते हैं तो शिक्षक को देश प्रेम और विविधता में एकता की भावना से परिपूर्ण होना होगा । अत: एक शिक्षक के रूप में उनकी भूमिका निम्न है :-

(i) छात्रों के साथ निष्पक्षता (Impartiality with Student)

शिक्षक को छात्रों के साथ निष्पक्षता की भावना रखना चाहिये, चाहे वो किसी भी जाति, धर्म एवं वर्ग का क्यों न हो । सभी के साथ समान व्यवहार अपनाना चाहिए । उसे किसी भी मामले में अपनी व्यक्तिगत राय को सर्वोपरि नहीं रखना चाहिये । तभी सभी छात्रों के साथ निष्पक्षता होगी तथा विविधता में एकता के साथ-साथ असमानता दूर होगी ।

(ii) सहयोग की भावना (Spirit of Cooperation)

शिक्षक को सभी विद्यार्थियों के प्रति विश्वास, सहयोग, आदर की भावना को अपनाना तथा कटुता की भावना से दूर रहना चाहिए । उसे बच्चो पर अपनी दादागीरी नहीं थोपनी चाहिए और न ही तानाशाही प्रवृत्ति का सहारा लेना चाहिए ।

(iii) सार्वजनिक हित की भावना का विकास (Development of Spirit of Public Welfare)

वर्त्तमान समय में छात्रों में सार्वजनिक हित की भावना की सर्वाधिक कमी देखी जाती है । आज व्यक्ति स्वहित के लिये समाज एवं राष्ट्र को आहत कर देता है । शिक्षक द्वारा प्राचीन काल से ही सामाजिक हित एवं राष्ट्रहित का पाठ पढ़ाया जाता है । इससे छात्रों में सार्वजनिक हित की भावना विकसित होती है । धीरे-धीरे यह भावना संपूर्ण समाज में फैल जाती है । आज भी सार्वजनिक हित के कार्य करने वालों को पुरस्कृत किया जाता है ।

(iv) बन्धुत्व की भावना का विकास (Development of Fraterinity)

शिक्षक द्वारा छात्रों में विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास किया जाना चाहिए । शिक्षक द्वारा जब विदेशी छात्रों तथा भारतीय छात्रों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया जाता है । तब विश्व बन्धुत्व की भावना उत्पन्न

होती है । जब पाकिस्तान से छात्रों का समूह भारत भ्रमण पर आता है तो भारत द्वारा उनका आतिश्य किया जाता है । इसमें शिक्षक एवं छात्र दोनों का ही सहयोग होता है । इससे पाकिस्तानी छात्रों के मन में भ्रातृत्व भाव उत्पन्न होता है । इस प्रकार के कार्य शिक्षकों द्वारा करने पर विश्व बन्धुत्व की भावना विकसित होती है ।

(v) धार्मिक दृष्टिकोण में परिवर्तन (Change in Religious view)

शिक्षक द्वारा धर्म की संकीर्ण व्याख्या के स्थान पर व्यापक एवं सार्वभौमिक व्याख्या की जाती है । शिक्षक द्वारा छात्रों को प्रारंभिक स्तर से ही मानव धर्म सिखाया जाता है तथा धर्म को एकता एवं सदभावना का केन्द्र बिन्दु बताया जाता है । कोई भी धर्म मानवता एवं नैतिकता के विरूद्ध कार्य करने के लिये नहीं कहता । हमारे संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म मानने की स्वतंत्रता है । इस सिद्धांत को तभी अपनाया जा सकता है जब हम धर्म निरपेक्षता को अपने जीवन में उतारे । धर्म की इस प्रकार की व्याख्या से छात्र/छात्राओं एवं समाज में धर्म के प्रति सकारात्मक एवं व्यापक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाता है ।

(vi) वैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन (Change in Scientific view)

विमान के अविष्कारों एवं चमत्कारों से समाज एवं राष्ट्र को लाभ होता है । एक शिक्षक द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संदर्भ में दो प्रकार के तथ्यों की व्याख्या की जाती है । प्रथम विज्ञान का उपयोग प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं मानव-कल्याण के लिये होना चाहिए । द्वितीय विज्ञान संबंधी खोजों में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की स्थिति होनी चाहिये । जिससे एक राष्ट्र का नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो । शिक्षक की दृष्टि से विज्ञान संपूर्ण मानव समाज के लिये है तथा होना भी चाहिये ।

(vii) जातिगत व्यवस्थाओं में परिवर्तन (Change in Caste Related System)

भारतीय समाज में अनेक जातियाँ हैं तथा इनकी अनेक प्रकार की परंपराएँ हैं । शिक्षक द्वारा सदैव उन परंपराओं एवं व्यवस्थाओं को अस्वीकार किया जाता है जो सार्वभौमिक एवं समाजोपयोगी नहीं है । जैसे - शिक्षक विद्यालय में अपना व्यवहार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ण के आधार पर नहीं करता वरन सभी के प्रति समान व्यवहार करता है । इसके साथ-साथ जातिगत आधार पर किये जाने वाले संगठन एवं योजनाओं के संचालन का एक शिक्षक द्वारा विरोध किया जाता है ।

(viii) सांस्कृतिक विकास में भूमिका (Role in Cultural Development)

आज भी भारतीय शिक्षक त्यागमय जीवन व्यतीत करता है । क्योंकि वह भारतीय संस्कृति के मूल तत्व को जीवित रखना चाहता है । आज शिक्षक से प्रेरणा प्राप्त करके सादा जीवन, उच्च विचार की भावना समाज में विकसित होती है । शिक्षकों द्वारा भारतीय संस्कृति को आदर्श रूप प्रदान किया जाता है ।

(ix) पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन (Organising Co-curricular Activities)

देश मे अनेकता में एकता और असमानता को दूर करने के लिये निम्न पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए :-

(i) प्रतियोगिता का आयोजन

(ii) बाल मेला का आयोजन

(iii) प्रदर्शनी का आयोजन

(iv) खेलकूद का आयोजन

(v) सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन

(vi) शैक्षिक भ्रमण

(vii) समूह चर्चा का निर्माण

(viii) राष्ट्रीय पर्व का आयोजन

(ix) महापुरूषों के जन्म दिवस का आयोजन

(x) राष्ट्रीयता की भावना (Spirit of Nationalism)

यदि अध्यापक में राष्ट्रीयता की भावना नहीं होगी तो वह बच्चों मे राष्ट्रीयता की भावना के विकास के कार्य मे सफल नहीं हो सकेगा ।

(xi) विभिन्न विषयों का ज्ञान (Knowledge of Different Subjects)

विविधता में एकता स्थापित करने तथा असमानता को दूर करने हेतु शिक्षको मे विभिन्न विषयों का ज्ञान होना चाहिए । जैसे नागरिकशास्त्र के शिक्षण से छात्रों में आदर्श नागरिक बनने की प्रेरणा मिलती है । साथ-ही छात्रों को अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के संबंध में जानकारी होती है । इतना ही नहीं इतिहास के शिक्षण से भी ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी होती है । साथ-ही उन महापुरूषो के संबंध में जानकारी होती है जिन्होंने अपने हित की परवाह किये बिना राष्ट्र के लिये सर्वस्व समर्पित किया । इससे छात्रों में देश प्रेम की भावना जागृत होती है ।

(xii) उपयुक्त शिक्षण विधियाँ (Appropriate Teaching Method)

विविधता में एकता और असामानता को दूर करने हेतु शिक्षकों में उपयुक्त शिक्षण विधियाँ का ज्ञान भी होना चाहिए । इसलिये शिक्षकों को उन शिक्षण विधियों का चयन करना चाहिए जिससे छात्रों को अपनी योग्यता को विकसित करने में मदद मिले और उनके व्यवहार में परिवर्तन हो सके । प्रश्नोत्तर विधि, वाद-विवाद के माध्यम से छात्रों में विविधता में एकता से संबंधित विषयों का ज्ञान प्रदान किया जा सकता है ।

(xiii) पाठ्य पुस्तकों में से लैंगिक पक्षपात के प्रकरण को हटाना (Eradicate the 1 topics of Gender bias from the text books)

विविधता में एकता स्थापित करने तथा असमानता को दूर करने हेतु पाठ्यपुस्तकों में जो लैंगिक पक्षपात से संबंधित प्रकरण है उसे हटाने हेतु शिक्षकों द्वारा प्रयास होना चाहिए जिससे लैंगिक विभेद न हो और राष्ट्र के प्रति एकता, आस्था और जागृति का समावेश हो ।

5.5.3 विविधता, असमानता और हाशियेकरण में विद्यालय की भूमिका (Role of Schools in Diversity, Inequality and Marginalisation)

देश को उत्तम नागरिक प्रदान करने, विविधता में एकता एवं असमानता को दूर करने में विद्यालय की

महती आवश्यकता है । विद्यालय एक ऐसा संस्थान है जो सभ्य नागरिकों द्वारा बनायी गयी है । इस संस्था में ऐसा वातावरण एवं अनुभव दिये जाते हैं जिससे बालकों में अपेक्षित ज्ञान होता है और विभिन्न कौशलों को अर्जित करते हैं एवं अपने व्यवहार में परिवर्तन करते हैं । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये शिक्षा के माध्यम से आदर्श नागरिक के निर्माण में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यही नागरिक अपने कार्यों द्वारा समाज में अपेक्षित परिवर्तन लाते हैं तथा समाज में विविधता के एकल एवं असमानता दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन करते हैं । शिक्षित बालक सामाजिक असमानता, धार्मिक अंधविश्वास को दूर करने एवं स्वस्थ परंपराओं के निर्माण में योगदान देते हैं । इस प्रकार विद्यालय, विविधता में एकता, असमानता एवं वंचित वर्गों को सही ढंग से शिक्षित करने तथा उन्हें नयी दिशा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो निम्न हैं :-

(i) व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)

(ii) संस्कृति की सुरक्षा, सुधार एवं हस्तान्तरण (Preservation, Improvement and Transmission of Culture)

(iii) ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना का विकास (Development of International Feeling)

(iv) नागरिकता का विकास (Development of Citizenship)

(v) मानवीय गुणों का विकास (Development of Human Qualities)

(vi) जटिल समस्याओं का समाधान (Solution of Complex Problem)

(vii) लैंगिक समानता विषयी कार्य (Gender Equality Functions)

(viii) राष्ट्रीय गौरव एवं देश प्रेम का प्रशिक्षण (Training of National Pride and Patriotism)

(ix) चारित्रिक प्रशिक्षण (Character Training)

(x) व्यवहारिक ज्ञान प्रदान करना (To give Practical Knowledge)

(xi) सांस्कृतिक चेतना का विकास (Development of Cultural Feeling)

5.6 सारांश (Summary)

भारत एक विशाल देश है जहाँ एक अरब से अधिक लोग निवास करते हैं । इन लोगों का अलग-अलग धर्म, भिन्न-भिन्न भाषाएँ, भिन्न-भिन्न रंग रूप, क्षमता, वेश-भूषा, खान-पान, आचार-व्यवहार, मान्यताएँ, लोक परंपराओं में भी विविधता पायी जाती है । यही विविधता हमारे समाज की खूबसूरती है । ये विविधताएँ विभिन्न स्तर पर दिखाई देती है :-

(i) भौगोलिक विविधता   (ii) सांस्कृतिक विविधता   (iii) भाषायी विविधता

(iv) आर्थिक विविधता   (v) जातीय विविधता   (vi) लैंगिक विविधता

हमारे देश में आर्थिक दृष्टिकोण से तीन वर्ग पाये जाते हैं : धनी वर्ग, निर्धन वर्ग और मध्यम वर्ग और इन तीनों के बीच भारी असमानता है । देश में 60 प्रतिशत से अधिक लोग हैं जो गरीबी रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं । कुछ ऐसे लोग हैं जिनके पास अपार धन संपत्ति है । इन तीनों वर्गों के बीच बहुत बड़ी

खाई है । इस भिन्नता से अशिक्षा, अज्ञानता और रूढ़िवादिता को प्रोत्साहन मिलता है । असमानता के निम्न कारण हैं :-

(i) आर्थिक संपन्नता के क्षेत्र में असामानता

(ii) व्यवसायिक प्रतिष्ठा में असामानता

(iii) शिक्षा के अवसरों में असामानता एवं व्यक्ति की असीमित इच्छाएँ आदि ।

हाशियेकरण से तात्पर्य समाज के उन वंचित समूहों से है जो किसी कारणवश अपनी उन्नति नहीं कर पाये हैं । उन वंचित समूहों को शिक्षा की मुख्य धारा में लाना है । इस समूह में अनु० जाति/जनजाति/महिलाएँ एवं अल्पसंख्यक वर्ग आते हैं । इन वर्गों की भी विभिन्न समस्याएँ हैं । इन समस्याओं को दूर करने में शिक्षा, विद्यालय एवं शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका है ।

5.7 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

1. विविधता, असमानता एवं हाशियेकरण से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिए ।

   Explain what you understand from diversity, inequality and marignilization? Clear it.

2. विविधता के विभिन्न रूपों की विवेचना कीजिए ।

   Discuss the different forms of diversity.

3. असमानता की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारतीय समाज में असमानता के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए ।

   Explain the concept of inequality and discuss the main causes of inequality in Indian society.

4. विविधता, असमानता एवं हाशियेकरण के संबंधित मुद्दे को दूर करने में शिक्षा, विद्यालय एवं शिक्षक की भूमिका की विवेचना कीजिए ।

   Discuss the role of education, school and teacher in diversity, inequality and marignilization.

5.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. आधुनिक भातर एवं शिक्षा : गुरू शरण दास योगी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा ।
2. भारतीय समाज एवं शिक्षा : डॉ० सचदेव सिंह, आर.लाल बुक डिपो ।
3. समकालीन भारत एवं शिक्षा : सुरेश भटनागर, आर.लाल बुक डिपो ।
4. शिक्षा एवं समाज : IGNOU, ES-334

❑ ❑ ❑

इकाई : 6 विविधता, असामानता और हाशियेकरण से संबंधित मुद्दे में शिक्षा, विद्यालय और शिक्षक की भूमिका
Role of Education, School and Teacher in Addressing Issues Related to Diversity, Inequality and Marginalisation

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

6.2 शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)

6.3 शिक्षा का सार्वभौमीकरण (Universalization of Education)

6.4 वंचित समूह के कल्याण हेतु संवैधानिक व्यवस्याए (Constitutional Provisions for Deprived Groups)

6.5 दलित समूह की शिक्षा के संबंध में कोठारी आयोग का सुझाव (Recommendation of Kothari Commissioin for the Education of the Dalit Group)

6.6 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में दलित की शिक्षा हेतु सुझाव (Suggestions of National Education Policy 1986 Regarding the Dalits)

6.7 सारांश (Summary)

6.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

6.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

6.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी :

- ❖ शिक्षा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ❖ शिक्षा का सार्वभौमीकरण का अर्थ समझ सकेंगे।
- ❖ शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण की समझ विकसित कर सकेंगे।
- ❖ शिक्षा के सार्वभौमीकरण मे हाशियेकरण की समझ विकसित कर सकेंगे।

❖ शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण एवं हाशियेकरण में बाधक के महत्वपूर्ण आयाम के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

6.1 प्रस्तावना (Introduction)

भारत एक विशाल देश है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति का मापदण्ड उस देश की शिक्षा व्यवस्था एवं स्थिति को माना जाता है। प्रजातंत्र के सफल संचालन हेतु शिक्षित एवं प्रबुद्ध नागरिकों की आवश्यकता होती है। इसी दृष्टिकोण के अनुसार किसी भी राष्ट्र की शिक्षा व्यवस्था में प्राथमिक शिक्षा का अपना विशिष्ट स्थान है क्योंकि यही शिक्षा की प्रारंभिक बुनियाद होती है। जब भारत स्वतंत्र हुआ, उस समय उसकी जनसंख्या का 85% भाग निरक्षर था तथा 6 से 11 वर्ष के केवल 31% बच्चे विद्यालयों में थे। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए भारत के संविधान निर्माणताओं ने संविधान के अनुच्छेद 45 में यह उल्लेख किया कि राज्य इस संविधान के क्रियान्वित किये जाने के समय से दस (10) वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालक/बालिका को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क एवं आनिवार्य शिक्षा देने का प्रयास करेगा। साथ-ही संविधान की धारा 15 में यह व्यवस्था की गई है कि यह आनिवार्य शिक्षा सभी के लिये होगी, चाहे वह किसी भी जाति, रंग, धर्म, लिंग, स्थान तथा वर्ण का क्यों न हो।

इस प्रकार सार्वजनिक शिक्षा के तात्पर्य किसी विशेष शिक्षा से नहीं है। सार्वभौमिक शिक्षा सभी को प्राप्त होने वाली शिक्षा से है अर्थात् विद्यालय में भी औपचारिक शिक्षा को ही सार्वभौमिक शिक्षा के रूप में माना जाता है। सार्वभौमिक शिक्षा का शाब्दिक अर्थ भी यही प्रदर्शित करता है कि जो शिक्षा सर्वजनों के पहुँच में है, वही सार्वभौमिक शिक्षा है। विभिन्न विद्यालयी स्तरों पर सार्वभौमिक शिक्षा का व्यापक रूप देखने को मिलता है। इस शिक्षा को प्राप्त करने के पश्पात ही बालक योग्य एवं आर्दश नागरिक के रूप में विकसित होते हैं और अपने उत्कृष्ट कार्यो द्वारा राष्ट्र, राज्य एवं समाज में अपना योगदान देते हैं।

परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह देखने को मिलता है आज भारत को स्वतंत्रता प्राप्त किये 68 वर्ष व्यतीत हो गये हैं, फिर भी शिक्षा तक सर्वजनों की पहुँच नही है। आज भी बड़ी संख्या में बालक विद्यालय में अपना नामांकन कराने से वंचित रहते हैं। इसका प्रमुख कारण कुछ बाधक तत्व है जो ऐसे बालक एवं बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने के मार्ग में अवरोधक हैं जिसे दूर किया जाना अति आवश्यक है। वंचित वर्ग को शिक्षा प्राप्ति के समुचित अवसर प्रदान किया जाना चाहिये। यानि प्रत्येक भारतीय को, चाहे वह महिला हो या पुरूष, शहर का हो या ग्रामवासी, किसी जाति-वर्ग, लिंग का क्यों न हो, विकलांग हो सभी को समान आदर की भावना से देखा जााय। इसके लिये शिक्षा समस्याओं पर सुनियोजित ढंग से कार्यक्रम आयोजित करना चाहिये तथा पाठयक्रम में उसके अनुरूप परिवर्तन लाना चाहिये।

6.2 शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)

शिक्षा का शब्दिक अर्थ (Etymological meaning of Education) : शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में एजुकेशन (Eduction) कहते है। शिक्षाथास्त्रियों के अनुसार एजुकेशन शब्द की उत्पति लैटिन भाषा के तीन शब्द Educatum, Educere तथा Educare से हुआ है। Education शब्द की रचना दो शब्दों (E) एवं Duco (डूको) के मिलने से बनी है। इनमें से (E) का अर्थ 'अंदर' से तथा डूको (Duco) का अर्थ आगे बढ़ने से है। इस प्रकार Educatum का अर्थ अंदर से विकास करना है। अंदर से विकास का तात्पर्य बालक की

अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करना है। यानि बालक के अंदर कुछ जन्मजात शक्तियाँ होती है, उसको विकसित करने का कार्य ही शिक्षा है। लैटिन भाषा के दो शब्द Educare एवं Educere है। जिसका अर्थ बाहर निकालना, इन दोनों शब्दो का अर्थ क्रिया का द्योतक है। शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार Education शब्द की उत्पति उपरोक्त दोनों शब्दों से हुई है अतः शिक्षा कोई वस्तु न होकर विकास संबंधी प्रक्रिया है। हिन्दी का 'शिक्षा' कोई वस्तु न होकर विकास संबंधी प्रक्रिया है। हिन्दी का 'शिक्षा- शब्द संस्कृत भाषा के 'शिक्ष्' धातु से बना है। 'शिक्ष्' धातु में (आ) प्रत्यय लगाने से 'शिक्षा' की उत्पत्ति हुई है। शिक्षा शब्द से तात्पर्य सीखना और सीखाना (Learning and Teaching) है। इस दृष्टि से भी शिक्षा एक प्रक्रिया है इसमें सीखना और सीखाना चलता रहता है। यह प्रक्रिया मानव जीवन के किसी विशेष स्तर तक ही सीमित नहीं रहती, वरन बालक के जन्म के साथ ही आरभ होकर आजीवन रहती है।

शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrow meaning of Education) : संकुचित अर्थ में शिक्षा से अभिप्राय विद्यालयी शिक्षा से है जिसके नियंत्रित वातावरण में बालक को बिठाकर पूर्व निर्धारित अनुभवों का ज्ञान करवाया जाता है। इस प्रकार की शिक्षा की एक निश्चित अवधि होती है जिसके लिये निर्धारित पाठयक्रम बनाया जाता है। संकुचित अर्थ में बालक का स्थान गौण तथा शिक्षा का महत्व मुख्य होता है।

शिक्ष का व्यापक अर्थ (Extensive Meaning of Education) : शिक्षा का अर्थ उन सभी अनुभवों से है जो बालक विभिन्न परिस्थितियों में अर्जित करता है। व्यापक अर्थ के अनुसार शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। आयु बढ़ने के साथ वह सामाजिक वातावरण में साथ सामंजस्य स्थापित करते समय अनेक अनुभव अर्जित करता है। इस प्रकार अर्जित अनुभव ही शिक्षा है। व्यापक दृष्टि से शिक्षा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति शिक्षक और शिष्य दोनों ही है। दार्शनिक अरस्तू तो यहाँ तक कहा करते थे "शिक्षित व्यक्ति अशिक्षित से उतना ही भिन्न होता है, जितना जीवित मनुष्य मृतक से" (The Educated differ from the uneducated so much as on the living from the dead).

6.3 शिक्षा का सार्वभौमीकरण (Universalization of Education)

शिक्षा राष्ट्र के विकास का आधार स्तंभ है। कोई भी राष्ट्र या समाज शिक्षा के बिना विकसित नहीं हो सकता। इसके महत्व और जीवन में इसकी उपयोगिता को देखते हुए यह कहा जाता रहा है कि शिक्षा सबके लिये आवश्यक है और सबको मिलनी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय आयोग 1996 ने भी इस बात को माना कि मनुष्य के व्यक्तिगत तथा समाजिक विकास के लिये शिक्षा आवश्यक है। भविष्य के लिये तो जीवनपर्यन्त सीखना बहुत ही आवश्यक होगा। इसी कारण शिक्षा के चार आधारों या स्तंभों को आज भी मुख्य स्थान दिया जा रहा है ये चारों स्तंभ इस प्रकार है :-

(i) Learning to Learn
(ii) Learnig to Do
(iii) Learning to be
(iv) Learning to live togather

इसीलिये शिक्षा को सभी के लिये एक विश्वव्यापी समस्या माना जा रहा है। मानवाधिकार घोषणा पत्र 1948 में यह कहा गया है कि सभी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, लेकिन इसका पालन 68 वर्ष बीत जाने के बाद भी पूरा न किया जा सका। मार्च 1970 में थाइलैण्ड में सबके लिये शिक्षा सम्मेलन में विश्व के 155 देशों के 150 से ज्यादा संगठनों के प्रतिनिधियों ने सबको 2000 तक प्राथमिक शिक्षा देकर निरक्षरता को समाप्त करने का एक मत हुआ। इसका परिणाम हुआ कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण और निरक्षरता को समाप्त करने की दिशा में काफी सहायता मिली। इस योजना को सफल बनाने के लिये यूनिस्को, यूनिसेफ,

विश्व बैंक के सहयोग से एक फोरम बनाया गया। फिर भी योजना का लक्ष्य आगे के कई वर्षो तक पूरा न हो सका। इसके बाद यूरेस्को ने 1993 में सभी के लिये शिक्षा विषय पर शिखर सम्मेलन नई दिल्ली में आयोजित किया। इसमें 9 देशों ने भाग लिया। इसमें 2000 तक इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का संकल्प लिया गया :-

(i) हर बच्चे को स्कूल पहुँचाना ।

(ii) युवक और बालिगों को शिक्षित करना ।

(iii) बुनियादी शिक्षा सुलभता के मार्ग की विषमता दूर करना ।

(iv) बुनियादी शिक्षा की गुणवता को सुधारना ।

(v) मानव विकास को प्राथमिकता देना।

(vi) प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण।

(vii) 15 से 35 वर्ष आयु वर्ग के लोगो के बीच निरक्षरता को समाप्त करना।

(viii) महिलाओं के सशक्तिकरण को अवसर प्रदान करना ।

भारत में इसके लिये तभी से प्रयास किया जा रहा है। भारतीय संविधाान के अनुच्छेद 29(1) में कहा गया है कि कोई भी नागरिक धर्म, मूल, जाति और भाषाई आधार पर शैक्षिक संस्थानों में नामांकन से वंचित नहीं हो सकता। भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुच्छेद 45 में सभी बालकों के लिये आनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई। इसमें कहा गया है राज्य इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बालको को 14 वर्ष की आयु पूरा करने तक नि:शुल्क एवं आनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।

इस प्रकार शिक्षा के सार्वभौमीकरण में हमारे राज्य का हर बच्चा विद्यालय जाने एवं गुणवता पूर्ण शिक्षा प्राप्त करे हम सभी का यही दायित्व है। हमारे देश में बालकों के बहुआयामी विकास के लिये शिक्षा की समुचित व्यवस्था की गई है परन्तु शिक्षा के सार्वभौमीकरण में अनेक बाँधाए है। इन बाँधाओं को स्वीकार करते हुए हमें अपनी भूमिका और कर्त्तव्य को समझते हुए इसे कार्य रूप देने की आवश्यकता है।

6.3.1 शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण (Discrimination in Universlization of Education)

शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से ही नहीं है बल्कि शिक्षा, चेतना और उतरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला औजार भी है।

यह सर्व विदित है कि शिक्षा का सार्वभौमीकरण को एक राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया, लेकिन आज स्वतंत्रता के 68 वर्ष बाद भी इस लक्ष्य को पूर्णत: प्राप्त नही किया जा सका। इसका प्रमुख कारण सभी को प्राप्त होने वाली शिक्षा में विभेदीकरण है। यानि शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण से तात्पर्य भारतीय समाज में बालक एवं बालिकाओं के साथ जाति एवं लिंग के आधार पर शिक्षा प्राप्त करने में किये जाने वाला भेदभाव है । जिस कारण वे विद्यालयी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते है और वे बीच में ही छोड़ देते है । जिससे परिवार, समाज एवं राष्ट्र का उत्थान नहीं हो पाता है, साथ ही भारतीय संविधान में सार्वभौमीक शिक्षा हेतु जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसकी प्राप्ति ही नहीं हो पाती है। हमारे समाज में जो शिक्षित है तथा शिक्षा के महत्व को समझता है उस समाज में बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा अच्छी है परन्तु आज भी हमारे समाज में दलित एवं पिछड़ी जातियों में शिक्षा की स्थिति बदहाल है। सरकार के काफी प्रयास के बावजूद

वर्तमान संदर्भ मे निरर्थक सिद्ध हो रहे है क्योंकि इसके मूल में लिंग भेदभाव एवं समाज की सोच का प्रभाव देखा जाता है। यही कारण है कि जब भी हम किसी भी क्षेत्र या देश के विकास को जानना चाहते है तो इसकी विशेषता साक्षरता दर से लगाते है। इसी दिशा में हमारी सरकार ने सबके लिये शिक्षा की जोरदार वकालत की है और इस पर इसका पूरा ध्यान केन्द्रित भी है। इन्हीं प्रयासो का परिणाम है कि 1942 में 12% साक्षरता दर के मुकाबले में सन् 2011 तक साक्षरता दर 74.04% हो गई है फिर भी भारत ने वह हासिल नहीं किया, जो प्राप्त करना चाहिये। सन् 2011 की स्थिति पर विचार करे तो साक्षरता दर भी महिला शिक्षा की दयनीय स्थिति की ओर संकेत करती है। इन आकड़ो पर गहन विचार-विर्मश करने की आवश्यकता है। अंतराष्ट्रीय समुदाय ने 2000 में तय किया था कि शिक्षा 'मानवधिकार' है, हर व्यक्ति को जीवन में विकास का समान अवसर मिलना चाहिये। उनके साथ उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि लिंग, धर्म या उम्र के आधार पर विभेद नहीं करना चाहिये क्योकि शिक्षित व्यक्ति ही स्वयं को और देश को सही दिशा दे सकता है।

6.3.2 शिक्षा के सार्वभौमीकरण में हाशियेकरण का अर्थ (Meaning of Marginlisation in Universalization of Education)

शिक्षा के हाशियेकरण से तात्पर्य समाज के उन वंचित समूहों से है जो किसी कारण से अपनी उन्नति नहीं कर पाये है, उन वंचित-समूहों को शिक्षा की मुख्यधारा में लाना है। यानि वंचित होने का अर्थ होता है रहित होना, विहीन होना। यदि हम किसी सुविधा से किसी को विहीन कर देते है तो वह वंचित हो जाता है और वंचित होने पर असंतोष होना स्वाभाविक है।

हमारे समाज में अनु0 जाति, अनु0 जनजाति, महिलाये एवं अल्पसंख्यक वर्ग हाशिये पर खड़े है क्योंकि उन्हें समाज के उच्च एवं धनी वर्गों के समान, शिक्षा के समान अवसर प्राप्त नहीं हो रहे हैं। जिस कारण समाज की मुख्य धारा से वे अलग-अलग रह रहे है।

भारतीय संविधान में घोषित किया गया है कि भारत में सभी नागरिकों के समान अधिकार है। धर्म, जाति, वर्ण, लिंग के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। संविधान के अनुच्छेद 14 से 18 तक में समानता का अधिकार दिया गया है।

अत: जरूरत है इस विभेद को दूर करने का प्रयास किया जाय तभी वंचित समूह के लोग शिक्षा की मुख्य धारा में जुड़ सकते है। अगर इस विभेद को दूर नहीं किया गया और हाशिये पर आये लोगों को ऊँचा नही उठाया गया तो देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ सकती है और जो उपलब्धियाँ हासिल की है, वे मिट्टी मे मिल सकती है।

6.3.3 शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण बाधक (Discrimination as a barrier in Universalization of Education)

हमारी सरकार ने सबके लिये शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया है लेकिन लक्ष्य का निर्धारण किये जाने के बाद भी इस लक्ष्य को पूर्णत हासिल नहीं किया जा सका है। 1992 की संचालित राष्ट्रीय शिक्षा नीति में यह संकल्प व्यक्त किया गया था कि 21 वीं सदी के प्रारंभ होने के पहले 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों को नि:शुल्क एवं आनिवार्य गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा उपलब्ध करायी जायेगी। परन्तु सरकार के प्रयास के बावजूद यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सका है। इसका मतलब है सार्वभौमीकरण की राह में आने वाली बाधाओं को दूर करना पड़ेगा जिसमे सबसे बड़ी बाधा शिक्षा में विभेदीकरण है। यद्यपि यह विभेदीकरण समाज में कई रूपों में देखा जा सकता है।

भारत सरकार ने सबके लिये शिक्षा की जोरदार वकालत की है। इन्हीं प्रयासों का प्रतिफल है कि 2011 के जनगणना के अनुसार पुरूष की साक्षरता 82.14% तथा महिलाओ की साक्षरता दर केवल 65.46% है। हाँकि महिलाओं की साक्षरता दर में इजाफा हुआ है परन्तु यह विभेदीकरण अभी भी बना हुआ है, जिसे आर्थिक, सामाजिक, सैनिक, राजनैतिक समस्याओं के रूप में देखा जा सकता है।

(क) आर्थिक समस्याएँ (Economical Problem)

(i) विद्यालय की आर्थिक समस्या

देश के अधिकांश प्राथमिक विद्यालय की आर्थिक स्थिति दयनीय है। आर्थिक कठिनाइयों के कारण विद्यालय अपने छात्रों को आवश्यक सुविधाएँ भी प्रदान नहीं कर पाते है, विद्यालयों में शिक्षा की आवश्यक सामग्री नहीं है। छात्रों में पढ़ने और खेलने की समुचित व्यवस्था नहीं रहती है तथा अपनी आर्थिक विषमताओं के कारण विद्यालय अपने वातावरण को आकर्षक रूप प्रदान नही करता। बहुत से ग्रामीण विद्यालयों में समुचित भवन एवं शौचालय का अभाव है। फलत् बालक/बालिकाएँ थोड़े दिन आकर ही अपनी शिक्षा को बंद कर देता है।

(ii) विद्यालय स्थापना की समस्या

आर्थिक, सामाजिक तथा प्राथमिक पहलुओं को देखकर यह निश्चित किया गया कि प्रत्येक 300 जनसंख्या वाले समूह के पीछे एक प्राथमिक विद्यालय होना चाहिये, परन्तु अभी भी $3\frac{1}{2}$ लाख ग्राम ऐसे है जिनकी आबादी 300 से कम है, इन गाँवों में विद्यालय स्थापित नहीं किये जा सकते, अत: इन गाँव के बालक/बालिका को अन्य गाँवों में जाना पड़ता है। दूरी अधिक होने के कारण अनेक क्षेत्रों में यह संभव नहीं है अत: गाँवों के बच्चे शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाते। जिस कारण सबके लिये शिक्षा संभव नही हो पायी।

(iii) अभिभावक की आर्थिक समस्या

देश का जन साधारण अभी भी काफी गरीब है। ग्रामीण तथा औद्योगिक बस्तियों में गरीबी का प्रभाव भी अधिक है। गरीब माता-पिता अपने बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने विद्यालय भेजने के स्थान पर किसी ऐसे कार्य पर भेजना पसंद करते है जिससे परिवार को कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त हो सके। ग्रामीण व्यक्ति बालको को, इसी प्रवृति के कारण, खेतों मे काम करने भेजता है तथा मजदूर अपने बालकों से अन्य कार्य कराते हैं।

(ख) सामाजिक समस्याएँ (Social Problem)

(i) अभिभावकों की अशिक्षा

अधिकांश बालकों के अभिभावक अशिक्षित है। वे न तो स्वयं ही पढ़े है और न शिक्षा के ही महत्व को समझते है। अशिक्षित व्यक्तियों का दृष्टिकोण संकुचित होता है। वे समाज में व्याप्त कुप्रयासो और सड़ी-गली परंपराओं का अक्षरश: पालन करते है। इसलिये वे अपने बालको की शिक्षा में इतनी रूचि नहीं लेते है। वे यह नहीं समझते है कि शिक्षा का क्या महत्व और लाभ है। ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावक की अशिक्षा उनके बालको की शिक्षा के लिये और भी अधिक अनिवार्य बन जाती है।

(ii) सामाजिक कुरीतियाँ

समाज में अनेक ऐसी कुरीतियाँ व्याप्त है जो शिक्षा के प्रसार में बाधा पहुँचा रही है। इन कुरीतियो में बाल-विवाह, जाति प्रथा, रूढ़िवादिता, बालिकाओं के शिक्षा के प्रति उदासीनता आदि प्रमुख है। बालको की प्राथमिक शिक्षा पर बाल विवाह का काफी प्रभाव पड़ता है। बच्चो की शादी जब छोटी आयु में हो जाती है तो प्राय: यह देखा जाता है कि वे अपना अध्ययन समाप्त कर देते हैं।

(iii) लिंग भेद

हमारे समाज में विभिन्न कारणो से लड़के-लड़कियों की देख-रेख और शिक्षा के विषय में भेदभाव किया जाता है। जागरूकता के अभाव के कारण लोग यह समझते है कि लड़कियों का कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक ही सीमित है। उनका बौद्धिक स्तर भी कम है, इसलिए उनको पढ़ाने-लिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है और उनपर खर्च करने का कोई औचित्य नहीं है। इसका प्रभाव लड़कियों पर भी पड़ता है और वे स्वयं अपने को हीन समझने लगती है जिस कारण वे शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती।

(ख) शैक्षिक समस्या (Educational Problem)

(i) दोष पूर्ण पाठयक्रम

वर्त्तमान प्राथमिक पाठशालाओं में प्रचलित पाठयक्रम अनुपयुक्त है। पाठयक्रम स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखते है जिसमें पुस्तकीय ज्ञान पर ही बल दिया जाता है। प्रस्तुत पाठयक्रम बालक के जीवन से संबंधित नहीं है। (वह न तो आकर्षक है और न सरस ही है) । इसमें न तो व्यावहारिकता ही है और न जीवनोपयोगिता ही। फलत: बालक और अभिभावक विद्यालयों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं।

(ii) अनुपयुक्त शिक्षण विधियाँ (Inappropriate Teaching Methods)

देश में अभी भी बालकों को पाठ्य-पुस्तक के द्वारा ही शिक्षण कराया जाता है। बालकों के लिये यह पद्धति बिल्कुल ही अनुपयुक्त तथा नीरस होती है । भाषाओं में प्रचलित पद्धतियाँ छात्रो को आकर्षित नहीं करती। वे बालकों को व्यवहारिक तथा जीवनोपयोगी ज्ञान प्रदान नहीं करती। अत: बालक आवश्यक गुणों के विकास से वंचित हो जाते है। जो शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक है। ऐसे बच्चों को खेल विधि से शिक्षा देने की जरूरत हैं।

(iii) शिक्षण सामग्री का अभाव (Lack of Teaching Material)

विद्यालय में शिक्षण सामग्री का पूर्ण रूप से अभाव होता है। छोटे-छोटे बालकों के लिये अतिरिक्त शिक्षण सामग्री की आवश्यकता होती है। अत: इन विद्यालयों में इन सामग्रियों का होना आवश्यक है। छोटे बालकों के लिये शिक्षण सामग्री का प्रयोग उनकी मानसिक योग्यताओं तथा पारिवारिक स्थितियों एवं शारीरिक क्षमताओं के अनुसार एक अध्यापक या अध्यापिका को उपयोग में लानी चाहिये अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि होने लगती है।

(iv) बालिकाओं की समस्याएँ (Problems of Girls)

प्राथमिक विद्यालयों में बालिकाओं के लिये उपयुक्त पाठयक्रम का अभाव है। इन भाषाओं में बालक और बालिकाओं के लिये एक ही प्रकार की शिक्षा तथा पाठयक्रम निर्धारित किया जाता है। यह पाठयक्रम बालिका के लिये पूर्णतया अनुपयोगी है। अतः बालिकाएँ इस शिक्षा को व्यर्थ और निरर्थक समझती है। रूदिवादिता के कारण अनेक अभिभावक अपनी पुत्रियों को पुत्र के साथ शिक्षा देना पसंद नहीं करते है और बालिकाओं के लिये पृथक विद्यालय के अभाव में वे अपनी बालिकाओं को शिक्षा से वंचित कर देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में यह प्रवृति और भी अधिक पायी जाती है और वही बालिकाओं के लिये पृथक विद्यालयों के न होने के कारण समस्या और गंभीर बन जाती है। यही विभेदीकरण शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक है।

(v) प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव (Scarcity of Trained Teacher)

हमारे देश में विद्यालय में उपयुक्त संख्या में प्रशिक्षित अध्यापक, अध्यापिका नहीं मिलती। केवल अप्रशिक्षित शिक्षकों से ही काम लिया जाता है क्योंकि वे सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। इस कारण वे बालकों को उचित तरीकों से शिक्षण नहीं दे पाते, परिणाम यह होता है कि बालकों की शिक्षा में प्रगति नहीं हो पाता।

(vi) सरकार की उदासीनता (Lack of Interest of Government)

शिक्षा मौलिक अधिकार बन गया है। शिक्षा का अधिकार 2009 में लागू होने के बाद भी बहुत सी शिक्षण संस्थानों में इसका पालन नहीं हो रहा है जो शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक है।

सरकारी योजना आकड़ों तथा घोषणाओं में सिमटकर रह गयी है। आकड़े आकर्षक है लेकिन कार्य में गतिशीलता तथा सक्रियता की कमी है। मिली जुली सरकारों के कारण तथा सरकार के आत्मबल कम होने के फलस्वरूप शिक्षा पर ध्यान देना कम हो गया है। उससे बालक की शिक्षा को पर्याप्त गति तथा सफलता नहीं मिल पा रही है। ग्रामीण एवं पिछड़े इलाकों में बालकों की शिक्षा के नाम पर आज भी शून्य की स्थिति बनी हुई है।

उपरोक्त सभी समस्याओं को देखते हुए शिक्षा को गतिशील करने हेतु ठोस प्रयासों की अत्यंत अवश्यकता है। हम सभी लोग मानते है कि आज का बालक कल का नागरिक होगा। अतः कल के नागरिक को आज सभी प्रकार से योग्य बना दिया जाये तो यह राष्ट्र का गौरवपूर्ण कल्याण होगा।

(vii) प्रवेश संबंधी बाधाएँ (Admission Related Barriers)

प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश की आयु सरकार द्वारा निर्धारित 6 वर्ष की हैं। इस नियम को भी सार्वभौमिक बनाना है। चाहे कोई प्रदेश समृद्ध हो अथवा पिछड़ा हो, चाहे समृद्ध जाति हो या जनजाति सभी को इस नियम का दृढ़ता पूर्वक पालन करना चाहिये। इसके लिये अभिभवको का सहयोग भी अपेक्षित है। इस संबंध में अभिभावक, शिक्षक और विद्यालयों को ध्यान देना है। सरकार शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोध की समस्या का समाधान के लिये सतत प्रयत्नशील है और नामांकन दर मे उल्लेखनीय वृद्धि भी हुई है। लेकिन अधिक संख्या में विद्यालय की स्थापना कर प्राथमिक शिक्षा की पहुँच की वृद्धि कर लेने से ही शिक्षा की प्रगति से संतोष करना ही अपर्याप्त है। समस्या तो और अधिक गंभीर है कि इन छात्रों को विद्यालय में प्राथमिक शिक्षा के संपूर्ण होने तक रोके रखना।

नामांकन का सार्वभौमीकरण एवं विद्यालय में नहीं रूक पाना, छात्रों की आर्थिक दशा की ओर इंगित करता है । ये अपने माता-पिता के जीविकोपार्जन में सहायता करते हैं। वे विद्यालय में समय नष्ट करने के स्थान पर खेती, मजदूरी अथवा फैक्ट्री में कार्य करके अपने परिवार का भरण-पोषण करते है। इसके विपरीत छात्राएँ प्रत्यक्ष रूप से भी जीविकोपार्जन न करके छोटे भाई/बहनो को पालन-पोषण करती हैं तथा घर के कार्यो को देखती है। ये सभी छात्र-छात्राएँ विद्यालय जाने में असमर्थ रहते है क्योंकि विद्यालय से अधिक इन्हें घर के लिये उपयोगी माना जाता है। इसके अतिरिक्त अप्रासंगिक विद्यालयी शिक्षा, माता-पिता की उदासीनता और सामाजिक सांस्कृतिक बंधन के कारण छात्र/छात्राएँ को विद्यालय में नामांकन से वंचित रखते हैं।

(viii) भौगोलिक समस्याएँ (Geographical Problem)

अनेक क्षेत्रों में भौगोलिक परिस्थितियाँ भी शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधाँए उत्पन्न करती है। पर्वतीय क्षेत्रों में आवागमन के कारण बालक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा पाते हैं । पर्वत के अतिरिक्त नदी, नाले, जंगल, मरूस्थल तथा तेज गर्मी, सर्दी का मौसम आदि अनेक बाधाएँ है जिनके कारण कोमल वर्ग में बालक अन्य गाँवों मे शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा सकते, जो शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक हैं।

6.3.4 शिक्षा के सार्वभौमीकरण में हाशियेकरण बाधक (Marginalisation as a barrier for universalization of Education)

शिक्षा में हाशियाकरण से तात्पर्य समाज के उन वंचित वर्गो को शिक्षा की मुख्य धारा में लाना है जिन्हें शिक्षा के समान अवसर नहीं प्राप्त हो रहे हैं। ऐसे में वह व्यक्ति किसी भी कार्यक्रम में केन्द्र में नहीं रहता। हमारे समाज में अनुसूचित जाति व जनजाति, अल्पसंख्यक समूह एवं महिलायें हाशिये पर खड़े है क्योंकि उन्हें समाज के धनी एवं उच्च वर्गो के समान शिक्षा के समान अवसर प्राप्त नहीं हो रहे है। ये वे लोग है जो सदियो से भेदभाव पूर्ण रवैया के कारण समाज की मुख्य धारा से अलग-अलग रह रहे हैं। भारतीय संविधान में इन समूहों के कल्याण के लिये अनेक प्रावधान किये गये है। सामाजिक रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ व अंध विश्वास, माता-पिता की निर्धनता, शिक्षा के महत्व को न समझना, धार्मिक कट्टरता तथा विद्यालयों में अशैक्षिक व अरूचिकर वातावरण के कारण हाशियें वर्ग के बालक-बालिकाओं में शैक्षिक पिछड़ापन पाया जाता है। इन समूहो की अपनी-अपनी विशिष्ट परिस्थितियाँ, समस्याओं एवं कारणो को ध्यान में रखते हुए इनके लिए तरह-तरह की योजनाएँ एवं कार्यक्रम बनाने तथा उनको प्रभावी ढंग से कार्यानिवत करने की आवश्यकता है।

पिछले 70 वर्षो में देश ने ऐतिहासिक प्रगति की है। विमान एवं प्रौधोगिकी के क्षेत्र में हम काफी आगे विकास कर चुके है। कम्प्यूटर के क्षेत्र में हमने काफी उन्नति की है। बच्चो को तीसरी कक्षा से ही कम्प्यूटर सिखाया जा रहा है। इस ऐतिहासिक प्रगति के साथ-साथ देश में असमानता, विभेद और हाशियेकरण भी अभूत पूर्व रूप से बढ़ी है, जो चिंता का विषय है।

संविधान में धर्म, जाति, वर्ण, लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के बीच भेदभाव नहीं किया जायेगा, इसका उल्लेख है। संविधान में अनुच्छेद 14 से 18 तक में समानता का अधिकार का वर्णन किया गया है। स्त्रियों को भी पुरूषो के समान अधिकार प्राप्त होगें। अनुच्छेद 16 के द्वारा सभी नागरिकों को सरकारी नौकरियों प्राप्त करने की समानता दी गई है। अनुच्छेद 17 के द्वारा अस्पृश्यता और अनुच्छेद 18 के द्वारा उपाधियों का अंत कर दिया गया है। इस प्रकार संविधान के द्वारा असमानता और विभेद को पूर्ण रूपेण समाप्त कर दिया गया है।

यद्यपि, संविधान द्वारा असमानता, विभेद और हाशिये पर रह रहे लोगों के साथ हो रहे भेदभाव को पूरी तरह समाप्त कर दिये गये है। फिर भी देश में यह विकृतियाँ भयंकर रूप से व्याप्त है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमने एक लोकतांत्रिक धर्म निरपेक्ष, समाजवादी और बहुलता वादी भारत की तस्वीर देखी थी, जहाँ सभी भारतवासी समान होगें, उनके साथ कोई भेद-भाव नहीं होगा। वंचित वर्ग को भी समान सुविधाएँ मिलेगी तथा महिलाओं को सभी अधिकार प्राप्त होगे और समाज में उन्हें सम्मान मिलेगा, लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हो पाया है।

मानवाधिकार आयोग ने अपने रिर्पोट में कहा है कि भारत में विद्यालय के प्राधिकारी हाशिये पर रह रहे लोगों के साथ भेदभाव लगातार करते है। उन्हें शिक्षा के अनेक अधिकार से वंचित किया जाता है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में लागू होने के बाद, 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे के लिये आनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा की गारंटी दी गई है। नामांकन में तो अवश्य वृद्धि हुई लेकिन उनमें से लगभग आधे बच्चो की अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के पूर्व ही विद्यालय छोड़ देने की संभावना बनी रहती है। यह स्थिति भारत के सभी राज्यों में विद्यालय प्राधिकारियों द्वारा वंचित समूह के बच्चों के विरूद्ध किये जा रहे भेदभाव को उजागर करती है। इसी कारण भारत में हाशिये पर रह रहे लोग भेदभाव का शिकार होकर उपयुक्त शिक्षा प्राप्त नहीं कर रहे है। विद्यालय में प्राधिकारी जाति, धर्म या लिंग के आधार पर प्राचीन समय से चले आ रहे भेदभाव पूर्ण आचरण का समर्थन करते आ रहे है। जिस कारण दलित तथा मुस्लिम समुदाय के बच्चों को कक्षा में सबसे पीछे या फिर अलग कमरे में बैठने के लिये कह देते हैं। उन्हें अपमान जनक नामों का प्रयोग करके बेइज्जत किया जाता है। जबकि पारंपरिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के बच्चों से ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं होता।

इस प्रकार भारत की वर्तमान स्थिति सोचनीय है। देश में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक असमानता है। यदि इस असमानता और विधि को समाप्त न किया गया तथा हाशिये पर रह रहे लोगों को समाज की मुख्य धारा में शामिल नहीं किया गया तो देश की स्वतंत्रता एंव अखंडता खतरे में पड़ सकती है। अब तक जो उपलब्धियाँ हासिल भी है वे मिट्टी में मिल सकती है। अत: प्रत्येक राज्य के शिक्षा-विभाग का कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के बच्चों पर नजर रखे और उन्हें मुख्य धारा में लाने हेतु उनका विद्यालय में दाखिला अवश्य करावे एवं उन्हे विद्यालय में टिके रहने हेतु आवश्यक कदम उठाने का प्रयास करें। हमारे देश भारत में निम्न समूह हाशिये वर्ग के अंतर्गत आते है :–

(i) अनुसूचित जातियाँ/जनजातियाँ/अल्पसंख्यक/महिलायें इन समूह को शिक्षा से वंचित होने का कारण निम्न है:-

(i) माता-पिता की निर्धनता (Poverty of Parents)

माता-पिता की निर्धनता भी शिक्षा प्राप्त करने में बाधक है, क्योंकि निर्धनता ने समाज में रहने वाले व्यक्तियों को इस प्रकार से जकड़ रखा है जिस कारण वह सुख-सुविधा से वंचित है। गरीबी के कारण परिवार के सदस्यों को अपनी आवश्यकताओं के पूर्ति हेतु काफी परिश्रम करना पड़ता हैं। आज भी माता-पिता अपने बालक/बालिका को घर पर काम में सहायता करवाने के लिये रोक लेते है तथा कभी कभी बीच में ही विद्यालय जाना बंद कर देते हैं, इस कारण वे शिक्षा पाने से वंचित हो जाते हैं।

(ii) विद्यालय का अधिक दूर होना (Distance of the School)

भारत की कुल जनजातियों का 10% राज्यों में रहती है। इनमें से कुछ पहाड़ी एंव पर्वतीय स्थलों पर एवं

कुछ वनों में रहते हैं। इनके निवास स्थान से विद्यालय की दूरी अधिक है। परिणाम होता है कि बालक एवं बालिकाएँ विद्यालय में नामांकन नहीं लेते, इस कारण वे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

(iii) छात्रावास की समस्या (Problem of Hostel)

छात्रावास की समस्या भी बालक/बालिकाओं को शिक्षा से वंचित करती है। क्योंकि अधिकांश बालक/बालिकाएँ छात्रावास की सुविधा से वंचित हो जाते हैं। ये छात्रावास ग्रामीण क्षेत्र में न होकर अधिकांश नगरों में होते हैं। यह भी शिक्षा में बाधक हैं।

(iv) छुआछूत की समस्या (Problem of Untouchability)

अनु० जाति का अधिकांश प्रतिशत गाँवो में निवास करता है। विद्यालय में उन बालकों के साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाता है जिस कारण वे हीन भावना से ग्रसित हो जाते है। इसका प्रभाव उनके शिक्षा पर पड़ता हैं।

(v) व्यावसायिक शिक्षा का अभाव (Scarcity of Vocational Education)

विद्यालयी पाठयक्रम में व्यावसायिक शिक्षा का अभाव है क्योंकि बालकों के माता-पिता अपने जीविकोपार्जन में लगे रहते हैं। उनके पैतृक एवं क्षेत्रीय व्यवसायों के बारे में पाठयक्रम में कोई प्रावधान नहीं रहता हैं।

(vi) शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी (Lack of Awareness Toward Education)

अशिक्षित जनजाति एवं आदिवासी लोग परमपरागत जीवन व्यतीत करते हैं। वे शिक्षा के महत्व को नहीं समझ पाते, इस कारण वे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

(vii) सरकार की उदासीनता (Indifference of the Government)

सरकार वंचित वर्ग के लिये कोई ठोस नीति नहीं अपनाती है, इस कारण भी वे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

(viii) सामाजिक कुरीतियाँ एंव प्रथाएँ (Social Evils and Traditions)

समाज में सामाजिक अंधविश्वास, धार्मिक अंधविश्वास एंव सामाजिक असमानताएँ है। इस सामाजिक कुरीतियो के कारण इस वर्ग के बालक/बालिकाएँ शिक्षा से वंचित हो गए हैं।

(ix) मानसिक विकलांगता (Mental Disability)

मानसिक विकलांगता से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो जन्म से ही मानसिक दोष के शिकार है या फिर दुर्घटना से पीड़ित होकर विकलांगता के शिकार बनते हैं। इस प्रकार के व्यक्तियों को सोचने समझने एवं स्वयं द्वारा किसी काम को करने में भी असमर्थता रहती हैं। इस कारण भी वे शिक्षा से वंचित हो जाते हैं।

(x) महिला शिक्षकों की कमी (Lack of Female Teachers)

विद्यालय में महिला शिक्षकों की कमी भी इस वर्ग के बालिकाओं हेतु शिक्षा में वंचित होने का कारण हैं।

(xi) धार्मिक कट्टरता (Religious Bigotry)

समाज में धार्मिक कट्टरता भी शिक्षा में बाधक हैं।

6.4 वंचित समूह के कल्याण हेतु संवैधानिक व्यवस्थाएँ (Constitutional Provisional for Deprived Group)

वचित वर्ग के समस्याओं को ध्यान में रखकर संविधान में उनके संरक्षण हेतु निम्न व्यवस्थ की गई है -

6.4.1 संवैधानिक प्रावधान (Constitutional Provision)

संविधान के अनुच्छेद 15(1) में कहा गया है कि राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल, धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं करेगा। अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता का अंत कर दिया गया है। अनुच्छेद 46 में राज्य वंचित वर्गो की शिक्षा संबंधी एवं आर्धिक हितो की रक्षा करेगा। अनु0 45 में 6-14 वर्ष के बालकों हेतु निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था। अनु0 14.6 एंव 338 के अनुसार अनु0 जातियों के कल्याण एंव रक्षा के लिये राज्य में सलाहकार परिषद एवं पृथक विभागों की स्थापना का प्रावधान किया गया है।

6.4.2 शिक्षा संबंधी सुविधाँए (Education Related Facilities)

अन्य लोगों के समान इस वर्ग को समान स्तर पर लाने और प्रगति के पथ पर आगे बढाने के लिये शिक्षा का विशेष प्रबंध किया गया हैं। सभी शिक्षण संस्थानों में अनु0 जाति एवं जनजातियों के लिये निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई हैं। इतना की छत्रावास, छात्रवृति, कोचिंग की व्यवस्था, विशेषज्ञ शैक्षणिक कार्यक्रमों की व्यवस्था, पुस्तक बैंक की व्यवस्था एवं समय-समय पर इनके हितों एवं कल्याण से संबंधित कानूनों, आयोगों, समितियों आदि की भी व्यवस्था की गई।

6.4.3 सरकारी नौकरियों में आरक्षण (Reservation in Government Jobs)

समाज को मुख्य धारा में लाने हेतु आर्थिक स्थितियों में सुधार हेतु सरकारी नौकरियों में आरक्षण का भी प्रावधान किया गया हैं।

6.4.4 कल्याण एवं सलाहकार मंडल (Welfare and Advisory Board)

केन्द्र एवं राज्यों में अनु0 जातिये, जनजातियों एवं अन्य पिछड़े वर्गो के कल्याण हेतु अलग-अलग विभागों की स्थापना की गई हैं। भारत सरकार ने सन् 1968, 1971 और 1973 में अनु0 जतियों एवं जनजातियों हेतु चल रहे कार्यो में प्रगति का मूल्यांकन करने हेतु संसदीय समितियाँ गठित की है। वर्तमान में ऐच्छिक संगठन भी इनके कल्याण कार्यो में अपने-आप को लगाये हुए हैं।

6.5 दलित समूह की शिक्षा के संबंध में कोठारी आयोग का सुझाव (Recommendation of Kothari commission on Education)

आयोग के शब्दों में : शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करने के अवसरो में समानता स्थापित करना है, ताकि पिछड़े हुए या कम अधिकार वाले वर्ग एवं वंचित व्यक्ति अपनी दशा में सुधार करने के लिये शिक्षा को साधन के रूप में प्रयोग कर सकें।

"One of the Important social objectives of education is to equalize opportunity enabling the backward or under priviledged and deprived individual to use education as a lever for the improvment of their condition".

6.5.1 आयोग ने शिक्षा के क्षेत्र में दो प्रमुख असमानताएँ पायी

(i) शिक्षा के सभी स्तरों पर बालक एवं बालिकाओं की शिक्षा में व्यापक असमानता

(ii) उन्नत वर्गो, पिछड़े वर्गो, अछूत जातियों, पहाड़ी जातियों एवं आदिवासियों की शिक्षा मे व्यापक असमानता

आयोग ने इसे दूर करने हेतु चार (4) सुझाव दिए-

(i) नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था

(ii) छात्रवृत्ति की व्यवस्था

(iii) छात्रवृतियों की योजना

(iv) शिक्षा के खर्चा में कमी

इसके अतिरिक्त माध्यमिक स्तर पर निम्न सुझाव :-

(i) माध्यमिक शिक्षा के अवसरों की समानता स्थापित की जाए

(ii) बालिकाओं, जनजातियों एवं अछूत जातियो में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने हेतु विशेष योजना का निर्माण

6.6 राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में दलित की शिक्षा हेतु सुझाव (Suggestions for Dalit Education in National Education Policy 1986)

(i) शिक्षा की ऐसी व्यवस्था की जाए ताकि सभी को शिक्षा के समान अवसर मिलें।

(ii) छात्रावास की व्यवस्था

(iii) शिक्षा संस्थाएँ खोली जाँए

(iv) प्रोत्साहन की व्यवस्था

(v) शिक्षकों की नियुक्ति की जाए

6.7 सारांश (Summary)

शिक्षा राष्ट्र के विकास का आधार स्तंभ है। प्रजातंत्र के सफल संचालन हेतु शिक्षित और प्रबुद्ध नागरिक की आवश्यकता है। शिक्षा का संबंध सिर्फ साक्षरता से नहीं है बल्कि शिक्षा चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करने वाला औजार भी हैं। यह सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा का सार्वभौमीकरण को एक राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाए लेकिन स्वतंत्रता प्राप्ति के 68 वर्ष बाद भी इस लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त नहीं किया जा सका। परन्तु अब भी ऐसे बहुत सारे मुद्दे है जो शिक्षा के सार्वभौमीकरण में बाधक हैं। शिक्षा के सार्वभौमीकरण में हाशियेकरण बाधक है वंचित समूह, ऐसा समूह जिन्हे समाज के धनी एवं उच्च वर्गों के समान शिक्षा का समान अवसर नहीं मिल पाया। सदियों से भेदभाव के कारण समाज की मुख्य धारा से अलग-अलग रह रहे हैं। हाँलाकि संविधान में ऐसे समूह के लोगों के लिये ऐसे कानून बनाये गये है जो धर्म, जाति, वर्ग एवं लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करेगा। फिर भी कानूनों के बावजूद भी भारत में हाशिये पर रह रहे लोग भेदभाव के शिकार हो रहे हैं। साथ ही वंचितों के कल्याण हेतु कोठारी आयोग एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अनेक सुझाव दिये गये हैं।

6.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. शिक्षा में सार्वभौमिकरण को स्पष्ट करें।

   Explain Universalization in Educaiton.

2. शिक्षा में विभेदीकरण से क्या आशय हैं।

   What is understood by discrimination in Education.

3. शिक्षा के सार्वभौमीकरण में विभेदीकरण बाधक हैं। स्पष्ट करें।

   Discrimination is a barrier in Universalization of Edcation. Discuss.

4. शिक्षा के सार्वभौमीकरण हेतु हाशियाकरण की प्रकृति किस प्रकार बाधक हैं?

   How is the nature of marginalisation barrier in Universalization of Ecuation?

6.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. आधुनिक भारत एवं शिक्षा : गुरू शरण दास त्यागी, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
2. भारतीय समाज एवं शिक्षा : डॉ० सचदेव सिंह, आर.लाल बुक डिपो।
3. समकालीन भारत एवं शिक्षा : सुरेश भटनागर, आर. लाल बुक डिपो।
4. शिक्षा एवं समाज : IGNOU, ES-334

❑ ❑ ❑

इकाई : 7 मानवधिकार : अर्थ, प्रकृति एवं वर्गीकरण
Human Rights : Meaning, Nature and Classification

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

7.2 मानवाधिकार (Human Rights)

7.3 मानवाधिकार की घोषणा (Declaration of Human Rights)

7.4 मानवाधिकार का अर्थ (Meening of Human Rights)

7.5 मानवाधिकार का वर्गीकरण (Classification of Human Rights)

7.6 सारांश (Summary)

7.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

7.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

7.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप इस योग्य हो जाएँगे कि :

- ❖ मानवधिकार एवं प्रकृति के विभिन्न बिन्दुओ को समझ सकेंगे
- ❖ मानवधिकार के अर्थ को समझ सकेंगे।
- ❖ मानवाधिकार के स्वरूप के अनुसार उनका वर्गीकरण कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों की जानकारी देना ही इस पाठ का उद्देश्य हैं।

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

विश्व में शांति एवं सुरक्षा की स्थापना तथा मानव समुदाय के सर्वांगीण विकास में मानवाधिकार की महत्वपूर्ण भूमिका है। मानवाधिकार तमाम मानव जाति का जन्मसिद्ध अधिकार है और उसकी रक्षा करना एवं इसे बढ़ावा देना हर सरकार की जिम्मेदारी बनती हैं। ज्यादातर मामलों में मानव का शोषण, उक्त स्थान के शासन परम्परा के कारण होता है और मानवाधिकार के हनन की समस्या खड़ी हो जाती है। वैसे तो सभ्यता के विकास के समय से ही मनुष्य अपने अधिकारों की रक्षा हेतु संघर्षरत है। इन्हीं बातों पर विस्तार पूर्वक चर्चा इस पाठ के अंतर्गत की गई है।

इस पाठ के माध्यम से शिक्षार्थियों के मानवाधिकार क्या है ? इसकी जानकारी दी जाएगी। मानवाधिकार का अर्थ, इसकी प्रकृति तथा वर्गीकरण के बारे में भी व्याख्या की जाएगी।

7.2 मानवधिकार की उत्पत्ति (Human Rights)

मानव अधिकार पद का प्रयोग अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सन् 16 जनवरी, 1941 कांग्रेस को संबोधित करते हुए किया था। हालाकि प्रारंभ से ही मनुष्य अपने अधिकारों के लिए चिंतित रहा करते थे, जिससे निरंकुश शासन के अत्याचारों से मुक्ति मिल सके तथा प्रकृति-प्रदत्त स्वाभाविक अधिकारों का उपभोग करते हुए अपनी प्रतिभा एवं व्यक्तित्व का विकास कर सकें। इसी बात का ध्यान रखते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति ने अपने भाषण में चार मूलभूत स्वतंत्रताओं पर आधारित विश्व की घोषणा की थी। इसमें उन्होंने वाक् स्वतंत्रता, धर्म स्वतंत्रता, गरीबी से मुक्ति और भय से स्वतंत्रता को जगह दिया। राष्ट्रपति ने घोषणा की कि हर जगह मानव अधिकारों की सर्वोच्चता अभिप्रेरित है। हम उनका समर्थन करते है, जो इन अधिकारों को पाने के लिए या बनाए रखने के लिए संघर्ष करते हैं। लम्बे संघर्ष के बाद अनेक मानव अधिकारों के निर्माण करने में पहला ठोस कदम संयुक्त राष्ट्र महासभा 9 दिसम्बर, 1948 में 'मानव अधिकारो की सार्वभौमिक घोषणा' (Universal Declaration of Human Rights) को अंगीकृत करके किया। इस घोषणा के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों ने अंतराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया कि मानव समुदाय के सर्वागीण विकास यानि शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक एवं अध्यात्मिक विकास के लिए जीवन की रक्षा, स्वतंत्रता, समानता, न्याय तथा गरिमामय जीवन यापन का अधिकार है तथा इसका दायित्व सरकार एवं प्रशासन का है कि वह इन बुनियादी अधिकारो की रक्षा करें। पिछले करीब 70 वर्षो से अधिकारों की रक्षा हेतु राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सघन प्रयास किए गए हैं, जिससे बिना किसी भेद-भाव के स्त्रियों एवं पुरुषों को गरिमामय एवं सम्मानजनक जीवन-यापन के अवसर मिल सकें। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर किए जा रहे ऐसे प्रयासों के लिए अब तक जो किया गया है, उसे जानने के लिए मानवाधिकारो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है:-

7.2.1 मानवाधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (Historical Background of Human Rights)

हम सभी जानते है कि मानवाधिकार का जन्म ही प्रकृतिप्रदत्त अधिकारो की सुरक्षा निरंकुश तथा अत्याचारी शासको से करने के लिए हुआ। प्राचीन काल से स्वतंत्रता प्रेमी नागरिक अपने प्रकृति प्रदत्त अधिकारों की रक्षा हेतु, अत्याचारी शासको के विरूद्ध संघर्षरत रहे। इंगलैंड में ऐसे स्वतंत्रता प्रेमियो को 15 जून 1215 को ऐतिहासिक सफलता मिली। उस दिन उन्होंने अपने निरंकुश एवं अत्याचारी सम्राट जॉन को विवश किया। वह सामन्तों के परम्परागत अधिकारों को मान्यता देने के उद्देश्य से **महान अधिकार पत्र या मैग्नाकार्टा (Glorious Revolution 1688)** पर हस्ताक्षर किया । देखा जाए तो स्वतंत्रता की लड़ाई के इतिहास में मेग्नाकार्टा एक आधारशिला है । इसके माध्यम से जो अधिकार सामंतों को मिले वह कालांतर में आम जनता को मिलते गए। इसी स्वतंत्रता-संग्राम का परिणाम इंग्लैण्ड की गौरवपूर्ण क्रांति था । जिसके फलस्वरूप सांसदों ने अधिकार पत्र, 1689 (Bill a Rights, 1689) लाकर राजा की शक्तियों पर अकुश लगाकर अपने अधिकारो की रक्षा की।

अधिकारों के विवेचना की दृष्टि से 4 जुलाई 1776 की आजादी का घोषणा पत्र (The Declaration of Independence, 4 July, 1776) अतिमहत्वपूर्ण है। इसी घोषणा का उपयोग करते हुए अमेरिकी उपनिवेशों ने अपने-आप को आजाद घोषित किया। साथ-ही स्वतंत्रता के मूल सिद्धांतो को भी प्रतिपादित किया, जो जीवन, स्वतंत्रता एवं सुखद जीवन के लिए आवश्यक माना गया।

सन् 1789 की फ्रांसीसी क्रांति के दौरान फ्रांस की राष्ट्रीय सभा (National Assembly) ने फ्रांसिसि संविधान की प्रस्तावना के रूप में मानव एवं नागरिक अधिकारों की घोषणा 26 अगस्त, 1789 (Declaration of the Rights of Man and Citizen, 26 August, 1789) की। इस घोषणा में प्रजातांत्रिक अवधारणाओं के अनुकूल मानवाधिकारों की विस्तृत चर्चा की गयी। स्मरणीय है कि फ्रांस की जनता अपने शासकों के अत्याचार से राहत पाने के लिए विद्रोह का रास्ता अपनाया तथा अत्याचार से स्थायी मुक्ति के लिए अपने संविधान के माध्यम से नागरिको की स्वतंत्रता की गारंटी का उपाय किया गया। ("Men are born and remain free and equal in rights ... The aim of all political associations is to preserve the natural imprescriptible rights of man. These rights are liberty, property, security and resistance to oppression") इस घोषणा से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता, समता, सम्पति के अधिकार की सुरक्षा तथा उत्पीड़न का विरोध करना। इसके अलावा कानूनी समता, कानूनी सुरक्षा तथा कानून के निर्माण मे जन सहभागिता का प्रावधान किया। अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण यह फ्रांसिसी घोषणा पत्र स्वतंत्रता प्रेमियों का प्रेरणा स्त्रोत बना।

19वीं शताब्दी में यूरोप के प्रायः सभी देशो की प्रशासनिक व्यवस्था को अमेरिकी स्वतंत्रता तथा फ्रांसिसी अधिकारो की घोषणा ने प्रभावित किया और यूरोपवासियों ने शासको की निरंकुशता को नियंत्रित करने में उल्लेखनीय स्वतत्रंता प्राप्त की। इस समय में यूरोप में आजादी की लहर फैली, किन्तु एशिया तथा अफ्रीका के यूरोपीय उपनिवेशों में अत्याचार एवं दमन की प्रक्रिया जारी रही। इस दोहरे मापदंड के चलते विभिन्न देशों के बीच विषमता बढ़ी और साम्राज्यवादी शोषण के विरूद्ध विद्रोह की भावना प्रज्जवलित हुई। इससे प्रभुत्व विस्तार के संघर्ष में हिंसा एवं युद्ध की परंपरा जारी रही। प्रथम विश्वयुद्ध (1914–18) इसी की परिणति था। उस युद्ध में न केवल बड़े पैमाने पर हिंसा हुई बल्कि मानवाधिकारों को निर्ममता से कुचला गया। इसी दौरान रूस की जनता ने अपने देश के अन्यायी शासनिक व्यवस्था (जार का शासन) के विरूद्ध खड़े हुए, जिसे रूसी क्रांति के नाम से जाना जाता है। इसकी सफलता से उत्पीड़ित जनता एवं कामगारों के बीच उत्साह की लहर दौड़ गयी। जहाँ अमेरिकी तथा फ्रांसिसी क्रांतियों ने राजनैतिक एवं नागरिक अधिकारो के महत्व को और ध्यान आकृष्ट किया, वहीं प्रथम विश्व युद्ध ने न केवल शांति के महत्व, बल्कि मानवाधिकारों की सुरक्षा के संबंध में प्रभावकारी कदम उठाने हेतु विवश किया। इन बातों के परिणामस्वरूप, विश्वशांति एवं मानवाधिकारों की गरिमा की सुरक्षा के लिए राष्ट्रसंघ की स्थापना की गयी।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद किए गए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास ।

7.3 मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights)

हमने अभी-अभी मानवाधिकार के इतिहास की जानकारी प्राप्त की तथा यह भी जाना की 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सार्वभौम मानवाधिकारों की घोषणा की। यह घोषणा विश्व में शांति स्थापित करने के लिए की गई थी। सभी देशों ने इसे स्वीकार किया। इसके अतर्गत 'अंतर्राष्ट्रीय बिल ऑफ राइट्स' का अनुशरण किया गया, जो कि प्रसंविदा करने वाले पक्षकारों पर वैध रूप से आबद्ध कर होगा।

इस विश्वव्यापी घोषणापत्र के निर्माण में कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण था। जिसमें मुख्य रूप से चार सदस्यों यथा आयोग की अध्यक्ष एवं अमरीका की **श्रीमती एलीनोट रूजवेल्ट**, उपाध्यक्ष के रूप में चीन के **पी0 सी0 च्यांग**, आयोग के प्रतिवेदक के रूप में लेबनान के **चार्ल्स मसिक** तथा फ्रांस के **रेना कासा** के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा कुछ अन्य सदस्यों, यथा, भारत के प्रतिनिधि के रूप **श्रीमती हँसा मेहता** थीं एवं सयुक्त राष्ट्र संघ के मानव अधिकार विभाग के निदेशक **जॉन0 पी0 हम्फरी** ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

7.3.1 प्रस्तावना (Preamble)

मानव परिवार के सभी सदस्यों के जन्मजात गौरव और सम्मान एवं अविभास्य अधिकारो की प्राप्ति द्वारा तथा उसकी अंतर्निहित मर्यादा के सम्मान द्वारा ही विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शांति बरकरार रह सकती हैं।

1. मानव अधिकारों के प्रति उपेक्षा, अवहेलना तथा तिरस्कार के फलस्वरूप बर्बर कृत्य हुए, जो मानव के आत्मा पर अत्याचार का कारण बना है। अत: ऐसे विश्व का निर्माण हो, जहाँ मानव को शासन एवं विचार की स्वतंत्रता हो तथा भय और अभाव से मुक्ति मिलें, यही आम जनता की सर्वोच्च अभिलाषा हैं।
2. मानव के लिए निरंकुश एवं अत्याचार के विरूद्ध, विद्रोह करना ही अंतिम उपाय नहीं रह जाना चाहिए। बल्कि कानून द्वारा नियम बनाकर मानव अधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य हैं।
3. राज्यों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधो के विकास को प्रोत्साहन देना चाहिए।
4. संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों ने इसके चार्टर में विश्वास व्यक्त किया तथा मानव के मूलभूत अधिकारों को स्वीकारा । यह मानव व्यक्तित्व की मर्यादा एव उसके अस्तित्व को पुरूष तथा महिलाओं के बीच समान अधिकारों तथा व्यापक स्वतंत्रताओं हेतु सामाजिक विकास व बेहतर जीवन स्तर को प्रोत्साहित करने का निश्चय किया हैं।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों ने मिलकर यह प्रतिज्ञा की है कि वह मानवाधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं के विश्वव्यापी सम्मान एवं क्रियान्वयन की वृद्धि करेंगे।
6. इस प्रतिज्ञा की सम्पूर्ण प्राप्ति के लिए इन अधिकारो एवं स्वतंत्रताओं के संबंध में एक सामान्य व्याख्या सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इसलिए महासभा घोषित करती है कि मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों की समान सफलता है। इसका उद्देश्य समाज के प्रत्येक व्यक्ति एवं प्रत्येक भाग, प्रत्येक अंग, इस घोषणा पत्र को ध्यान में रखते हुए, शिक्षण और अध्यापन के माध्यम से, यह प्रयत्न करेंगे कि इन अधिकारों एवं स्वतंत्रता के प्रति सम्मान की भावना का विकास हो और क्रमश: ऐसे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय उपाय किए जाए, जिससे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों की सार्वभौम मान्यता दें तथा इसके अनुपालन हेतु प्रयास करेंगे।

प्रस्तावना के अनुरूप इसमें वर्णित अन्य प्रावधानों का उल्लेख अनुच्छेदों में इस प्रकार हैं :-

अनुच्छेद 1 : सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है तथा मर्यादा एव अधिकारों में समान है। उनमे बुद्धि एंव विवेक परमात्मा की देन है। अत: एक-दूसरे के साथ भ्रातृत्व भाव से बर्ताव करना चाहिए।

अनुच्छेद 2 : प्रत्येक व्यक्ति के जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक एवं सामाजिक उत्पत्ति में समान अधिकार एवं स्वतंत्रता प्राप्त है। इस घोषणा के अंतर्गत जन्म, संपत्ति अथवा किसी अन्य प्रकार की मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार न किया जाए। इसके अलावा व्यक्ति जिस राज्य अथवा देश का नागरिक है, उसकी राजनीतिक, विधिक अथवा अंतर्राष्ट्रीय प्रस्थिति के आधार पर विभेद नहीं किया जाएगा, भले ही वह राज्य स्वतंत्र हो, या परिमित प्रभुसत्ता वाला हो या स्वशासनाधिकार से विहिन हो, सभी निवासियों के बीच कोई फर्क नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 3 : प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वाधीनता और वैयक्तिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद 4 : किसी को दास या पराधीन रखना, मानवाधिकार के विरूद्ध है। दास एवं दासता उनके सभी रूपों में निषिद्ध किया जायगा।

अनुच्छेद 5 : किसी को भी शारीरिक यातना नहीं दी जायेगी और न ही किसी के प्रति निर्दय, अमानुषिक या अपमानजनक व्यवहार होगा।

अनुच्छेद 6 : सभी व्यक्ति को सर्वत्र विधि के समक्ष एक व्यक्ति की मान्यता का अधिकार हैं।

अनुच्छेद 7 : सभी विधि के समक्ष समान हैं तथा किसी विभेद के बिना उन्हें विधि के संरक्षण का अधिकार है। इस घोषणा पत्र के उल्लंघन से उत्पन्न किसी विभेद व ऐसे विभेद के उत्तेजन के विरूद्ध सभी को समान संरक्षण का अधिकार हैं।

अनुच्छेद 8 : संविधान या विधि द्वारा प्राप्त मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर सभी को एक सुयोग्य राष्ट्रीय न्यायाधिकारण की प्रभावी प्रतिविधि के मिलने का अधिकार हैं।

अनुच्छेद 9 : किसी को भी मनमाने ढंग से गिरफ्तार, नजरबंद या देश से निर्वासित नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 10 : सभी को उनके खिलाफ आरोपित किसी भी अपराधिक आरोप के विरूद्ध तथा अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के निर्धारण के लिए पूर्णरूपेण स्वतंत्र एवं निष्पक्ष अदालत द्वारा सुनवाई का अधिकार हैं।

अनुच्छेद 11 : (क) वह व्यक्ति विशेष, जिस पर दण्डनीय अपराध का आरोप है, वह तब तक निर्दोष माना जायेगा, जबतक लोक अदालत के अंतर्गत, उसे स्वयं को निर्दोष साबित करने की सुविधा प्राप्त रही हो तथा दोष सिद्ध नहीं हो जाता हैं।

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसे कृत या अकृत (अपराध) के लिए दण्डनीय अपराध का अपराधी नहीं माना जाएगा, जिसे तत्कालिक प्रचलित राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध न माना गया हो। न ही उससे अधिक भारी दण्ड दिया जा सकेगा, जो उस समय दिया जाता, जिस समय वह दण्डनीय अपराध किया गया था।

अनुच्छेद 12 : किसी व्यक्ति की एकांतता, परिवार, घर या पत्र-व्यवहार के प्रति कोई मनमाना हस्तक्षेप न किया जाएगा, न किसी के सम्मान और ख्याति पर कोई आक्षेप हो सकेगा। ऐसे हस्तक्षेप या आक्षेपों के विरूद्ध प्रत्येक को कानूनी संरक्षण का अधिकार प्राप्त हैं।

अनुच्छेद 13 : (क) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी राज्य की सीमा के अंदर आने-जाने और बसने का अधिकार है ।

(ख) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश सहित किसी भी देश से अन्य देश में जाने और फिर अपने देश में लौट आने का अधिकार हैं।

अनुच्छेद 14 : (क) प्रत्येक को सताये जाने पर दूसरे देशों में शरण लेने और रहने का अधिकार है।

(ख) मूलत: अराजनीतिक अपराधों या संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों व सिद्धातों के विरूद्ध कृत्यों के फलस्वरूप अभियोजनों के मामलों में उपरोक्त अधिकार का आहवान नहीं होगा।

अनुच्छेद 15 : (क) सभी को एक राष्ट्रीयता का अधिकार हैं।

(ख) किसी को मनमाने ढंग से अपने राष्ट्र की नागरिकता से वंचित नहीं किया जाएगा, न ही उसे अपनी राष्ट्रीयता परिवर्तन के मान्य अधिकार से वंचित किया जाएगा।

अनुच्छेद 16 : (क) व्यस्क पुरूषों व महिलाओं को जाति, राष्ट्रीयता या धर्म के किसी प्रतिबंध के बिना विवाह करने तथा परिवार बसाने का अधिकार है। उन्हें विवाह करने, विवाहित जीवन के दौरान तथा तलाक के समय समान अधिकारों का हक है।

(ख) विवाह-बंधन में बंधने वाले पुरूष व महिला की स्वतंत्र व पूर्ण सहमति के उपरांत ही विवाह सम्पन्न होगा।

(ग) परिवार समाज की मूल इकाई है। अत: इसे समाज व राज्य द्वारा संरक्षण का हक है।

अनुच्छेद 17 : (क) सभी को स्वयं या दूसरों की साझेदारी में संपत्ति रखने का अधिकार है।

(ख) किसी को भी उसकी संपत्ति से मनमाने ढंग द्वारा वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 18 : प्रत्येक व्यक्ति को विचार अंत:करण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है। इस अधिकार में अपना धर्म या विश्वास बदलने की स्वतंत्रता और अकेले या दूसरों के साथ मिलकर और सार्वजनिक या निजी तौर पर, अपने धर्म या विश्वास को शिक्षा, व्यवहार, उपासना और अनुपालन के रूप मे व्यक्त करने की स्वतंत्रता भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 19 : सभी को विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है, इस अधिकार के तहत किसी हस्तक्षेप या भौगोलिक सीमा के बंधन के बिना विचारों को रखने तथा किसी भी माध्यम से विचारों व सूचनाओं को माँगनें, प्राप्त करने व देने की स्वतंत्रता सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद 20 : (क) सभी को शांतिपूर्ण ढंग से एकत्रित होने व संगठन की स्वतंत्रता का अधिकार है।

(ख) किसी संस्था में सम्मिलित होने के लिए किसी को भी विवश नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 21 : (क) सभी को अपने राज्य के प्रशासन में प्रत्यक्ष रूप से या स्वतंत्र रूप से निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा हिस्सा लेने का अधिकार है।

(ख) सभी को अपने राज्य की सरकारी सेवाओं मे प्रवेश पाने का समान अधिकार है।

(ग) सरकार के शासनाधिकार का आधार लोकमत हो यह लोकमत निश्चित अवधि में व निष्पक्ष चुनावों द्वारा अभिव्यक्त होगा और ये चुनाव सार्वजनिक और समान मताधिकार के आधार पर होगा। यह गुप्त मतदान तथा समान मताधिकार द्वारा स्वतंत्र मतदान प्रक्रियाओं से होगा।

अनुच्छेद 22 : समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा प्रत्येक राज्य के संगठन व साधनों के अनुरूप सभी को आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति का हक है जो उसके व्यक्तित्व की गरिमा व स्वतंत्र विकास के लिए अपरिहार्य है।

अनुच्छेद 23 : (क) प्रत्येक व्यक्ति को काम करने, अपनी इच्छा से अपना रोजगार चुनने, काम करने की उचित और अनुकूल परिस्थितियाँ पाने और बेरोजगारी के खिलाफ सुरक्षा का अधिकार हैं।

(ख) प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेद-भाव के समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार हैं।

(ग) सभी कार्यरत व्यक्ति को न्यायसंगत तथा अनुकूल पारिश्रमिक पाने का अधिकार है। जिससे वह अपना तथा अपने परिवार के अस्तित्व को, मान-मर्यादा के अनुकूल बना सके तथा आवश्यक हो तो सामाजिक संरक्षण का सहारा भी ले सकता है।

(घ) अपने हितों के संरक्षण हेतु सभी को व्यवसाय संघ या श्रमिक संघ बनाने या उसमें शामिल होने का अधिकार है।

अनुच्छेद 24 : सभी को विश्राम एवं अवकाश का अधिकार है, जिसमें कार्यसीमा की समुचित परिसीमा व वेतन सहित कालिक अवकाश शामिल है।

अनुच्छेद 25 : (क) सभी को अपने परिवार व स्वयं के लिए भोजन, वस्त्र, आवास व चिकित्सीय देखरेख एवं आवश्यक सामाजिक सेवाओं सहित स्वास्थ्य व कल्याण के लिए एक पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार है। सभी को बीमारी, बेकारी, वैधय, असमर्थता या अन्य जीविका अभावों से जो उसके नियंत्रण के परे है, सुरक्षा का अधिकार है।

(ख) माता व शिशु को विशेष देखरेख एवं सहायता का अधिकार है। प्रत्येक बच्चे को चाहे वह विवाहित माता से जन्म हो या अविवाहित से, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 26 : (क) सभी को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा कम-से-कम प्रारंभिक और बुनियादी अवस्थाओं में निःशुल्क होगी। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा को सामान्य रूप से प्राप्त बनाया जाएगा तथा उच्च शिक्षा सभी को योग्यता के आधार पर सामान्य रूप से प्राप्त होगी।

(ख) शिक्षा का उद्देश्य मानव व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास होगा और मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओ के प्रति सम्मान को मजबूत बनाया जा सकेगा। शिक्षा को सभी राज्यों के बीच जातीय या धार्मिक समूहों के बीच आपसी सद्भावना, सहनशीलता व मित्रता को बढ़ावा देना होगा तथा शांति कायम रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियो को बढ़ावा देना होगा।

(ग) माता-पिता को अपने बच्चों को दी जाने वाली शिक्षा के प्रकार का चयन करने का पूरा अधिकार हैं।

अनुच्छेद 27 : (क) सभी को यह अधिकार होगा कि वह समुदाय की सांस्कृतिक जीवनधारा में स्वतंत्र रूप से हिस्सा ले सकें, समस्त कलाओं का आनंद ले सके तथा वैज्ञानिक उन्नति व इनसे होने वाले लाभों का भोग कर सकें।

(ख) प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी ऐसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति से उत्पन्न नैतिक और आर्थिक हितों की रक्षा का अधिकार है। जिसका रचयिता वह स्वयं हैं।

अनुच्छेद 28 : सभी व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था की प्राप्ति का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा में उल्लेखित अधिकारो ंऔर स्वतंत्रताओं को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके।

अनुच्छेद 29 : (क) सभी का उस समाज के प्रति कर्तव्य है, जिसमें रहकर उसके व्यक्तित्व का स्वतंत्र और पूर्ण विकास संभव हो।

(ख) अपने अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं का प्रयोग करते समय, प्रत्येक व्यक्ति केवल ऐसी मर्यादाओं के ही अधीन होगा, जो कानून द्वारा सिर्फ इस प्रयोजन से निर्धारित की गई हो कि अन्य लोगों के अधिकारों तथा स्वतंत्रताओं के प्रति स्वीकृति और सम्मान सुनिश्चित हो सके और जिनसे एक लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था तथा जन कल्याण के उचित माँगों को पूरा कर सकें।

(ग) इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपयोग किसी प्रकार से भी संयुक्त राष्ट्र के सिद्धांतों और उद्देश्यों के विरूद्ध नहीं किया जायगा।

अनुच्छेद 30 : इस घोषणा की किसी भी बात की ऐसी व्याख्या न की जाए, जिससे यह अर्थ लगे कि किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति को किसी ऐसी गतिविधि में भाग लेने या ऐसा कार्य करने का कोई अधिकार है, जिसका उद्देश्य यहाँ घोषित अधिकारो ंया स्वतंत्रताओं में से किसी का भी हनन हो।

इस प्रकार, मानवाधिकारो की विश्व व्यापी घोषणा के अंतर्गत उपरोक्त अधिकारों को जाना। इन्हें प्रथम पीढ़ी के मानवाधिकार के रूप में जाना जाता हैं।

मानवाधिकार के सार्वभौम घोषणा ने संयुक्त राष्ट्र संघ के खास-खास पहलूओं के सबंध में प्रसंविदाएँ, अभिसमय, घोषणाएँ और अनुशंसाएँ तैयार करने के लिए आधार प्रस्तुत किया। परन्तु इसके प्रवर्तन के लिए कोई तंत्र नहीं था। अत: इस कमी को दूर करने के लिए **1966 में प्रसंविदाएँ** पारित किया।

7.3.1 1966 की अंतराष्ट्रीय प्रसंविदाएँ

द्वितीय पीढ़ी का मानवाधिकार की विश्वव्यापी उद्घोषणा के बाद 1996 में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसंविदाएँ उद्घोषित की गयी। सन् 1966 में आई०सी०ई०एस०सी०आर० (International covenant on economic, social and cultural rights) पारित किया गया था, परन्तु अपेक्षित 35 देशों के अनु समर्थन (Ralification) के बाद, इसे 1976 में लागू किया गया। बाद में इसे अन्य कई और देशों की भी स्वीकृति मिली। दक्षिण एशिया में पाकिस्तान, भूटान और मालद्वीव ने अभी तक इस प्रसंविदा पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

आई०सी०ई०एस०आर० (I.C.E.S.R. Interntionl Covenant on economic, Social and cultural rights) में सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के बुनियादी मानदंड निर्धारित किए गए हैं और इनकी प्राप्ति सुनिश्चित करना, राज्यों का कर्त्तव्य है। इससे संबंधित आवधिक रिर्पोट प्रस्तुत करना भी राज्यों की जिम्मेवारी है। आई०सी०ई०एस०आर० (I.C.E.S.R) समिति समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले देश इनके कार्यान्वयन एवं प्रगति पर नजर रखती है। इन प्रसंविदाओं के अतर्गत घोषित 28 धाराओं के अधिकार आते हैं, यथा :-

(i) काम का अधिकार अनुच्छेद-6 (The Right of work) (Article-6)

(ii) काम से जुड़े अधिकार (अनुच्छेद-6) (Other Rights connected with the right to work) (Article-7) जैसे समान काम के लिए समान वेतन।

(iii) कार्य से संबंधित अधिकार (अनुच्छेद 8) जैसे, संघ बनाने का अधिकार (The Right of form union or association)

(iv) सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 9) (The Right to social security) (Article-9)

(v) परिवार के प्रति राज्य का दायित्व (अनुच्छेद 10) (The Right of family protection by state) (Article-10)

(vi) समुचित जीवन स्तर का अधिकार (अनुच्छेद 11) (Right to adequate standard of living) Article-11)

(vii) स्वास्थ्य का अधिकार (अनुच्छेद 12) (The Right to Health) (Article 12)

(viii) शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद 13 और 14) (The Right to Education) (Articles 13 and 14)

(ix) सांस्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद 15) (The Culturel Rights) (Article 15)

इन सभी को घोषणा के अनुसार द्वितीय पीढ़ी का मानवाधिकार कहा जाता है।

7.3.2 तीसरी पीढ़ी के मानवाधिकार (Human Rights of the third Generation)

संयुक्त राष्ट्र ने विकास के अधिकार की घोषणा 1986 में स्वीकृत किया। जिसे Declaration the right of development, 1986 की सहमति थी। इसे महासभा के 41/128 प्रस्ताव के द्वारा पारित एवं अंगीकृत किया। इसके अंतर्गत 10 धाराए हैं। 1998 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग (UN-Commission on Human Rights) की सिफारिशों के आधार पर आर्थिक एवं सामाजिक परिषद (The Economic and social council) ने एक कार्यदल का गठन किया एवं उपलब्धियों की समीक्ष किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार उच्चायुक्त (UN High Commissioner for Human Right) द्वारा नियुक्त एक स्वतंत्र विशेषज्ञ ने विचार-विमर्श के लिए एवं इस अधिकार के कार्यान्वयन हेतु सिफारिश को, प्रत्येक सत्र में कार्यदल द्वारा प्रस्तुत किया जाएगा। मानवाधिकार उच्चायुक्त उन देशों को तकनीकी सहायता देता है, जो अपने नागरिकों के विकास के अधिकार को क्रियान्वित करने के लिए कार्यदल की सहायता चाहते है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के अन्य अभिकरणो ंका कर्त्तव्य है कि विकास के अधिकार को सूत्रबद्ध करें, जो इस प्रकार है :-

1. विकास के अधिकार की प्राप्ति के लिए मिल-जुलकर अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय वातावरण बनाना,
2. विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं के अधिकार की पूर्ण प्राप्ति में सहायता मिले,
3. अंतर्राष्ट्रीय विकासात्मक नीतियों को सूत्रबद्ध करने के लिए ऐसे कदम उठाना, जिससे विकास के अधिकार की पूर्ण प्राप्ति में सहायता मिले।

इस प्रकार, यह अधिकार सभी नागरिकों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से विकास की जिम्मेदारी सौंपता है, जिसमें मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रता और साथ-ही-साथ समुदाय के प्रति उनके कर्त्तव्यों का ध्यान रखा जाता है।

इस प्रकार हमने मानवाधिकार के घोषणाओं का सिलसिलेवार अध्ययन किया।

7.3.3 मानवाधिकार का अर्थ (Meaning of Human Rights)

प्रत्येक व्यक्ति आनन्दपूर्वक जीवनायापन कर सके, इसके लिए आवश्यक है कि कुछ स्वतंत्र अधिकार मानव को प्राप्त हो बावजूद विभिन्न देशों के बीच संघर्ष होता रहा। परन्तु, इस अवधि में मानवाधिकारों की अवहेलना ही हुई। **हिटलर** ने अपने शासनकाल में जर्मनी में 60 लाख यहूदियों की हत्या कर दी । 10 लाख यहूदियो ंको गैस चैम्बर में रखकर निर्दयता पूर्वक मृत्यु दण्ड दिया गया। इस काल में, उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के विरूद्ध विभिन्न देशों में संघर्ष चलता रहा और साम्राज्यवादी देशों के बीच प्रभुत्व-विस्तार की होड़ की प्रवृत्ति का परिणाम स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45) हुआ। इस युद्ध के अंत में अमेरिका ने जापान के हिरोशिमा एवं नागासाकी पर अगस्त 1945 में परमाणु बम गिराया गया, जिससे 2 लाख से अधिक लोगों का जीवन क्षणों में समाप्त हो गया।

इस तरह जर्मनी में हो रही बर्बरताओं तथ द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं से ग्रस्त मानव समाज को राहत दिलाने के उद्देश्य से अतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना का निर्णय लिया गया। परिणामत: 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। इसके चार्टर में अतर्राष्ट्रीय शांति के साथ-साथ मानवाधिकार की रक्षा के संकल्प को दोहराया गया। इसके अंतर्गत मानवाधिकार की रक्षा का दायित्व संयुक्त राष्ट्रसंघ के उपसंगठन आर्थिक एवं सामाजिक परिषद् को सौंपा गया। इस परिषद् ने 1946 में **श्रीमती एनोरोड रूजवेल्ट** की अध्यक्षता मे ंमानवाधिकार के प्रारूप तैयार करने का भार सौंपा। इस प्रारूप को 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्रसंघ

की सार्वभौम मानवाधिकारो की विश्वव्यापी योजनाओं हेतु घोषणा की गई। इस प्रकार, हमने मानवाधिकार की सोच कब विकसित हुई तथा इसके इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की। अब हम इसके घोषणाओं को जानने का प्रयास करेंगे। मनुष्य को प्रकृति ने कुछ अधिकार दे रखे हैं तथा कुछ अधिकार उसे अपने देश के संविधान से मिलता हैं, जिसके उपयोग द्वारा मनुष्य अपना सर्वागीण विकास कर सकता है । इसे ही मानवाधिकार कहते हैं। इन अधिकारों के उपयोग हेतु मानव की राष्ट्रीयता, लिंग, व्यवसाय, रंग, जाति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, अवस्था अथवा आयु या परिस्थिति से कोइ अंतर नही आता हैं। मानवाधिकार द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति तो कर ही पाता है, इसके अलावा सामाजिक, आत्मिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। ये अधिकार मानव की गरिमा को बढ़ाकर समाज में सम्पन्नता एवं सौहार्द्र बढ़ातें हैं। मानवाधिकार से साम्प्रदायिक बंधुत्व और भाईचारे को बल मिलता है। यह जीवन में आने वाली बाधाओं को दूर करके शांति एवं भाईचारा को बढ़ाता है और उन्नति एवं विकास के मार्ग को प्रशस्त करता है। वास्तव में, ''मानव अधिकार मस्तिष्क की अभिवृत्ति है, जो मानव और उसकी शक्तियों, मामलों, मौखिक आकांक्षाओं तथा उसकी भलाई को प्राथमिक महत्व प्रदान करता है।'' **एल0के0ओड** ने कहा कि ''मानववाद का दर्शन मनुष्य तथा उसके हित को सवर्वोपरि मानता है। मानवाधिकार की रूचि न तो काल्पनिक ईश्वर में है और न अमूर्त शाशवत चिंतन में है । उसकी रूचि तथा चिंतन का एकमात्र केन्द्र मनुष्य तथा उसकी स्थिति है। उसकी आशाएँ तथा आकांक्षाएँ, उसके आदर्श, उसकी उपलब्धियाँ एवं दुर्बलताएँ, चिंतन भी इसी श्रेणी में आती हैं। कुल मिलाकर रक्त-मांस के बने हुए इस सांसारिक मनुष्य के बारे में चिंतन ही मानवाधिकार का विषय क्षेत्र हैं।'' **लेमन** ने भी अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ''समग्र मानवाधिकार के कल्याण के लिए मानवाधिकार सेवा का दर्शन है। इसका विश्वास है कि मानव का कल्याण तर्क बुद्धि तथा लोकतंत्र द्वारा सम्भव है।'' **निकोलस हैन्स** के शब्दों में, ''शिक्षा समस्याओ के प्रति मानवीय दृष्टिकोण मानवाधिकार है, अर्थात् मानव प्रकृति एवं मानव हितों को विश्व की संकीर्ण एवं कट्टर धार्मिक व्याख्या द्वारा दबाया ना जाए, बच्चे को प्रकृति और उसके विकासशील मन को स्कूल के अत्याचारी एवं कठोर शिक्षण विधियों में न दबा दिया जाए। मौलिक रूप से मानवाधिकार क अर्थ है- कट्टरता की बेड़ियों से विवेक की मुक्ति एवं वास्तविक तथ्यों की निरीक्षण प्रकृति और मानवता का आलोचनात्मक अध्ययन।'' कहने का अर्थ है कि मानवाधिकार एक ऐसा दर्शन है, जो मनुष्य के कल्याण और आनन्द पर केन्द्रित है। इसमें नैतिक एंव आध्यात्मिक मूल्य के साथ भौतिक बहुलता दोनों सम्मिलित हैं। यह निहित स्वार्थो एवं निर्धनता के विरूद्ध हैं। मानवाधिकार अंधविश्वासों एवं कट्टरता से जकड़े हुए मन को मुक्ति प्रदान करता है, वैज्ञानिक खोजों के लिए प्रेरित करता है। **जैक्स** के अनुसार, ''मानवीय पूर्णता ही मानवता का लक्ष्य होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, मानवाधिकार का लक्ष्य संतुलित एवं पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करना है। मानव की खुशहाली एवं प्रसन्नता मानव की पूर्णता से संबंधित है। ''मानवता की सेवा'' ही इसका धर्म तथा 'शांति' इसका संकल्प हैं।

यदि हमें मानवाधिकार के अर्थ को सही ढंग से समझना है, तो संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 16 दिसम्बर, 1966 को अपने प्रतिज्ञा पत्रों को सर्वसम्मति से अनुमोदित किया था, जिन्हें 3 जनवरी, 1976, एवं 23 मार्च 1976 को लागू किया गया, को जानना होगा। इस प्रतिज्ञा पत्रों द्वारा मानव अधिकारों को तीस अनुच्छेदों में परिभाषित किया गया है। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अधिकार है।

1. प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रा का अधिकार है।
2. प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से अपनी तथा परिवार की सुरक्षा करने का अधिकार है।
3. बंधुआ मजदूरी करना निषिद्ध है।

4. किसी को भी शारिरिक यातना नहीं दी जानी चाहिए।
5. सभी बिना किसी भेदभाव के समान रूप से कानूनी सुरक्षा के अधिकारी है।
6. प्रत्येक व्यक्ति को, अपना देश को छोड़ने या देश में रहने या अपने देश लौटने का अधिकार है।
7. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकरी नौकरियों को प्राप्त करने का पूरा अधिकार है।
8. प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने का अधिकार है।
9. बच्चों को शिक्षा किस रूप में दी जाये, यह माता-पिता का अधिकार है।
10. प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता पूर्वक समाज के सांस्कृतिक जीवन में हिस्सा लेने का अधिकार हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने दुनिया भर के बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा और उनकी उचित देखभाल के लिए संयुक्त राष्ट्र बालकोष की स्थापना की है। इसे ''यूनीसेफ'' के नाम से भी जाना जाता है। इसका कार्य विश्व भर के बच्चों से संबंधित कार्यो की देखभाल करना है। संयुक्त राष्ट्र के अनुच्छेद 54 में बच्चों से संबंधित कुछ खास अधिकार दिए गए हैं :-

1. प्रत्येक बच्चे को जीने का अधिकार है।
2. बच्चों को उसकी उचित देखभाल एवं पोषण का अधिकार है।
3. प्रत्येक बच्चे को स्वास्थ्य सुविधाएँ पाने का अधिकार है।
4. बच्चे को शिक्षा के समान अवसर पाने का अधिकार है।
5. प्रत्येक बच्चे को अपने अधिकारों एवं भलाई के लिए कानूनी सुरक्षा लेने का अधिकार है ।

उपरोक्त बातों से हमें मानवाधिकार के अर्थ को भली-भाँती समझने में सहूलियत होती है। अब हम मानवाधिकार के अंतर्गत आने वाले अधिकारों को विस्तार से जानेंगे।

7.5 मानवाधिकार का वर्गीकरण (Classification of Human Rights)

इन घोषणाओं में मानवाधिकारों के औचित्य, स्वरूप तथा अधिकारों की रक्षा में सदस्य राष्ट्रों की प्रतिबद्धता की विस्तृत चर्चा की गई है। मानवाधिकारों के प्रस्तावना, इसके औचित्य को स्वीकारा गया है। इसके अंतर्गत मानव परिवार के सभी सदस्यों के सम्मान पूर्वक एवं गरिमामय जीवनयापन के लिए मूलभूत मानवाधिकारों की मान्यता विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति की आधारशीला है। इन अधिकारों की उपेक्षा करने वाले राष्ट्रों में हिंसा, अशान्ति एवं विद्रोह का स्पष्ट रूप दिखता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों ने मानव समुदाय के सभी सदस्यों को समानता, सदस्य राष्ट्रों की गरिमा एवं उनके अधिकारों के औचित्य के बारे में विश्वास व्यक्त किया। इस घोषणा से सदस्य राष्ट्रों के मार्ग दर्शन के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ऐसी सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय संगठन ने सर्वमान्य मानवाधिकार के उत्कृष्ट मानदंडो के लक्ष्य का अनुपालन के लिए प्रस्तुत किया। मानव समुदाय के समक्ष अपने संकल्प को दुहरया कि वे इन अधिकारों एवं स्वतंत्रता के प्रति समुचित आदर-भावना जागृत करने के लिए व्यापक शिक्षण एव अनुपालन के लिए समुचित कानूनी व्यवस्था स्थापित करने के कारगर उपाय करेंगे। अत: इनका वर्गीकरण हम मुख्यत: तीन भागों में करेंगे।

7.5.1 नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार (Civil and Political Rights)

इन अधिकारों के स्वरूप में नागरिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार तथा

अधिकारों के अनुपालन के लिए उपयुक्त राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है । इन अधिकारों में जीवन की सुरक्षा, अत्याचार एवं उत्पीड़न से रक्षा, कानूनी समता, धर्म की स्वतंत्रता, विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता, सूचना पाने की आवश्यक सुविधा, सम्पत्ति का अधिकार, अपराधी प्रमाणित नहीं होने तक निर्दोष समझे जाने का अधिकार, सार्वजनिक मुकदमों के न्यायपूर्ण प्रक्रिया का अधिकार तथा राज्य के बाहर आने-जाने आदि अधिकारों को सम्मिलित किया गया । यह स्वीकार किया गया कि नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की रक्षा एवं उनके उपभोग के समुचित अवसर उपलब्ध कराने से मानव समुदाय के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त होगा ।

7.5.2 आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार (Economical, Social and cultural Rights)

मानवाधिकार के प्रस्तावना में यह भी ध्यान रखा गया है कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के अभाव में नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों के उपभोग में अनावश्यक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा । अर्थात् इन अधिकारों की अपेक्षा से मानव के आत्म-सम्मान और स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो पाएगी । इन अधिकारो में, काम का अधिकार (Right to work), इच्छानुसार काम चुनने का अधिकार, न्यायपूर्ण वेतन का अधिकार, आराम एवं अवकाश के अधिकार को भी सम्मिलित किया गया । आर्थिक विषमता के चलते गरीबी, बेकारी, बीमारी तथा वृद्धावस्था से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए व्यापक सामाजिक सुरक्षा की योजना लागू करने का सुझाव दिया गया । सांस्कृतिक परम्पराओं की रक्षा के अधिकार को भी सम्मिलित किया गया । इससे स्पष्ट है कि आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की सहायता से ही राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारो का सम्यक् उपभोग हो पाएगा तथा मानव समुदाय के सर्वांगीण विकास का सपना पूरा हो पाएगा ।

7.5.3 सामाजिक एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था (Sociological and International System)

इन अधिकारों की चर्चा व्यक्ति की गरिमा की रक्षा के सिलसिले में स्पष्ट किया गया है, जिसमें जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, जन्म, राजनीतिक एवं सामाजिक उत्पत्ति या अन्य प्रकार के भेदभाव के बिना, इस घोषणा में वर्णित सभी अधिकारो के उपभोग के लिए मानव समुदाय का प्रत्येक सदस्य उपयुक्त पात्र समझा जाएगा । इसमें अधिकारों के साथ-साथ कर्त्तव्य पालन के महत्व की ओर भी ध्यान दिया गया है और स्पष्ट किया गया है कि बिना कर्त्तव्यों के पालन के हम अधिकारों का उपभोग नहीं कर पाएँगे । प्रत्येक मनुष्य को ऐसी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अंतराष्ट्रीय व्यवस्था पाने का अधिकार है, जिसके तहत वह इस घोषणा पत्र में चर्चित अधिकारो का उपभोग कर सके । उसको जीवन की सुरक्षा की गारंटी मिल सके । सभी को विकास का सुअवसर प्राप्त हो एवं विश्व शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण बन सके ।

हमने मानवाधिकार के अंतर्गत आने वाले अधिकारों का वर्गीकरण कर, उसे समझा ।

7.6 सारांश (Summary)

इस पाठ में हमने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित मानवाधिकार का वृहत् अध्ययन किया । इन अधिकारों का विश्व समुदाय को किस प्रकार ज्ञान हुआ ? कैसे इन अधिकारों के प्रति विश्व में चेतना आई ? अर्थात् मानवाधिकारो की उत्पत्ति का वर्णन किया गया । संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) द्वारा मानवाधिकार के संबंध में घोषणा को भी विस्तार से जाना । इस पाठ मे घोषणाओं में आने वाले अनुच्छेदो को जाना । इन अनुच्छेदों के माध्यम से हमने मानव के नागरिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि मुद्दों पर दिए जाने वाले अधिकारों को जाना ।

ये अधिकार, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सभी मनुष्यों को उपलब्ध है। संयुक्त राष्ट्र संघ के इस प्रस्ताव पर सहमति देने वाले सभी देशों के नागरिकों को यह अधिकार प्राप्त है। ये अधिकार उन देशों के नागरिकों को प्रकृति प्रद्त अधिकारों को सुरक्षा कर सकेंगे। इन अधिकारों का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति आनन्दपूर्वक जीवनयापन कर सके। इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य के कुछ स्वतंत्र अधिकार, जो उसे मानव होने के नाते दिए जाए। उन अधिकारों की जानकारी विश्व में संयुक्त राष्ट्रसघ के समय-समय पर किए गए घोषणाओं के माध्यम से विश्वपटल पर आई। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा प्रथम घोषणा 10 दिसम्बर, 1948 को की गई। इसके बाद दूसरा घोषणा 1966 में किया गया, जिसे लागू 1976 में किया गया तथा तीसरा घोषणा 1986 में किया गया, जिसमें विकास का अधिकार की विशदव्याख्या की गई है। इन अधिकारों का वर्गीकरण, नागरिक एवं राजनीतिक अधिकार, आर्थिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक अधिकार एवं सामाजिक एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था के रूप में किया गया है।। अतः कहा जा सकता है कि यह पाठ छात्रों को मानवाधिकार से सबंधित महत्वपूर्ण जानकारी देने का सफल प्रयास करता है ।

7.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. मानवाधिकार के आप क्या समझते हैं ? मानवाधिकारों के विश्वव्यापी घोषण के मुख्य प्रावधानों की समीक्षा कीजिए।

   What do you understand by Human Rights ? Examine the main provisions of the universal declaration of Human Rights.

2. प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पीढ़ियों के विभिन्न मानवाधिकारों का उल्लेख कीजिए।

   Enumerate the various human rights of the First, Second and Third generation.

3. मानवाधिकार का अर्थ क्या हैं ? इनका वर्गीकरण कर व्याख्या करें।

   What is the meaning of Human Rights ? Explain its classification.

7.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. कुमार, डॉ0 ईश्वर चन्द्र, बौद्धिक समाजः चुनौतियाँ 2007 बिहार पेंशनर समाज, पाटलिपुत्रा, पटना
2. Mohanty, Jagennath, Human Rights Education, 2000, Deep & Deep Publicatins Pvt. Ltd. New Delhi.
3. देव, दास, अर्जुन, इंदिरा अर्जुन, सुरता, मानव अधिकार, स्त्रोत ग्रंथ, 1998, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (NCERT) , नई दिल्ली
4. दुबे, डॉ0 सत्यनारायण दुबे 'शरतेन्दु' : मूल्य-शिक्ष, 2017, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
5. Nationl Commission on Human Rights (India) Reports and News Letters.
6. सक्सेना, एन०आर० स्वरूप, 205, शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धात, आर० लाल बुक डिपो, मेरठ।
7. गुप्ता, एस०पी, अल्का, 2009 भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद।

❑ ❑ ❑

इकाई : 8 शिक्षा : एक मूलभूत अधिकार (Education : A Fundamental Right)

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

8.1 परिचय (Introduction)

8.2 बाल-अधिकार (Child Right)

8.3 बाल अधिकार की आवश्यकता (Need of Child Rights)

8.4 भारतीय संविधान में अधिकार (Rights in Indian constitution)

8.5 बाल-अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (United Nation on Child Right)

8.6 सारांश (Summary)

8.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

8.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

8.0 उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के उपरान्त पाठक निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त कर सकेंगे :–

- बाल-अधिकार का संप्रत्यय (Concept of child right) का ज्ञान प्राप्त करेंगे ।
- बाल-अधिकार की आवश्यकता क्यों (Why child right is neccessary) है, जानेंगे ।
- भारतीय संविधान में वर्णित अधिकार (Rights described in Indian countitution) को समझेंगे ।
- बाल-अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (Child Right and U.N) के कानूनों को जानेंगे ।

8.1 परिचय (Introduction) :

बालक के सर्वांगीण विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका है। शिक्षा से वंचित बालक किसी भी देश के विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर सकता है। शिक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत में इसे बच्चों का मूलभूत अधिकार घोषित कर दिया गया है। यह अधिकार समस्त अधिकारों से महत्वपूर्ण है क्योंकि

शिक्षित बालक से ही शिक्षित समाज का निर्माण हो सकता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त विश्व स्तर पर भी एक महत्वपूर्ण संस्था है जो बालकों के अधिकारों की रक्षा कर रही है और वह संस्था है– संयुक्त राष्ट्र संघ। संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी विभिन्न समितियों के माध्यम से अपने कार्यो को सम्पादित कर रही है। इन्हीं समितियों में से एक है– यूनीसेफ। यूनीसेफ दुनिया भर में बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा और उनकी देखभाल के लिए काम करती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्तमान समय में बाल अधिकार किसी एक देश का विषय न होकर वैश्विक रूप धारण कर चुका है। इसका वैश्विक स्वरूप वर्तमान समय में शोध का विषय भी बन चुका है इसी कारण बाल आधारित शिक्षा नवीनतम शिक्षण विधियाँ, पाठ्योत्तर स्तर गतिविधियाँ दिन-प्रतिदिन अपना नवीन स्वरूप प्राप्त कर रही है।

8.2 बाल अधिकार (Child Right) :

बाल-अधिकार क्या है? भारतीय संविधान में इसे किस प्रकार वर्णित किया है, इससे संबंधित राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय नियम तथा कानून क्या है, इत्यादि की विस्तृत जानकारी प्राप्त करने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि बालक किसे कहा जाए ?

भारत में बालक की श्रेणी में ऐसे बच्चों को रखा गया है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम होती है। क्योंकि 18 वर्ष की उम्र के बाद ही कोई व्यक्ति वोट डाल सकता है, ड्राइविंग लाइसेंस प्राप्त कर सकता है या अन्य कानूनी समझौते के अन्तर्गत आता है।

8.3 बाल-अधिकार की आवश्यकता (Need of Child Right) :

बचपन, मानव जीवन की सर्वाधिक मुख्य कड़ी है, इसी अवस्था में विकसित विचार मूल्य स्वास्थ्य पूरे जीवन को उचित दिशा प्रदान करते है। यदि इस अवस्था में बालक को उचित शिक्षा न मिले, तो उचित संस्कार का निर्माण नही हो पाता है, जीवन-मूल्य विकसित नहीं हो पाते है तथा उचित पोषण न मिलने पर अनेकों बालक कुपोषण का शिकार हो जाते है। देश के प्रत्येक बालक को उत्तम शिक्षा मिले, उत्तम आहार मिले, उत्तम पालन-पोषण हो, इसी को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने बाल-अधिकार बनाए है जिससे कि बच्चों का समुचित विकास हो सके।

देश में निर्मित तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बने जिस कानून को भारत में स्वीकार किया गया है वह उन सब पर लागू होता है जिसकी आयु 18 वर्ष से कम है।

8.4 भारतीय संविधान में अधिकार (Rights in Indian Counstitution):

भारतीय संविधान में सभी बच्चों के लिए कुछ अधिकार सुनिश्चित किए गए है जिसका विवरण निम्नलिखित है –

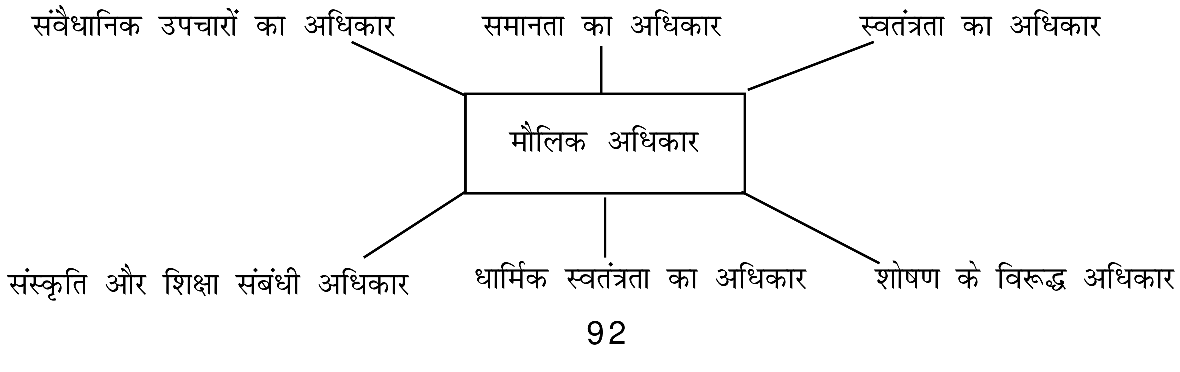

अनुच्छेद-14 : कानून के समक्ष समानता

अनुच्छेद-15 : राज्य किसी नागरिक के साथ भेद-भाव नही करेगा। इस अनुच्छेद में उल्लिखित कोई भी बात राज्य द्वारा महिलाओ तथा बच्चों के लिए विशेष प्रावधान किए जाने में अवरोध उत्पन्न नहीं करेगी।

अनुच्छेद-21 : जीवन का अधिकार

अनुच्छेद-21ए : (आरटीई) राज्य स्वयं के कानूनों के अनुसार निर्दिष्ट तरीको द्वारा 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराएगा।

अनुच्छेद-23 : मनुष्यों के दुर्व्यापार तथा बलात् श्रम का निषेध ।

अनुच्छेद-24 : कारखानों में बच्चों की नियुक्ति का निषेध।

अनुच्छेद-39(ई) तथा 39(एफ) : बाल श्रम को रोकने के लिए निर्देश ।

अनुच्छेद-45 : आरंभिक बाल्यावस्था में देखभाल तथा 6वर्ष से कम आयु के बच्चों की शिक्षा के लिए प्रावधान।

अनुच्छेद-47 : पोषण स्तर तथा जीवन यापन के मानक को ऊँचा उठाने का प्रावधान।

8.5 बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (United Nation on Child Rights) :

बाल अधिकारों पर बने अंतराष्ट्रीय कानून अधिकांशत: संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन से सम्बद्ध है। ये अन्तराष्ट्रीय कानून और भारतीय संविधान व विधि-विधान के साथ मिलकर तय करते है कि बच्चे को वास्तव में क्या अधिकार होने चाहिए?

बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है–

- बच्चों के हित, भेदभाव रहित जीवन और बच्चों के विचारों का सम्मान के सिद्धान्त पर सम्मेलन निर्देशित हो।
- यह परिवार के महत्व तथा ऐसे वातावरण के निर्माण पर बल देता है जो बच्चे के स्वस्थ विकास और उन्नति में सहायक हो।
- यह 18 वर्ष की उम्र तक के बालक एवं बालिकाओं दोनो पर समान रूप से लागू होता है। भले ही वह विवाहित हो और उसके अपने बच्चे भी हो।

इसमें सरकार को यह जिम्मेदारी दी गई है कि वह बच्चे के प्रति समाज में स्वच्छ और समान व्यवहार को सुनिश्चित करें।

यह समस्त विशेषताएँ नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक अधिकारो के चार प्रकारों की ओर ध्यान आकर्षित करती है, जो इस प्रकार है –

- सुरक्षा का अधिकार
- विकास का अधिकार
- जीने का अधिकार
- सहभागिता का अधिकार

सुरक्षा के अधिकार में सम्मिलित है–

- शोषण से सुरक्षा का अधिकार
- अपमान व दुर्व्यवहार से सुरक्षा का अधिकार
- अमानवीय या निम्न कोटि के व्यवहार से सुरक्षा का अधिकार
- उपेक्षा से मुक्ति का अधिकार
- आपातकाल एवं सशस्त्र संघर्ष जैसी विशेष परिस्थितियों में विकलांग आदि को विशेष सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त करने का अधिकार।

विकास के अधिकार में सम्मिलित है–

- शिक्षा का अधिकार
- प्रारंभिक अवस्था में देखभाल एवं विकास हेतु सहायता का अधिकार

अवकाश, मनोरंजन एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का अधिकार

- पोषण का अधिकार
- समुचित जीवन-स्तर प्राप्त करने का अधिकार
- नाम एवं राष्ट्रीयता पाने का अधिकार
- जीवन का अधिकार
- स्वास्थ्य का उच्चतम जरूरी मानक प्राप्त करने का अधिकार।

सहभागिता के अधिकार में सम्मिलित है–

- उपयुक्त सूचना प्राप्त करने का अधिकार
- विचार चेतना एवं धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार
- बच्चों को अपने विचार के लिए सम्मान पाने का अधिकार
- अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार

सभी अधिकार एक-दूसरे पर निर्भर तथा अविभाजित है।

8.6 सारांश (Summary) :

देश में निर्मित तथा अंतराष्ट्रीय स्तर पर बने जिन कानूनों को भारत में स्वीकार किया गया है, उसके अन्तर्गत निर्धारित मानक और अधिकारों को पाने का अधिकार उन सभी व्यक्तियों को है जिनकी उम्र 18 वर्ष से कम है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 24 के अनुसार 14 वर्ष की उम्र तक के बच्चों को किसी भी जोखिम वाले कार्य से सुरक्षा पाने का अधिकार है इसी प्रकार 6-14 वर्ष की आयु समूह वाले सभी बच्चों को अनिवार्य और निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार (अनुच्छेद-21ए) देता है। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी महासभा की 20 नवम्बर 1959 की बैठक में बच्चों के हित में एक घोषणा पत्र जारी किया। यही

घोषणा-पत्र तीन भागों में है। इसमें बच्चों की रक्षा, उनके विकास आदि बातों पर सहमति व्यक्त की गई है।

इस घोषणा में दुनिया के समस्त बच्चों के लिए कुछ बुनियादी अधिकारों की बात कही गई है, जिसका विवरण इस प्रकार है–

1. प्रत्येक बच्चे को जीने का अधिकार है।
2. उसे उचित देख-रेख और उचित खान-पान का अधिकार है।
3. बच्चों के व्यक्तिव के विकास में परिवार की अहम भूमिका होती है, इसलिए उसे परिवार में रहने का अधिकार प्राप्त है।
4. प्रत्येक बच्चे को स्वास्थ्य सुविधाएँ पाने का अधिकार है।
5. प्रत्येक बालक को अपनी बात कहने की स्वतंत्रता है।
6. उसे पढ़ने लिखने हेतु समान अवसर का अधिकार है।

अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि बाल-अधिकार पर चर्चा वर्तमान समय में एक विश्व स्तरीय विषय है जिसपर वैश्विक मंच पर प्रत्येक प्रजाति आकर अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहे है।

8.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise) :

1. बाल-अधिकार से क्या अभिप्राय है ? बाल-अधिकार की व्याख्या भारत के संदर्भ में करें।

   What is the meaning of child right ? Explain the child right in the context of India.

2. बाल-अधिकार के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका का वर्णन करें।

   Describe the role of U.N. in context of child right.

3. ''बाल-अधिकार प्रत्येक बाल की मूलभूत आवश्यकता है''। विवेचना करें।

   “Child right is the basic need of each child”. Discuss.

8.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings) :

1. शिक्षा का अधिकार एवं बिहार विद्यालय परीक्षा समिति: लॉ पब्लिशिंग हाउस, पटना ।
2. ममता महरोत्रा एवं महेश शर्मा (2014): शिक्षा का अधिकार प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली ।

❑ ❑ ❑

इकाई : 09 शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 : क्रियान्वयन संबंधी मुद्दे (Right to Education 2009 : Issues Related to Execution)

पाठ–संरचना (Lesson Structure)

9.0 उद्देश्य (Objectives)

9.1 परिचय (Introduction)

9.2 शिक्षा का अधिकार (Right to Education)

9.3 आर.टी.ई में उल्लिखित प्रावधान : (Provisions in R.T.E.)

9.4 शिक्षा का अधिकार 2009 : क्रियान्वयन संबंधी मुद्दे : (Right to Education 2009 : Issues Related to Execution)

9.5 सारांश (Summary)

9.6 अभ्यास हेतु प्रश्न (Questions for Exercise)

9.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

9.0 पाठ के उद्देश्य (Objectives of the lesson)

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन के उपरान्त पाठक निम्नलिखित तथ्यों को समझ सकेंगे :–

- शिक्षा का अधिकार जान सकेगें ।
- आर.टी.ई में उल्लिखित प्रावधान की विवेचना कर सकेंगे ।
- शिक्षा का अधिकार एवं क्रियान्वयन संबंधी मुद्दे – राज्य, केन्द्र सम्बद्ध सरकार एवं स्थानीय स्तर पर समझ सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों की जानकारी देना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

9.1 परिचय (Introduction) :

शिक्षा का अधिकार वर्तमान समय की आवश्यक माँग है यह छोटे बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा देने की बात कहता है । इस अधिनियम में बच्चों की शिक्षा के प्रति अध्यापकों, स्कूलों और सरकार आदि सभी के कर्त्तव्य सुनिश्चित कर दिए है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस कानून ने देश के बच्चों का साक्षर सुदृढ़ एवं अधिकार सम्पन्न बनाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। यद्यपि 'शिक्षा का अधिकार अधिनियम' संसद से पारित होकर कानून का रूप ले चुका है, किन्तु किसी भी कानून की सफलता समस्त देशवासियों की सामूहिक जिम्मेदारी होती है, फलस्वरूप यह आवश्यक है कि इस कार्य को सफल बनाने हेतु जनता एवं समस्त सरकार अपनी जिम्मेदारियों का वहन ईमानदारी पूर्वक करें।

9.2 शिक्षा का अधिकार (Right to Education) :

संविधान के 86वें संशोधन अधिनियम 2002 द्वारा 21(A) जोड़ा गया। अब यह अधिकार एक मौलिक अधिकार के रूप में जाना जाता है। यह प्रावधान करता है कि राज्य विधि बनाकर 6 से 14 वर्ष के सभी बालकों के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य है। इस अधिकार को व्यवहारिक रूप देने के लिए संसद में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 पारित किया, जो 1 अप्रैल 2010 से लागू हुआ। इस अधिनियम में 7 अध्याय तथा 38 खण्ड है।

इस अधिनियम के अंतर्गत 6-14 वर्ष के लगभग 22 करोड़ बच्चों में से 92 लाख (4.6%) बच्चे विद्यालय नहीं जा पाते है, जिनकी शिक्षा के लिए 1.71 लाख करोड़ रूपये की 5 वर्षों में आवश्यकता होगी, जिसमें से 25 हजार करोड़ रूपये वित्त आयोग राज्यों को देगा।

9.3 शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई.) में उल्लिखित प्रावधान (Provisions in R.T.E) :

(i) किसी पड़ोस के स्कूल में प्रारंभिक शिक्षा पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिए बच्चों का अधिकार।

(ii) यह स्पष्ट करता है कि 'अनिवार्य शिक्षा' का तात्पर्य छह से चौदह आयु समूह के प्रत्येक बच्चे को निःशुल्क प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने और अनिवार्य प्रवेश, उपस्थिति और प्रारंभिक शिक्षा को पूरा करने को सुनिश्चित करने के लिए उचित सरकार की बाध्यता से है। निःशुल्क का तात्पर्य यह है कि कोई भी बच्चा प्रारंभिक शिक्षा को जारी रखने और पूरा करने से रोकने वाली फीस या प्रभारों या व्ययों को अदा करने का उत्तरदायी नहीं होगा।

(iii) यह गैर-प्रवेश दिए गए बच्चों के लिए उचित आयु कक्षा में प्रवेश किए जाने का प्रावधान करता है।

(iv) यह निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने में उचित सरकारे, स्थानीय प्राधिकारी और अभिभावकों के कर्त्तव्यों तथा केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच वित्तीय और अन्य जिम्मेदारियों को विनिर्दिष्ट करता है।

(v) यह छात्र-शिक्षक अनुपात, भवन और अवसंरचना, स्कूल के कार्य दिवस, शिक्षक के कार्य के घंटों से संबंधित मानदण्डों और मानको को निर्धारित करता है।

(vi) यह उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति के लिए प्रावधान करता है।

(vii) यह (क) शारीरिक दंड और मानसिक उत्पीड़न, (ख) बच्चों के प्रवेश के लिए अनुवीक्षण प्रक्रियाएँ (ग) प्रति व्यक्ति शुल्क (घ) अध्यापकों द्वारा निजी टयूशन और (ङ) बिना मान्तया के स्कूलों को चलाना निषिद्ध करता है।

(viii) यह संविधान में प्रतिष्ठापित मूल्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम के विकास के लिए प्रावधान करता है और बच्चों के समग्र विकास, बच्चों के ज्ञान, संभाव्यता, प्रतिभा निखारने तथा बच्चों के साथ मित्रंवत्प्रणाली तथा विद्यार्थी केन्द्रित ज्ञान की प्रणाली के माध्यम से बच्चों को डर, चोट और चिंता से मुक्त बनाने को सुनिश्चित करेगा।

9.4 शिक्षा का अधिकार (2009): क्रियान्वयन संबंधी मुद्दे (Right of Education : Issues Related to Execution) :

शिक्षा का अधिकार अधिनियम किसी भी राज्य की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इस अधिनियम की सफलता राज्यों के ऊपर निर्भर करती है। इसलिए इस अधिनियम में कुछ जिम्मेदारियाँ सुनिश्चित की गई है।

9.4.1 राज्य की जिम्मेदारी (Responsibilites of State) :

(i) राज्य की यह जिम्मेदारी है कि इस अधिनियम के लागू होने के तीन साल की अवधि के भीतर प्रत्येक बच्चे को पड़ोस (निकटवर्ती इलाके) में एक स्कूल की उपलब्धता सुनिश्चित करें। यदि पड़ोस में स्कूल उपलब्ध न हो सके तो राज्य की जिम्मेदारी होगी कि वह बच्चों को निकटतम स्कूल तक का निःशुल्क परिवहन प्रदान करे या आवासीय स्कूल की व्यावस्था करें।

(ii) स्कूलों में नामांकन की निगरानी के लिए एक तंत्र बनाया जाए। जहाँ आवश्यक हो वहाँ सुधारात्मक उपाय लागू किए जाएँ ताकि प्रत्येक बच्चे को पूर्ण प्राथमिक शिक्षा मिले।

(iii) राज्य का उत्तरदायित्व है आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषायी, लैंगिक, शारीरिक या अन्य बाधाओं के कारण बच्चों को प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करने से न रोका जाए और सभी को गुणवत्ता परक शिक्षा मिल सके।

(iv) यह राज्य की जिम्मेदारी होगी कि इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के भीतर 7 से 9 वर्ष के सभी बच्चों का पड़ोस के विद्यालय में प्रवेश करा दे। जो बच्चे अधिक उम्र के है उनकी क्षमता के अनुसार बड़ी कक्षा में प्रवेश दिलाया जाए। यह कार्य अधिनियम के लागू होने के तीन वर्ष के भीतर हो जाए।

9.4.2 केन्द्र की जिम्मेदारी (Responsibilites of Central Goverment) :

निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना केन्द्र और राज्य सरकार दोनों की जिम्मेदारी है। केन्द्र सरकार की जिम्मेदारियाँ निम्नलिखित है :–

(i) राज्य को तय मद के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान करना।

(ii) एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम का प्रभावी ढाचा तैयार करना। शिक्षकों को उत्कृष्ट प्राथमिक शिक्षा हेतु गुणवत्ता आधारित प्रशिक्षण देना।

(iii) राज्य को आवश्यक तकनीकी, क्षमता निर्णयात्मक संसाधन व सहयोग उपलब्ध कराना।

(iv) अधिनियम द्वारा सुनिश्चित किए गए उपायों, कार्यकर्मो की जाँच करना तथा अनियमित्ता पाए जाने पर ठोस कदम उठाना।

9.4.3 संबद्ध सरकारी की जिम्मेदारी (Responsibilites of Associated Goverment) :

(i) निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान की जिम्मेदारियों के विषय में धारा 9 में परिभाषित केन्द्र सरकार की जिम्मेदारियों के अतिरिक्त समाप्त जिम्मेदारियाँ सम्बद्ध सरकार की होगी।

(ii) स्थानीय निकायों के साथ आपसी वार्त्तालाप के आधार पर अधिनियम के सफल कार्यान्वयन हेतु आर्थिक संसाधन प्राप्त करना।

(iii) प्रतिवर्ष यह सुनिश्चित करना कि किन-किन स्थानों पर कितने विद्यालयों की आवश्यकता है तथा इसके अतिरिक्त किन मूलभूत सुविधाओं की अनिवार्यता है।

(iv) आवश्कयता के अनुसार विद्यालय बनवाना तथा उसे प्रारम्भ करना।

9.4.4 स्थानीय निकायों की जिम्मेदारी (Responsibilites of local Bodies) :

शिक्षा का अधिकार अधिनियम स्थानीय निकायों की जिम्मेदारियों को भी सुनिश्चित करता है–

(i) अपने क्षेत्र में रहने वाले समस्त 14 आयु वर्ग के बच्चो का रिकार्ड रखना।

(ii) यह सुनिश्चित करना कि उस क्षेत्र के समस्त बच्चे विद्यालय जा रहे है अथवा नहीं।

(iii) नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने में यदि कोई समस्या आए तो अतिरिक्त विद्यालय, अध्यापक व अन्य सुविधाओं हेतु योजना तथा बजट तैयार करना।

(iv) प्रवासी परिवारों के बच्चो की शिक्षा हेतु विशेष कदम उठाना।

इन सब के अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार अधिनियम विद्यालयों, अध्यापकों हेतु भी जिम्मेदारियाँ सुनिश्चित करता है।

आर.टी.ई. कानून 9 अप्रैल, 2010 को भारत के राजपत्र में अधिसूचित होकर लागू हो गया है। यह अधिकार आरक्षित वर्ग के लिए विशिष्ट प्रावधानों के साथ बाल श्रमिक प्रवासी बच्चों, विशिष्ट आवश्यकता वाले बच्चों आदि सभी को एक मंच प्रदान करता है। इसके अंतर्गत एक स्कूल निगरानी समिति के गठन का प्रावधान है। यह कानून गुणवत्ता परक प्राथमिक शिक्षा की बात करता है। किन्तु इसका सुचारूपूर्ण क्रियान्वयन किसी चुनौती से कम नहीं है। सर्वप्रथम वित्तीय आवंटन की बात देखी जाए तो यह अधिनियम व्यक्त करता है कि राज्य सरकार व्यय की व्यवस्था करें । यदि यहाँ कोई वित्तीय कमी होगी तो उसे नागरिक, समाज, विकास एजेंसियाँ, कॉरपोरेट संस्थानों और देश के नागरिकों के समर्थन की आवश्कयता पर बल देता है। प्रत्येक राज्य की वित्तीय स्थिति में अन्तर होने के कारण आर.टी.ई के संचालन में समस्या आती है।

भारत सरकार ने कानून लागू तो कर दिया है लेकिन प्रदेशों में इस कानून का पालन होने में अभी कई साल और लग सकते हैं क्योंकि राज्यों में शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य पाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में न तो आधारभूत ढाँचा है और न ही आवश्यक सुविधाएँ व संसाधन।

अधिकांशतया देखा जाता है कि समाज में गरीबी के कारण बच्चे फैक्ट्री, दुकानों, में छोटी आयु में ही काम पर लग जाते हैं।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम के सफल संचालन में केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय निकायों की संयुक्त भागीदारी आवश्यक है किन्तु तीनों ही स्तरों पर अत्यधिक विषमता देखी जाती है। तीनों स्तरों पर समन्वय न होने के कारण पूर्व निर्धारित उद्‌देश्य की प्राप्ति में बाधा आती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा का अधिकार, अधिनियम शिक्षकों तथा अभिभावकों के उत्तरदायित्वों की भी बात करता है। इस संदर्भ में प्राय: पाया जाता है कि शिक्षक गाँव में जाकर शिक्षण कार्य नहीं करना चाहते हैं फलस्वरूप छात्र-शिक्षक अनुपात उपयुक्त नही रहता है और गुणवत्तापरक शिक्षा एक कोरी कल्पना बन कर रह जाती है। यह अधिनियम शिक्षको के प्रशिक्षण पर बल देता है जिसकी वर्तमान समय में अत्यधिक आवश्यकता है परन्तु प्रशिक्षण का नियमित रूप से चलना तथा शिक्षक का इसमे भाग लेना दोनों ही अवश्यक है।

यद्यपि शिक्षा का अधिकार सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा में प्रवेश दिला रहा है किन्तु अभी भी इस अधिकार को फल बनाने में सरकार के साथ-साथ समुदाय तथा परिवार के सहयोग की आवश्यकता है।

9.5 सारांश (Summary) :

नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल 2010 से देश में पूर्ण रूप से लागू हो गया है। इस अधिनियम में केन्द्र तथा राज्यों के लिए कानूनी बाध्यता है कि नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा

6 से लेकर 14 वर्ष के सभी बच्चों को सुलभ हो सके। यह अधिनियम गुणवत्तापरक शिक्षा की बात पर बल देता है जिसके लिए इस अधिनियम में राज्य, केन्द्र, समबद्ध सरकारों एवं स्थानीय निकायों की भूमिका सुनिश्चित की गई है किन्तु समस्त सरकारों के आपसी तालमेल सुचारू रूप से न होने कारण अधिनियम के क्रियान्वयन की राह में बाधाँए आ रही है, जैसे समय पर पाठ्य सामग्रियों का वितरण न होना, अभिभावक में बच्चों की शिक्षा को लेकर जागरूक न होना , शिक्षकों द्वारा बाद-केन्द्रित शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग न करना, स्थानीय निकायो के पास वित्त अभाव अधिनियम से संबंधी मॉनिटरिंग संस्थाओं में वैचारिक मतभेद, सामंजस्य की समस्या तथा जटिल कार्य पद्धति इत्यादि।

9.6 अभ्यास हेतु प्रश्न (Questions for Exercise) :

1. शिक्षा का अधिकार अधिनियम में उल्लिखित प्रावधानों का वर्णन कीजिए।

   Describe the mentioned provision in Right to education Act.

2. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में राज्य की भूमिका बताए।

   Mention the role of state in the execution of Right to Education Act.

4. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन में स्थानीय निकायों की जिम्मेदारियाँ बताएँ।

   Mention the responsibilities of local bodies in the execution of right to education act.

5. शिक्षा के अधिकार अधिनियम के क्रियान्वयन से संबंधित मुद्दे क्या है ? विवेचना करें।

   What are the issues related to the execution of Right to education act. Discuss.

9.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings) :

1. अवनीश, नगर 2009 : नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम
2. महरोत्रा, ममता: शिक्षा के साथ प्रयोग
3. नारायण प्रकाश : शिक्षा का अधिकार, नि:शुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा।

- Mhrd. gov.in/hi/rete-hindi
- https://mhrd.gov.in>rte
- https://en.m.wikipedia.org>wikl>right.

❒ ❒ ❒

इकाई : 10 जीवन कौशल शिक्षा
Life Skill Education

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

10.0 उद्देश्य (Objectives)

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

10.2 जीवन कौशल शिक्षा (Life Skill Education)

10.3 अवधारणा एवं महत्व (Concept and Importance)

10.4 मुख्य जीवन कौशल (Core Life Skills)

10.5 अधिगमकर्ता के जीवन कौशल के विकास में विद्यालय शिक्षक और समुदाय की भूमिका (Role of School, Teacher and Community for Developing Life Skills of Learners)

10.6 राष्ट्रीय कौशल (National Skill)

10.7 सारांश (Summary)

10.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

10.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

10.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप इस योग्य हो जाएगें कि :

- ❖ जीवन कौशल शिक्षा की परिभाषा व अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे ।
- ❖ जीवन कौशल शिक्षा की अवधारणा एवं महत्व की विवेचना कर सकेंगे ।
- ❖ विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चिन्हित मुख्य जीवन कौशल का वर्णन कर सकेंगे ।
- ❖ अधिगमकर्ता के जीवन कौशल के विकास में विद्यालय, शिक्षक और समुदाय की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे ।
- ❖ राष्ट्रीय कौशल के महत्व का विश्लेषण कर सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों की जानकारी देना ही इस पाठ का उद्देश्य हैं।

10.1 प्रस्तावना (Introduction)

जीवन कौशल शिक्षा नामक इस इकाई में बच्चों को जीवन से सम्बन्धित कुशलता व शिक्षा का जीवन में उपयोग एवं इसके अर्थ की जानकारी दी गई है । इस पाठ में जीवन कौशल की अवधारणा, परिभाषा एवं महत्व का विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया गया है । इसमें विश्व स्वास्थ्य संगठन के द्वारा चिन्हित सभी दस जीवन कौशल की चर्चा की गई है । अधिगमकर्ता के जीवन कौशल के विकास में विद्यालय की भूमिका का विश्लेषण भी इस पाठ में किया गया है । जीवन कौशल के विकास में समुदाय एवं शिक्षक की भूमिका की विवेचना इस पाठ की विशेषता है । आधुनिक समाज में बच्चों के सम्यक विकास के लिए बौद्धिक ज्ञान के साथ ही साथ इससे सम्बन्धित व्यवहारिक कुशलता भी सफलता हेतु अतिआवश्यक है ।

10.2 जीवन कौशल (Life Skill Education)

जीवन कौशल, अनुकूल तथा सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यताएँ हैं जो व्यक्तियों को दैनिक जीवन की माँगों और चुनौतियों से प्रभावी तरीके से निपटने के लिए सक्षम बनाती है । ये जीवन कौशल सीखे जा सकते हैं तथा उनमें सुधार भी किया जा सकता है । आग्रहिता, समय प्रबंधन, सविवेक चिंतन, संबंधों में सुधार, स्वयं की देखभाल के साथ-साथ ऐसी असहायक आदतों, जैसे - पूर्णतावादी होना, विलंबन या टालना इत्यादि से मुक्ति, कुछ ऐसे जीवन कौशल हैं जिनसे जीवन की चुनौतियों का सामना करने में मदद मिलती है ।

मनुष्य होना अपने आप में जीवन कौशल शिक्षा की आवश्यकता को जन्म देता है । अन्य जीव अपनी नैसर्गिक क्षमताओं को स्वत: ही पा लेते हैं, पर जो मानव होने का मतलब है - हमारी **भाषा प्रयोग करने की क्षमता, तर्क करने की क्षमता, स्वायत्त होने की क्षमता** आदि । क्षमताएँ होना यह सुनिश्चित नहीं करता कि सभी मानव इन विशिष्ट गुणों से परिपूर्ण होंगे । हमें मानव होना पड़ता है । हमें अपनी क्षमताओं का प्रयोग करना सीखना पड़ता है । वास्तव में मानव शिशु इतने अपरिपक्व होते हैं कि उन्हें खुद के भरोसे छोड़ दिया जाये और दूसरों का मार्गदर्शन और सहायता न मिले तो वे उन मूलभूत क्षमताओं को भी हासिल नहीं कर पायेंगे जो उनके भौतिक अस्तित्व के लिए आवश्यक है इसलिए हमें जरूरत होती है - जीवन कौशल शिक्षा की ।

10.3 अवधारणा एवं महत्व (Concept and Importance)

जीवन कौशल शिक्षा जो हमारी मानव बनने में मदद करे । जो हमारे सामाजिक कौशल (आत्मज्ञान, प्रभावी सम्प्रेषण आदि), सोचने के कौशल (रचनात्मक सोच, निर्णय लेने की क्षमता, समस्या निराकरण की क्षमता आदि) और भावात्मक कौशलों (भावनाओं में संतुलन, तनाव से पार पाना), को परिपक्व करने में मदद करें ।

क्या हमारी आधुनिक शिक्षा, हमारे स्कूल हमें मानव होने की ओर ले जा रहे हैं? जीवन कौशल शिक्षा अंतर्निहित है शिक्षा की व्यापकता में जीवन कौशल शिक्षा को शिक्षा से अलग देखना आश्चर्यजनक व मूर्खतापूर्ण होगा । वर्त्तमान में सीसीई में इन्हीं कौशलों को रेखांकित कर इन पर ध्यान दिलाया गया है । आज शिक्षा व्यक्ति के किसी एक पहलू पर ध्यान केन्द्रित न करते हुए समग्र व्यक्ति को शिक्षित करने वाली हो गई है ।

जीवन कौशल शिक्षा से सीसीई (CCE) कुछ अन्य मुद्दों का भी समाधान करने का प्रयास करता है । यह बच्चों के ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में सहायता करते हैं । बच्चे सीखने के आनंद को प्राप्त करने के लिए सीखें न कि पूर्व की तरह परीक्षा में सफल होने के लिए । शिक्षक और बच्चों के रिश्ते को एक नई दिशा प्रदान करते हैं । बच्चों को यत्नपूर्वक दी गई शिक्षा व साथ रहकर मिलने वाली शिक्षा में स्पष्ट अंतर करते हैं। बाल केन्द्रित शिक्षा ऐसी शिक्षा जो बच्चों को उनके अनुभवों से सीखने में मदद करे ।

नवीन पाठ्य पुस्तकें भी बच्चों के जीवन कौशलों को विकसित करने हेतु परिवर्तित की गयी है । ये बच्चों की रचनात्मकता व जिज्ञासा को जीवित रखते हुए उन्हें पुस्तकों से स्वतंत्र अपने परिवेश से जुड़ते हुए ज्ञान के निर्माण की स्वाभाविक प्रक्रिया की ओर ले जाती है । कौशलों से प्राप्त होने वाले ज्ञान के बारे में यह सत्य है कि यदि हम बच्चों को किन्हीं कौशलों में निपुण करना चाहते हैं तो यह काम भी बिना उस काम में बच्चों को संलग्न किए सिखाना संभव नहीं है । इन कार्यों पर एक बार महारत की उम्मीद करना भी नाइंसाफी है । जीवन कौशल शिक्षा स्कूल शिक्षा के मुख्य उद्देश्य को साधती है । बच्चों को उनके जीवन के लिए तैयार करना। यह तभी संभव हो सकता है जब बच्चा प्राथमिक स्तर से ही अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ आगे बढ़ता रहे ।

हम सभी अपने जीवनकाल में किशोरावस्था का अनुभव करते हैं । बतौर एक युवा हम अपनी समस्याओं, दुविधाएँ, तनाव तथा उत्तेजना को याद कर सकते हैं । आजकल के किशोर एवं किशोरियाँ अधिक जटिल संसार में रह रहे हैं । जिसके परिणामस्वरूप तनाव बढ़ गया है । यह सीधे तौर पर उनके स्वास्थ्य से संबंधित है । जीवन कौशल का ज्ञान तथा उनका उपयोग किशोरों को तनाव से निपटने तथा जीवन में मौजूद चुनौतियों से निपटने में प्रभावी हो सकता है ।

जीवन कौशल का दृष्टिकोण न केवल ज्ञान बाँटने पर लक्षित है अपितु इसका लक्ष्य व्यवहार को बदलना तथा अंर्तव्यक्तीय कौशल को विकसित करना है । जिससे युवाओं में बेहतर स्वस्थ चयन करने, नकारात्मक दबावों का विरोध करना तथा जोखिमपूर्ण व्यवहार से बचने के उत्तरदायित्व की क्षमता को बढ़ाया जा सके । पिछले कुछ वर्षों के दौरान शिक्षण कार्यक्रम ने जीवन कौशल के विकास की ओर ध्यान केंद्रित किया है । जिसने विश्व भर में किशोरों और युवाओं के प्रजनन और यौन स्वास्थ्य के सुधार की ओर योगदान किया है ।

जीवन कौशल की शिक्षा युवाओं का अधिकार है, क्योंकि यह उन्हें ज्ञान देती है और उन्हें स्वयं को शोषण, अवांछित गर्भधारण, यौन संक्रमण तथा एचआईवी/एड्स से बचाव करने हेतु उचित कौशल प्राप्त करने योग्य बनाती है ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने जीवन कौशल की अवधारणा को परिभाषित करते हुए कहा : "अनुकूलित व सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यताएँ जो व्यक्ति को दैनदिनी जरूरतों एवं चुनौतियों से प्रभावी तरीके से निपटने में मदद करता है ।"

World Health Organization (WHO) in 1999 defined life skills as, "the abilities for adaptive and positive behavior that enable individuals to deal effectively with demands and challenges of everyday life."

जीवन कौशल शिक्षा व्यक्ति को पूर्णत: शरीरिक मानसिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ व सक्षम अवस्था प्राप्त करने के विविध उपायों की खोज में मदद करता है । अत: यह सिर्फ सूचना प्रदान करने की प्रक्रिया नहीं बल्कि कुशलता विकास की प्रक्रिया द्वारा परिवार समुदाय व कार्य समूह में सफलता पूर्वक जीने एवं अपनी विविध भूमिकाओं को कुशलता पूर्वक निर्वहन करने में व्यक्ति की मदद करता है ।

जीवन कौशल का महत्व : आज के इस बदलते परिपेक्ष्य में रूढ़ीवादी शिक्षा पद्धती ने अपना स्थान खो दिया है, शिक्षा क्षेत्र में तकनीक का समावेश हो गया है । आज जहाँ एक ओर विद्यार्थी कहीं ज्यादा कुशल एवं बुद्धिमान है वहीं दूसरी ओर निरंतर ऐसी खबरें भी सामने आती हैं जहाँ हम देखते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे तनाव ग्रस्त हो गए हैं । यह कहना है एक शिक्षाविद् जगदीप सिंह मोर का । उन्होंने कहा कि संयुक्त राष्ट्र के मार्गदर्शन

पर शिक्षा के क्षेत्र में जीवन कौशल को अपनाया गया है । दस महत्वपूर्ण जीवन कौशल रूपायन इस प्रकार हैं ।

(i)	चिंतन कौशल	(ii)	सामाजिक कौशल
(iii)	भाव प्रधान चिंतन	(iv)	सृजनशील चिंतन
(v)	तनाव से संघर्ष	(vi)	प्रभावशाली वार्तालाप
(vii)	समस्या निदान	(viii)	निर्णय क्षमता
(ix)	रचनात्मक चिंतन	(x)	आत्म ज्ञान

जगदीप सिंह ने बताया कि एक अच्छा शिक्षक वही है जो सिर्फ अपने विषय वस्तु की बेड़िया में न बँधा होकर विषय ज्ञान एवं विषय वस्तु को विद्यार्थी के सहज उपयोग का साधन बना दें । जब ऐसी खबरें आती हैं कि किसी विद्यार्थी ने तनाव में आकर आत्महत्या कर ली तब मेरा मन सिहर उठता है । कहीं-न-कहीं इसके जिम्मेदार समाज के साथ-साथ वह शिक्षक भी हैं जो बाल्यकाल में उस विद्यार्थी की नींव मजबूत न कर पाए। नींव से मेरा अभिप्राय शैक्षिक उपलब्धि से नहीं बल्कि सह पाठ्यक्रम गतिविधियों से हैं । हमें बचपन से ही विद्यार्थियों को एक अच्छा जीवन जीने की विधाएँ सिखानी होंगी । बाल्यकाल से ही विद्यार्थी को आत्मज्ञान का बोध एवं उचित सामाजिक कौशल सिखाना होगा । हर एक बच्चे को खास समझना होगा एवं प्रभावशाली वार्तालाप तथा निर्णय क्षमता जैसे मूल तत्वों को विद्यार्थी जीवन में ढालना होगा । यदि प्रत्येक शिक्षक इन दस जीवन कौशल शिक्षा रूपों को विद्यार्थी के जीवन में समाविष्ट करवा दें तो वास्तव में विद्यार्थी अपने आपको देश एवं समाज का चरित्र निर्माण के स्तंभ के रूप में स्थापित करेंगे और खुशी सूचकांक व मानव विकास सूचकांक में भी भारत का स्थान बेहतर व उन्नत होगा ।

यहाँ यह समझना महत्वपूर्ण है कि जीवन कौशल किस प्रकार एक स्वस्थ एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत किशोर की पहचान स्थापित करता है -

1. सामाजिक एवं संवेदात्मक कौशल के स्वस्थ विकास द्वारा जीवन कौशल शिक्षा एक किशोर की मदद सफलता पूर्वक बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक पहुँचने में करता है ।
2. किशोरावस्था में स्वयं की पहचान निर्मित करने में यह सामाजिक सक्षमता के विकास एवं समस्या समाधान कौशल के द्वारा मदद करता है ।
3. समस्यात्मक व्यवहार के समय यह मध्यस्थता की भूमिका द्वारा परिस्थितियों का मूल्यांकन उसके गुण-दोष के आधार पर करता है ।
4. यह एक ऐसे स्वस्थ सामाजिक प्रतिमान को बढ़ाता है जिससे प्रभावित किशोर परिवार और विद्यालय में स्वस्थ वातावरण का निर्माण करता है ।
5. यह किशोरों को दुर्व्यसन व मादक द्रव्य सेवन से सम्बंधित गलत अवधारणा एवं गलत संवादों व सुनी-सुनाई बातों से सुरक्षित रखता है ।
6. यह मादक द्रव्य व्यसन से बचाता है ।
7. यह क्रोध पर नियंत्रण एवं सकारात्मक आत्मसम्मान के विकास में सहायक है ।

10.4 मुख्य जीवन कौशल (Core Life Skill)

जीवन एक सतत् और विलक्षण प्रक्रिया है, जिसमे नित नये आयाम जुड़ते रहते हैं । इस व्यापक विश्व में एक ही विचार, वस्तु अथवा घटना किसी समय या स्थान विशेष पर एक व्यक्ति के लिए ग्राह्य तो किसी

अन्य के लिए त्याज्य रूप में होती है । किसी के लिए जिस वस्तु की प्राप्ति जीवन का चरम उद्देश्य हो सकती है, वही वस्तु अन्य के लिए तिनके के समान त्याज्य हो जाती है । एक स्थिति में जो हिंसा है, वहीं दूसरी स्थिति में सबसे बड़ा जीवन मूल्य स्वीकार की जाती है । परिवर्तनशील इस जगत् में न कोई विचार या वस्तु अच्छी या बुरी है और न कोई ग्राह्य या त्याज्य । सबकुछ समय और परिस्थिति के अनुसार श्रेष्ठ और हेय समझा जाता है ।

इन परिस्थितियों के बीच स्वयं को शारीरिक और मानसिक रूप से सक्षम बनाना तथा जीवन को उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ जीना कौशलसाध्य है । स्वयं की शक्तियों और कमजोरियों की पहचान करते हुए आसपास के व्यक्तियों और वस्तुओं के साथ स्वयं का अनुकूल तादात्म्य बना पाना जीवन की सबसे बड़ी कसौटी है । इस कसौटी पर वे ही खरे उतर पाते हैं, जिन्होंने आत्म-प्रबन्धन के साथ-साथ जीवन-कौशल को सीखा है और उसको अपने आचरण में उतारा है । हम प्राय: देखते हैं कि कुछ लोग सामान्य परिस्थितियों में थोड़ा सा भी विचलन होने पर घबरा जाते हैं । वहीं कुछ लोग असामान्य परिस्थितियों में भी ऐसे सहज व्यवहार करते हैं जैसे सबकुछ सामान्य सा हो । इसके पीछे कौशल है - असामान्य को भी सामान्य या विशेष बना लेने का कौशल ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी जीवन कौशल एवं आत्म-प्रबन्धन की आवश्यकता को स्वीकार किया है और गहन अध्ययन के बाद मुख्यत: दस कौशल स्वीकार किये हैं, जो जीवन को सहज और सुचारू बनाने के लिए आधारभूत हैं -

1. आत्म जागरूकता
2. तदानुभूति
3. समीक्षात्मक विचारशीलता
4. निर्णयात्मक विचारशीलता
5. रचनात्मक विचारशीलता
6. समस्या समाधानात्मक दृष्टि
7. प्रभावी संवाद
8. अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध
9. तनावमुक्ति कौशल
10. संवेदनात्मक कौशल

10.5 अधिगमकर्ता के जीवन कौशल के विकास में विद्यालय शिक्षक और समुदाय की भूमिका (Role of School, Teacher and Community for Developing Life Skills of Learners)

जीवन कौशल के विकास में औपचारिक अभिकरण के रूप में विद्यालय की भूमिका को प्रसिद्ध शिक्षाविद् **जॉन डीवी** के शब्दों में इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है - "विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है, जहाँ बालक के वांछित विकास की दृष्टि से, उसे विशिष्ट क्रियाओं तथा व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है ।

आधुनिक युग में विद्यालय देश और समाज का उत्थान बच्चों के जीवन कौशल के विकास के माध्यम

से किस प्रकार कर रहे हैं यह बात शिक्षाविद् **एस0 बालाकृष्णन जोशी** के कथन से स्पष्ट हो जाता है – "किसी राष्ट्र की प्रगति का निर्णय उसकी विधानसभा, न्यायालय और कारखानों से नहीं बल्कि विद्यालय से होता है।"

वर्तमान समय में जीवन कौशल शिक्षा के विकास में विद्यालय की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के द्वारा समझा जा सकता है –

1. **शिक्षित नागरिकों का निर्माण (Development of Educated Citizen) :** विद्यालय का एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है सभ्य व शिक्षित नागरिक का निर्माण करना है । जो अपने कर्त्तव्य और अधिकारों से अवगत हो तथा सभ्य नागरिक की सभी कुशलताओं को अपने कार्य व्यवहार में प्रदर्शित करते हों ।

2. **व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास (Harmonius Development of Personality) :** विद्यालय बालकों एवं किशोरों में ऐसा गतिशील और संतुलित मस्तिष्क की रचना में महती भूमिका निभाता है ताकि समाज के सभी क्षेत्रों के विकास हेतु कुशल प्रतिभा की उपलब्धता हो सके जो हरेक परिस्थितियों का सामना पूर्ण कुशलता के साथ करे । बच्चों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्क कौशल के विकास का बीजारोपण का सर्वाधिक उर्वर भूमि की उपलब्धता वर्तमान समय में विद्यालय में ही संभव है ।

3. **विशाल सांस्कृतिक विरासत का हस्तांतरण (Transmission of Extensive Cultural Heritage) :** सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, सुधार एवं हस्तांतरण वर्तमान समय में विद्यालय के द्वारा बच्चों में उचित ज्ञान, अभिवृति व कुशलता के द्वारा बहुत ही सुगमता व सरलता के साथ किया जा सकता है जो भावी पीढ़ी के विकास व निर्माण में निःसंदेह एक क्रांतिकारी कदम हो सकता है ।

4. **बहुमुखी सांस्कृतिक चेतना का विकास (Development of Cultural Pluralism) :** विद्यालय वह स्थान है जहाँ विभिन्न परिवारों, सम्प्रदायों तथा संस्कृतियों से बालक शिक्षा प्राप्त करने आते हैं । इस प्रकार के परिवेश में साथ रहते हुए बालकों में स्वतः ही सामाजिकता, शिष्टाचार, सहानुभूति, निष्पक्षता तथा सहयोग की भावना व कुशलता का विकास होता है । साथ ही साथ विविध प्रकार के सांस्कृतिक गुणों को सीखने व समझने का अवसर यहाँ स्वतः प्राप्त होता है जिससे बहुमुखी संस्कृति से युक्त समाज के निर्माण में सहयोग प्राप्त होता है ।

5. **समाज की निरंतरता का विकास (Continuous Development of Society) :** सामाजिक वातावरण के रूप में विद्यालय एक ऐसी संस्था है जिसके द्वारा समाज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए निरंतर विकसित होता है । विद्यालय सामाजिक परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करता है एवं साथ ही साथ अधिकतम व श्रेष्ठ लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु उचित ज्ञान व कौशल के माध्यम से उनमें सुधार भी करता है।

6. **विशिष्ट वातावरण की व्यवस्था (Provision of Special Environment) :** विद्यालय एक ऐसे विशिष्ट व नियमित वातावरण का निर्माण करता है ताकि बालकों में चारित्रिक, नैतिक व मूल्यपूरक गुणों तथा कुशलताओं का स्वतः ही विकास होता रहता है ।

जीवन कौशल शिक्षा के विकास में शिक्षक की भूमिका :

जीवन कौशल के विकास में शिक्षक की भूमिका अत्यंत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि शिक्षक बालक और समाज के मध्य एक ऐसी कड़ी है जो बालकों के कोमल मन मस्तिष्क को एक सुन्दर वातावरण प्रदान कर उचित व्यवहार द्वारा ज्ञान और कौशल का प्रदर्शन उसकी जिज्ञासा व आवश्यकता की संतुष्टि समाज के अनुरूप

कर बालमन को ढलता है ताकि वह बालक अपनी व समाज की जरूरतों, आवश्यकताओं तथा चुनौतियों का समाधान सरलता से व सुगमता से प्राप्त करें ।

शिक्षक बच्चों के लिए एक आदर्श होते हैं । बच्चे शिक्षक के प्रत्येक क्रियाकलाप से प्रभावित होता है । अतः शिक्षकों को विचार व व्यवहार का प्रदर्शन बहुत सावधानी एवं सजगता के साथ करना चाहिए । इसके लिए शिक्षकों में निम्न कुशलताओं एवं गुणों का होना आवश्यक है -

- विषय का ज्ञान
- बौधिक जिज्ञासा
- संयम
- आत्मविश्वास
- सहानुभूति
- सफलता
- योजनाकार
- जागरूकता
- परामर्शदाता
- परिपक्वता
- सामुदायिक भागीदारी
- संगठन
- दूरदर्शिता
- संदर्भ
- लक्ष्य
- उत्सुकता

शिक्षकों का अहम ध्येय युवा मस्तिष्कों को तेजस्वी बनाना है । तेजस्वी युवा धरती पर, धरती के नीचे और ऊपर आसमान में सबसे सशक्त संसाधन है । शिक्षक की भूमिका उस सीढ़ी जैसी है, जिसके जरिये लोग जीवन की ऊँचाईयों को छूते हैं लेकिन सीढ़ी वहीं की वहीं रहती है । हमारे समाज में और एक बच्चे के जीवन में, एक शिक्षक का स्थान माता-पिता के बाद, लेकिन ईश्वर से पहले आता है । माता-पिता, गुरू और फिर ईश्वर। ऐसी महत्ता, मेरी जानकारी में, दुनिया में किसी और पेशे की नहीं है कि वह समाज के लिए शिक्षक से बढ़कर महत्वपूर्ण हो ।

शिक्षक, खास कर स्कूली शिक्षक के सामने व्यक्ति के जीवन को संवारने की भारी जिम्मेदारी होती है। बचपन ही वह आधारशिला है जिस पर जीवन की इमारत खड़ी होती है । जैसा बीज बचपन में बोया जाता है वैसा ही जीवन के वृक्ष में फल लगता है । इसलिए बचपन में दी जाने वाली शिक्षा कॉलेज या यूनिवर्सिटी में दी जाने वाली शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण होती है ।

शिक्षक का ध्येय बच्चों का चरित्र निर्माण करना तथा ऐसे मूल्यों को रोपना होना चाहिए जिससे कि उनके सीखने की क्षमता में वृद्धि हो । वे उनमें वह आत्मविश्वास पैदा करें कि छात्र कल्पनशील और सृजनशील बन सके । इस रूप में छात्रों का विकास ही उन्हें भविष्य की चुनौतियों का सामना करते हुए प्रतिस्पर्द्धा में उतारेगा। सामान्य प्रक्रिया में शिक्षक कुछेक सर्वोत्तम परिणाम देने वाले छात्रों की ओर आकर्षित होते हैं तथा और अधिक सफलता प्राप्त करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते रहते हैं । इसके विपरित एक शिक्षक की अहम भूमिका यह है कि वह उन विद्यार्थियों की ओर ध्यान केन्द्रित करे जो पढ़ने में कमजोर हैं तथा उनमें बेहतर समझदारी एवं सीखने की प्रवृत्ति विकसित करने का प्रयास करे । ऐसा शिक्षक ही वास्तविक गुरू होता है ।

शिक्षक के गुण : महान शिक्षक एवं भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन शिक्षकों को सलाह देते थे कि - "हमें सतत् बौद्धिक निष्ठा एवं सार्वभौम करूणा की खोज में रहना चाहिए । ये दोनों गुण किसी सच्चे शिक्षक की पहचान है ।" एक शिक्षक में अपने पेशे के प्रति प्रतिबद्धता होनी चाहिए । शिक्षक को जीवन भर अध्ययन करते रहना चाहिए । उसे शिक्षण और बच्चों से प्रेम होना चाहिए । उसे न सिर्फ विषय की सैद्धान्तिक बातें पढ़नी चाहिए बल्कि छात्रों में हमारी महान सभ्यता की विरासत और सामाजिक मूल्यों की

जमीन भी तैयार करनी चाहिए । आधुनिक प्रौद्योगिकी की सहायता से शिक्षक छात्रों का ऐसा विकास करें कि वे बिना किसी शिक्षक की सहायता लिए स्वयं सीखने में सक्षम हो सकें । ज्ञान प्राप्ति के लिए चिंतन एवं कल्पना की स्वतंत्रता आवश्यक है और इसके लिए शिक्षक को उपयुक्त माहौल का निर्माण करना चाहिए ।

शिक्षक रोल माडल होता है । वह न सिर्फ हमें ज्ञान देता है बल्कि हमारे जीवन को संवारते समय बच्चों के लिए महान सपने और उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ते हैं । दूसरी बात यह कि शिक्षा एवं ज्ञानार्जन की पूरी प्रक्रिया का परिणाम यह होना चाहिए कि व्यक्ति में पेशेवर क्षमता एवं जीवन कौशल का विकास हो और उसमें इस आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति का उदय हो कि दृढ़तापूर्वक सारी बाधाओं को पार कर एक रूप रेखा, एक उत्पाद प्रणाली का विकास कर सके ।

जीवन कौशल शिक्षा के विकास में समुदाय की भूमिका : समुदाय बालक की शिक्षा का एक महत्वपूर्ण, सक्रिय और अनौपचारिक साधन है । कोई भी समुदाय यदि यह चाहता है कि उसके नवयुवक अपने समुदाय की भली प्रकार सेवा करे तो उसे नवयुवकों के उचित विकास हेतु बौद्धिक ज्ञान के साथ ही साथ जीवन कौशल शिक्षा से भी भलीभाँति अवगत कराने का अवसर प्रदान करना चाहिए । इस दृष्टि से समुदाय को आधुनिक समाज की जरूरतों के अनुरूप बालकों में निम्नलिखित गुणों के विकास हेतु कार्य करना चाहिए :-

- **व्यापक दृष्टिकोण (Wider Attitude) :** समुदाय का दृष्टिकोण विस्तृत और व्यापक होना चाहिए । जिससे उचित सामाजिकता एवं सहयोग की भावना का विकास बालकों में हो ताकि सभ्य और सौहार्दपूर्ण समाज का निर्माण संभव हो सके ।
- **शैक्षिक वातावरण (Educational Environment) :** बच्चे कैसे होंगे यह किसी समुदाय या समाज के वातावरण पर निर्भर करता है । बच्चों की मनोवृत्ति, क्रियाकलाप एवं उनके विकास में वातावरण के प्रभाव को प्रकृतिवादी दर्शन में स्पष्ट किया गया है । सकारात्मक जीवन कौशल का विकास उचित शैक्षिक वातावरण में ही संभव है ।
- **व्यक्तित्व का अधिकतम विकास (Maximum Development of Personality) :** प्रत्येक बालक की क्षमताएँ, रूचियाँ तथा विचार भिन्न-भिन्न होती है । इस व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुरूप प्रत्येक बालक को अपने व्यक्तित्व का अधिकतम विकास का अवसर एक सभ्य समाज एवं समुदाय में ही संभव है। समाज की विविधताओं एवं विषमताओं का प्रभाव बालक के ज्ञान, कौशल एवं अभिवृति पर भी स्पष्ट रूप से पड़ता है।
- **आलोचनात्मक शक्तिओं का विकास (Development of Critical Power) :** प्रत्येक समुदाय की अपनी एक संस्कृति होती है । बच्चों को सिर्फ अपनी संस्कृति का ज्ञान देना उसके आलोचनात्मक शक्ति में कमी लाता है । अत: बच्चों को सभी संस्कृतियों का ज्ञान देना चाहिए और यह एक सभ्य समाज में ही संभव है ।
- **शिक्षा बालक की आवश्यकता तथा माँग के अनुसार (Education According to Need and Demand of the Child) :** समुदाय का यह परम कर्त्तव्य है कि बालक की शिक्षा ऐसी हो जिससे बालक की आवश्यकता की पूर्ति के साथ ही साथ समुदाय की भी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम बनायें। यह कार्य समुदाय बच्चों को ज्ञान और कौशल अर्जन के अवसर उपलब्धता द्वारा सुनिश्चित करता है।

10.6 राष्ट्रीय कौशल (National Skill)

राष्ट्रीय कौशल की पहचान उस व्यक्ति में निहित कुछ खास गुणों के आधार पर किया जा सकता है ।

यह एक ऐसी कुशलता है जो शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत व्यवहार व सामुदायिक व्यवहार में परिलक्षित होता है । यह कुशलता व व्यवहार किसी भी सभ्य व प्रगतिशील राष्ट्र की पूँजी होती है जो राष्ट्र को सभी क्षेत्रों में प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है । राष्ट्रीय कौशल को निम्नलिखित रूपों में समझा जा सकता है :-

- **एकता की भावना :** किसी भी राष्ट्र की अस्मिता और अक्षुण्णता तभी तक विद्यमान रहती है जब तक उस राष्ट्र, राज्य में रहने वाले सभी लोगों के बीच भाईचारा और 'हम' की भावना बरकरार रहती है । यह गुण और कुशलता सभी लोगों में उपस्थित हो तो उस राष्ट्र के अस्तित्व को कभी खतरा नहीं होगा।
- **भावनात्मक समाकलन :** भावनात्मक रूप में एक निश्चित क्षेत्र में निवास करने वाले सभी लोगों में जुड़ाव व एकात्मकता का भाव भी एक प्रकार का राष्ट्रीय कौशल है । इस प्रकार का लगाव के कई आधार हो सकते हैं यथा सांस्कृतिक एकात्मकता, एक शासन व्यवस्था, धार्मिक एकता, एक इतिहास, एक प्रजाति आदि । इन आधारों पर कोई विशाल जनसमूह अगर 'हम' की भावना का प्रदर्शन करता है तो यह उस राष्ट्र, राज्य की विशिष्टता व कुशलता का परिचायक है ।
- **सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव :** किसी भी राष्ट्र की अवधारणा के साथ संस्कृति की अवधारणा अभिन्न रूप से सन्निहित होती है । संस्कृति के अभाव में राष्ट्र की परिकल्पना संभव नहीं होती है । इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि राज्य, राष्ट्र विशेष के निवासियों में सांस्कृतिक विरासत के प्रति लगाव का होना जरूरी है और यह भी एक राष्ट्रीय कुशलता के रूप में अपनी पहचान स्थापित करता है ।
- **नागरिकता के गुणों का विकास :** राष्ट्र, राज्य के सभी नागरिकों का कुछ संविधान प्रदत्त कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं एवं इसके प्रति जागरूकता सभी निवासियों में होनी आवश्यक है । इन्हीं गुणों के आधार पर किसी राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है । नागरिकता से संबंधित कौशल भी राष्ट्रीय कौशल की श्रेणी में रखी जा सकती है ।
- **राष्ट्रीयता की भावना :** अपने देश के प्रति देशभक्ति का भाव, राष्ट्रीय धरोहरों के प्रति सम्मान, देश हित को प्राथमिकता और देश के प्रति स्वाभिमान का यथासमय प्रदर्शन राष्ट्रीयता की भावना को दिखलाता है। यह गुण प्रत्येक देशवासियों में होना जरूरी है । यह भी अपने आप में राष्ट्रीय कुशलता का परिचायक है ।
- **योग्य नागरिकों का निर्माण :** किसी भी देश के प्रगति का सूचकांक का आंकलन उस देश के मानव विकास सूचकांक के द्वारा वर्त्तमान दौड़ में किया जाता है । अत: प्रत्येक देश व समाज का कर्त्तव्य है कि देश के प्रगति के विविध क्षेत्रों के लिए योग्य एवं कुशल नागरिकों के सृजन के उचित अवसर की उपलब्धता सुनिश्चित हो क्योंकि यही कुशल नागरिक राष्ट्रीय विकास की धुरी साबित होते हैं । इस तथ्य का प्रमाण मानवीय विकास के सभी क्षेत्र के अभिजन को देख कर मिलता है ।
- **अंतर्राष्ट्रीय सहयोग :** वर्त्तमान समय में वैश्विक संदर्भों के आलोक में उदारीकरण व वैश्वीकरण का प्रभाव से कोई देश अछूता नहीं है । अत: इस दौड़ में राष्ट्र नीति का निर्धारण किसी देश के लिए बिना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के संभव नहीं है । 'बसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा वर्त्तमान समय की सर्वाधिक आवश्यक आश्यकता के तौर पर स्थापित होती जा रही है और यह सम्बहनीय विकास की आवश्यक शर्त्त भी है । अत: यह कौशल या गुण भी राष्ट्रीय कौशल के रूप में अपनी पहचान स्थापित करता है ।
- **पर्यावरण और प्रकृति के साथ सामंजस्य :** उदारीकरण व वैश्वीकरण के दुष्प्रभाव ने वर्त्तमान समय में

किसी भी देश के विकास में पर्यावरण की अवहेलना दिखाई देती है । विज्ञानप व तकनीक का अविवेकपूर्ण प्रयोग मानव समाज व राष्ट्र के भविष्य के लिए अच्छा नहीं है । अतः सम्बहनीय विकास के साथ ही साथ **'जीओ और जीने दो'** की अवधारणा को फलीभूत करने की आवश्यकता है।

10.7 सारांश (Summary)

जीवन कौशल, अनुकूली तथा सकारात्मक व्यवहार की वे योग्यताएँ हैं जो व्यक्तियों को दैनिक जीवन की माँगों और चुनौतियों से प्रभावी तरीके से निपटने के लिए सक्षम बनाती है । जीवन कौशल शिक्षा व्यक्ति को पूर्णतः शरीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ्य व सक्षम अवस्था प्राप्त करने के विविध उपायों की खोज में मदद करता है । अतः यह सिर्फ सूचना प्रदान करने की प्रक्रिया नहीं बल्कि कुशलता विकास की प्रक्रिया द्वारा परिवार समुदाय व कार्य समूह में सफलतापूर्वक जीने एवं अपनी भूमिकाओं को कुशलता पूर्वक निर्वहन करने में व्यक्ति की मदद करता है । स्वयं की शक्तियों और कमजोरियों की पहचान करते हुए आसपास के व्यक्तियों और वस्तुओं के साथ स्वयं का अनुकूल तादात्म्य बना पाना जीवन कि सबसे बड़ी कसौटी है । इस कसौटी पर वे ही खरे उतर पाते हैं जिन्होंने आत्म-प्रबन्धन के साथ-साथ जीवन-कौशल को सीखा है । विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी जीवन कौशल एवं आत्म-प्रबन्धन की आवश्यकता को स्वीकार किया है और गहन अध्ययन के बाद मुख्यतः दस कौशल स्वीकार किये हैं । समुदाय का यह परम कर्त्तव्य है कि समुदाय बच्चों को ज्ञान और कौशल अर्जन के अवसर उपलब्धता द्वारा अपनी भूमिका सुनिश्चित करते हैं । शिक्षक का ध्येय बच्चों का चरित्र निर्माण करना तथा ऐसे मूल्यों और कुशलताओं को रोपना है । जिसमें कि उनके सीखने की क्षमता में वृद्धि हो । वे उनमें वह आत्मविश्वास पैदा करें कि छात्र कल्पनाशील और सृजनशील बन सके। इस रूप में छात्र विकास ही उन्हें भविष्य की चुनौतियों का सामना करते हुए प्रतिस्पर्द्धा में उतारेगा । राष्ट्रीय कौशल एक ऐसी कुशलता है जो शिक्षा के माध्यम से व्यक्तिगत व्यवहार व सामुदायिक व्यवहार में परिलक्षित होता है । यह कुशलता व व्यवहार किसी भी सभ्य व प्रगतिशील राष्ट्र की पूँजी होती है जो राष्ट्र को सभी क्षेत्रों में प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है ।

10.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. जीवन कौशल शिक्षा की अवधारणा एवं महत्व का विस्तार से वर्णन करें ।

   Describe the concept and importance of Life Skill Education.

2. विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा चिन्हित मुख्य जीवन कौशल की व्याख्या करें ।

   Discuss the important likfe skill mentioned by the World Health Organisation.

3. अधिगमकर्ता के जीवन कौशल के विकास में विद्यालय, शिक्षक और समुदाय की क्या भूमिका है? विवेचना करें ।

   What is the role of school, teacher and community in the development of Life Skills of Learners? Desribe it.

4. राष्ट्रीय कौशल से आप क्या समझते हैं?

   What do you understand by National Skill?

10.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Anthony, A.D'Souza (1979) : Sex Education and Personality Development, Indian School Institue : New Delhi.
2. दुबे और दुबे, मनीष और विभा (2010) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद ।
3. अग्रवाल, जे०सी० (2010) : शिक्षा व्यवस्था के आधार तथा प्रबंधन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा ।
4. समुनलता और खत्री, एच०एल० (2016) : शिक्षा और समाज, शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली ।
5. लाल, रमण बिहार (2014) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
6. Handbook for Teachers, YUVA, Stte AIDS Control Society, Delhi.
7. IGNOU (1993) : Curriculum Development for Distance Education, Learning Transactions and Improvement , ES-316, IGNOU : New Delhi.
8. Introduction to Life Skills. (Http:/Wordnet.scout.org./scoutpax/en/a/a)
9. Life Skills Development, Co-curricular, Activities : A Module, NCERT, New Delhi.
10. NACO (2005) : Facilitators Handbook for Training of Teachers, Adolescence Education Programme.
11. Safe Space for Yong People : Are View of AEP, A NACO & UNICEF Publication.
12. WHO, (1999) : Partners in Life Skills Training : Conclusions from a United Nations Inter-Agency Meeting, Geneva [1] (http://www.who.int/mental_health/media/en/30.pdf)
13. Erikson, Erik H : Chilhood and Society : Google books.
14. Briggs, R : Children and teenagers : Google books.

❑ ❑ ❑

इकाई : 11 शिक्षा का निजीकरण और वैश्वीकरण
Privatization & Globalization of Education

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

11.2 निजीकरण और वैश्वीकरण का अर्थ (Meaning of Privatization & Globalization)

11.3 समकालीन शिक्षा पर निजीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education)

11.4 पाठ्यचर्या के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Curriculum)

11.5 शिक्षाशास्त्र के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Pedagogy)

11.6 प्रबंधन के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Management)

11.7 सारांश (Summary)

11.8 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

11.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

11.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ निजीकरण और वैश्वीकरण के अर्थ का वर्णन कर सकेंगे ।
- ❖ शिक्षा पर निजीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे ।

- ❖ पाठ्यचर्चा के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे ।
- ❖ प्रबंधन के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

11.1 प्रस्तावना (Introduction)

शिक्षा पर निजीकरण और वैश्वीकरण नामक इकाई में विद्यार्थियों और वैश्वीकरण का अर्थ एवं इसकी परिभाषा की जानकारी दी गई है । इसमें समकालीन शिक्षा पर निजीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव की विस्तृत व्याख्या की गई है । पाठ्यचर्या के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में चर्चा की गई है । शिक्षाशास्त्र के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव का विस्तार से विश्लेषण किया गया है । प्रबंधन के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव की विस्तृत विवेचना की गई है । इस इकाई के अध्ययन से वर्तमान दौड़ में समाज के बदलते स्वरूप के आलोक में समकालीन शिक्षा एवं शिक्षाशास्त्र के घटकों एवं आयामों पर निजीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव एवं उसके पश्चात् शिक्षा में हो रहे बदलाव की समीचीन व विस्तृत व्याख्या की गई है।

11.2 निजीकरण और वैश्वीकरण का अर्थ (Meaning of Privatization & Globalization)

निजीकरण का अर्थ : निजीकरण का अर्थ है सरकार के नियंत्रण से बाहर रहकर कार्य करने की विधि। यह व्यक्तिगत स्तर पर भी हो सकता है और संगठनात्मक, संस्थात्मक, व्यावसायिक स्तर पर, शिक्षा का निजीकरण व्यवसाय और कंपनियों के क्षेत्र में हो सकता है । वर्तमान में हमारी सरकार का झुकाव निजीकरण की तरफ है । शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से उच्च शिक्षा प्रदान करने में निजीकरण अच्छा विकल्प हो सकता है । उच्च शिक्षा के लिए भौतिक संरचना विकसित करने तथा शोध कार्य को बढ़ाने के लिए धनराशि की आवश्यकता होती है । इसके लिए सरकार के पास उपयुक्त धनराशि की कमी है । इसलिए उच्च शिक्षा को बढ़ावा देने में निजीकरण महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है ।

ए.एन. अग्रवाल के अनुसार "निजीकरण का अर्थ है उद्यमों का स्वामित्व सरकारी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र में बदला जाना । स्वामित्व का हस्तांतरण पूर्ण सार्वजनिक इकाईयों तथा इसके एक भाग के लिए हो सकता है ।"

निजीकरण की विशेषताएँ

1. निजीकरण सरकारी क्षेत्र से सत्ता का निजी हाथों में जाना है ।
2. निजीकरण का अर्थ सरकार के नियंत्रण से बाहर रहकर कार्य करना है ।
3. निजीकरण व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक दोनों स्तर पर हो सकता है ।
4. निजीकरण उच्च शिक्षा के विस्तार में सहायक है ।
5. निजीकरण सरकार की आर्थिक रूप से सहायता कर शिक्षा के विस्तार में सहायक है ।

वैश्वीकरण का अर्थ : वैश्वीकरण का अर्थ है अंतर-निर्भरता । संबद्धता स्तर पर एकीकरण को बढ़ावा देना जिसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, तकनीकी, आर्थिक एवं पर्यावरणीय पक्षों को सम्मिलित

किया गया हो । यह विभिन्न देशों तथा कंपनियों के बीच अंतक्रिया की प्रक्रिया है जिसका प्रभाव देश के आर्थिक विकास एवं उन्नति पर पड़ता है । वास्तव में वैश्वीकरण से आर्थिक एवं सामाजिक संबंधों को बढ़ावा मिल रहा है । इसके साथ-साथ राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन भी हो रहे हैं ।

व्यापक अर्थ में वैश्वीकरण राष्ट्रों के मध्य कार्य और परस्पर क्रिया के बढ़ाए गए क्षेत्र की ओर संकेत करता है । वास्तव में यह वस्तुओं सेवाओं और पूँजी का मुख्य विनिमय है ।

चेंबर शब्दकोश के अनुसार, वैश्वीकरण का अर्थ है "विश्वव्यापी बना देना या संपूर्ण विश्व अथवा सभी लोगों को प्रभावित करना ।"

रंगराजन के अनुसार, "वैश्वीकरण का अर्थ है "सूचनाओं, विचारों, तकनीकों, वस्तुओं और सेवाओं, पूंजी, वित्त और लोगों का देश की सीमाओं से बाहर प्रवाह के द्वारा समाजों एवं अर्थव्यवस्था का एकीकरण ।"

स्टीफन गिल के अनुसार, "वैश्वीकरण पूंजी एवं वस्तुओं की सीमा से पार गतिशीलता की कारोबार लागत की कमी है । जिसके अंतर्गत उत्पादन के कारकों एवं वस्तुओं को शामिल किया गया है ।"

वैश्वीकरण की विशेषताएँ

1. मुक्त व्यापार की बाधाएँ दूर करना ।
2. आर्थिक वैश्वीकरण, व्यापार, निवेश और लोगों के प्रवास द्वारा विश्व की विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के साथ एकीकरण ।
3. यह सूचनाओं, विचारों, तकनीकी, वस्तुओं तथा लोगों का देश की सीमाओं से बाहर प्रवाह के द्वारा समाज तथा व्यवस्थाओं का एकीकरण है ।
4. वैश्वीकरण वस्तुओं, सेवाओं और सामग्री का लोगों के हित के लिए मुक्त विनिमय है ।
5. यह अंतर्राष्ट्रीय के पार लोगों और ज्ञान की गतिशीलता है ।

11.3 समकालीन शिक्षा पर निजीकरण और वैश्वीकरण का प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education)

भारत सरकार द्वारा 90 के दशक में देश को आर्थिक संकट से निकालने के लिए तथा विकास की गति तीव्र करने के लिए नीतिगत आर्थिक सुधारों को लागू किया गया । आर्थिक सुधारों की यह क्रिया आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण (एल० पी० जी०) व मुक्त बाजार व्यवस्था पर आधारित है । भारत में सन् 1991 में नई आर्थिक नीति की घोषणा के साथ ही वैश्वीकरण की शुरूआत की औपचारिक घोषणा हुई । जबकि इसका सूत्रपात 1980 के दशक में ही हो चुका था । 1986 की नई शिक्षा नीति ने समान स्कूल प्रणाली के स्थान पर बहुआयामी शिक्षा व्यवस्था स्थापित करने की वैधानिक घोषणा कर दी थी जिसने सन् 1990 के दशक में वैश्वीकरण के बाजार की ताकतों को शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण का धरातल प्रदान किया । सन् 1991 में घोषित नई आर्थिक नीति के बाद वैश्विक बाजार का प्रतिनिधित्व करने वाली दो शक्तिशाली संस्थाओं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक ने भारत के सामने ऋण तथा अनुदान देने के लिए शर्तें रखी जिसमें सरकार के लिए शिक्षा, चिकित्सा व अन्य समाज कल्याणकारी कार्यक्रमों को कम करने का प्रस्ताव किया गया । जिसके फलस्वरूप शिक्षा व चिकित्सा के क्षेत्रों में सरकारी निवेश को पूर्णतया समाप्त कर इनको निजी क्षेत्र में सौंपने की प्रक्रिया चल रही है ।

सन् 1991 में अर्थव्यवस्था में उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण की शुरूआत के साथ ही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी इन नीतियों को लागू किया गया । फलस्वरूप सन् 1991 में जहाँ भारतीय विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालय में 41-42 लाख छात्र-छात्राएँ थे । सन् 2012-13 में इनकी संख्या लगभग 1 करोड़ 80 लाख हो गई जिसमें 21 लाख परास्नातक स्तर पर अध्ययनरत थे । यू०जी०सी० की वार्षिक रिपोर्ट 2012-13 के अनुसार, स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों की संख्या क्रमशः मात्र 20 तथा 500 थी जो 2013 तक बढ़कर क्रमशः 651 तथा 35500 हो चुकी है । आज भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा में सकल पंजीकरण अनुपात (जी०ई०आर०) 20 प्रतिशत है । जबकि विश्व स्तर पर औसत 26 प्रतिशत तथा विकसित देशों का औसत 58 प्रतिशत है । सरकार ने सन् 2020 तक इसे 30 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखा है । चूंकि लक्ष्य लक्षित उम्र समूह के 30 प्रतिशत युवाओं को स्नातक बनाने का है, उच्च शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु अनेक महत्वाकांक्षी योजनाएँ प्रस्तावित हैं । जिनमें अधिकाधिक नये विश्वविद्यालय और महाविद्यालय खोले जाना प्रमुख है । भारत में शिक्षा के तीव्र प्रसार की आवश्यकता और सीमित सरकारी संसाधनों को दृष्टिगत रखते हुए राष्ट्रीय ज्ञान आयोग 2009 ने निजीकरण की प्रक्रिया का समर्थन करते हुए कहा था कि "आज देश में 1500 नये विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है । उच्चतर शिक्षा के अवसरों का दायरा बढ़ाने के लिए उसमें निजी प्रवेश को प्रोत्साहित करना आवश्यक है ।" परंतु मात्रात्मक वृद्धि की इस दौड़ में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता कहाँ है? संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो भारत की उच्चतर शिक्षा व्यवस्था अमेरीका और चीन के बाद तीसरे नंबर पर आती है लेकिन जहाँ तक गुणवत्ता की बात है, दुनिया के शीर्ष 200 विश्वविद्यालयों में भारत का एक भी विश्वविद्यालय नहीं है । स्कूल की पढ़ाई करने वाले नौ छात्रों में से एक ही कॉलेज पहुँच पाता है । भारत में उच्च शिक्षा के लिए रजिस्ट्रेशन कराने वाले छात्रों का अनुपात दुनिया में सबसे कम यानी सिर्फ 11 फीसदी हैं। अमेरिका में ये अनुपात 83 फीसद है । हाल ही मैं नैसकॉम और मैकिन्से के शोध के अनुसार मानविकी में 10 में से एक और इंजीनियरिंग में डिग्री ले चुके चार में से एक भारतीय छात्र ही नौकरी पाने के योग्य है । राष्ट्रीय मूल्यांकन और प्रत्यायन परिषद की रिपोर्ट में स्वीकार किया गया है कि लगभग 70 प्रतिशत विश्वविद्यालय और 90 प्रतिशत महाविद्यालय औसत अथवा औसत से भी कम दर्जे के हैं । भारतीय छात्र विदेशी विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए हर साल सात अरब डॉलर यानी करीब 43 हजार करोड़ रूपए खर्च करते हैं क्योंकि भारतीय विश्वविद्यालय में पढ़ाई का स्तर घटिया है । इसलिए शिक्षा का निजीकरण करने के साथ ही इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि शिक्षा के प्रसार से उसकी गुणवत्ता प्रभवित न हो । आज गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु कठोर नियम बनाए जाने एवं उसको सख्ती से लागू किए जाने की आवश्यकता है ।

निम्नलिखित नीतियों के निर्णय सरकारी सेक्टर का उच्च शिक्षा में निवेश करने से धीरे-धीरे पीछे हटने को तथा निजीकरण को बढ़ावा देने को स्पष्ट रूप से सूचित करते हैं :-

1. वुड का घोषणा पत्र (1854) में सहायता अनुदान की नीति का समर्थन किया गया लेकिन 1883 में शिक्षा आयोग ने शासकों द्वारा चलाए गए विश्वविद्यालयों के प्रत्यक्ष समर्थन और प्रबंधन से राज्य को धीरे-धीरे पीछे हटने के लिए कहा ।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में शिक्षा के उच्च स्तर पर चन्दो, शुल्क में वृद्धि द्वारा संसाधनों के बढ़ाए जाने को प्रोत्साहित किया । इससे राज्य संसाधनों पर भार कम हो जाएगा और साथ में शिक्षा पद्धति की जिन्मेदारी की भावना भी उत्पन्न होगी ।

3. शिक्षा का केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड (1992) ने उल्लेख किया कि राज्य सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त विश्वविद्यालय के लिए पर्याप्त संसाधन प्राप्त करने या स्थानीय निधि को उत्पन्न करने में राज्य सरकार समर्थ नहीं होगी । विश्वविद्यालयों को अपने आप अपने संसाधनों को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।
4. आठवीं पंचवर्षीय योजना, 1997 में उल्लेख किया गया कि नए प्रारंभिक विश्वविद्यालयें और महाविद्यालयों के खोले जाने को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा । इसमें स्वयं की आर्थिक सहायता करने के आधार पर उच्च शिक्षा संस्थानों के खोले जाने और संचालन में स्वैच्छिक एजेंसियों के सम्मिलन और निजी सेक्टर की भागीदारी की माँग की लेकिन साथ ही कहा कि शिक्षा के स्तर के संबंध में समझौता नहीं किया जाना चाहिए ।
5. यू०जी०सी० (1995) उल्लेख किया की आर्थिक सहायता का आर्थिक सुधारों और बाजार की उदारीकरण के विस्तृत मापदंडों के अधीन किया जाएगा ।
6. यूनेस्को दस्तावेज 1996, 2003, दस्तावेज 1996 में राष्ट्रीय बजट पर दबाव कम करने के लिए निजी स्रोतों के पैसे को प्रयोग करने की बात कही गई । यह आर्थिक सहायता विभिन्न स्रोतों से आ सकती है। जैसे शुल्क के रूप में या छात्र द्वारा योगदान । दस्तावेज 2003 में उच्च शिक्षा के विकास के नए आयामों की ओर संकेत किया गया । जिसमें पारंपरिक प्रबंधकों के अतिरिक्त नए शैक्षिक प्रबंधकों की उत्पति शामिल है जिसमें उच्च शिक्षा में निजी निवेश की बढ़ती भागीदारी शामिल है ।
7. शिक्षा में सुधारों के लिए नीति की रूपरेखा 2009 शिक्षा में सुधारों के लिए विश्वविद्यालयों को उद्योगों के साथ साझेदारी बनाने के लिये प्रोत्साहित किया गया ।
8. सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय 2002 ने कहा कि शिक्षा राज्य के महत्वपूर्ण कार्यों में से है, लेकिन राज्य का इसमें कोई एकाधिकार नहीं है । उच्च शिक्षा की माँग को पूरा करने के लिए निजीकरण की विचारधारा और आवश्यक सहायता प्रदान करने के लिए सरकार की असमर्थता में निजीकरण की कार्यसूची को प्रस्तुत कर दिया है ।

यह स्पष्ट है कि उच्च शिक्षा की आर्थिक रूप से सहायता करने का सरकारों का आगे कोई इरादा नहीं है और सरकारी उच्च शिक्षा को आर्थिक सहायता देने से धीरे-धीरे पीछे हट रही हैं । इसलिए उच्च शिक्षा में निजीकरण के अलावा अब और कोई विकल्प नहीं है ।

उच्च शिक्षा में निजीकरण के पक्ष में तर्क

1. जब शिक्षा संबंधी सेवाएँ निजी हाथ में आ जायेंगी तो उसमें कुशलता में वृद्धि होगी ।
2. उच्च शिक्षा का निजीकरण उद्योगों तथा व्यावसायिक संगठनों को एक-दूसरे के निकट लाएगा जिससे उद्योगों तथा व्यवसायिक संगठनों दोनों को लाभ होगा । उच्च शिक्षा को उद्योगों से आर्थिक सहायता मिलेगी। उद्योगों को कुशल मानव शक्ति प्राप्त होगी ।
3. उच्च शिक्षा का निजीकरण छात्रों को कमाने की क्षमता बढ़ाने में सक्षम होगा ।
4. उच्च शिक्षा का निजीकरण सरकार को आर्थिक बोझ से राहत पहुँचाएगा । जैसे नए संस्थानों का निर्माण विद्यमान संस्थानों का प्रसार आदि निजी क्षेत्र की जिम्मेदारी होगी ।
5. निजीकरण का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा क्योंकि इन संस्थानों में हर वर्ग और हर स्तर के विद्यार्थी दाखिला ले सकेंगे । इससे छात्रों की संख्या के अनुसार संसाधन उपलब्ध होंगे ।

6. कुछ शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने से शिक्षा का वाणिज्यकरण हो सकता है क्योंकि इससे पूरा ध्यान शिक्षा के मूल्यों पर नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण होता है ।
7. निजीकरण से दिए गए कोर्सों की प्रकृति सीमित हो जाएगी जिससे उच्च शिक्षा के विकास में बाधा उत्पन्न हो जाएगी ।
8. निजीकरण से शिक्षा का व्यापारीकरण हो सकता है जो शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के संविधानात्मक उत्तरदायित्व के विरूद्ध हो जाएगा । इससे सामाजिक असमानता बढ़ेगा ।
9. निजीकरण से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का पतन हो सकता है क्योंकि निजी संस्थान अपने अधिकार के लालच में गुणवत्ता से समझौता कर सकते हैं ।
10. निजीकरण से विद्यार्थियों पर डोनेशन व शुल्क के रूप में आर्थिक भार बढ़ सकता है जिससे आर्थिक रूप से पिछड़े छात्र दाखिला नहीं ले पायेंगे ।
11. निजीकरण से अध्यापकों को उपयुक्त वेतन न दिए जाने की संभावना भी बढ़ जाती है निम्न वेतन पर अपर्याप्त योग्यता वाले निम्न स्तर के अध्यापक भर्ती किए जा सकते हैं जिससे शिक्षा की गुणवत्ता पर विपरित प्रभाव पड़ सकता है ।
12. निजीकरण से उच्च शिक्षा में शोध के क्षेत्र में बाधा उत्पन्न हो सकती है ।

निजीकरण का अध्यापक शिक्षा पर प्रभाव

वृतिका-अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में डिप्लोमा और डिग्रीयों की बहुत माँग है । पहले शिक्षण का उद्देश्य वृत्ति माना जाता था लेकिन अब यह व्यवसाय कहलाता है । पहले पैसों को अधिक महत्व नहीं दिया जाता था । प्रतिबद्धता और समर्थन शिक्षकों की विशेषताएँ थी । वैसे तो आज भी यह गुण विद्यमान है परंतु इसमें काफी कमी आई है । आज पैसे और नौकरी की शर्तों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है । अध्यापक शिक्षा का निजीकरण व्यावसायिकता की ओर ले जाता है । यदि निजी क्षेत्र अपने कर्मचारियों को अच्छा वेतन देते हैं तो उन पर काम का दबाव बहुत अधिक होता है और यदि दबाव कम है तो वेतन बहुत कम है । दोनों मामलों में शोषण अध्यापक का ही होता है ।

नए संस्थान उच्च शिक्षा के स्तर में सुधार लाने और वाणिज्यिकरण के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई । अध्यापक शिक्षा की माँग बहुत अधिक है इसलिए प्रत्येक वर्ष बहुत से अध्यापक शिक्षण संस्थान खोले जा रहे हैं जो एन.सी.टी.ई द्वारा उचित रूप से स्वीकृत है । दुर्भाग्यवश शिक्षा का स्तर बनाए रखने के लिए एन.सी.टी.ई. के पास एक प्रभावशाली मॉनिटर पद्धति नहीं है । शिक्षा स्तर को कायम रखने के लिए यह अधिकृत है लेकिन अभी तक इसमें इसने अपने आपको नए संस्थानों की स्थापना से संबंधित नियंत्रक कार्य प्रणालियों तक सीमित रखा है ।

11.4 पाठ्यचर्या के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Curriculum)

वर्तमान वैश्वीकरण के युग में उच्च शिक्षा की विषयवस्तु, अध्यापन, आवश्यकताएँ तथा अध्यापकीय दृष्टिकोण से सभी बदल गए हैं । इसलिए उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी अत्यधिक परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा

है । आज मानविकी विषयों के स्थान पर विविध आयामी व्यवसायिक पाठ्यक्रमों पर बल दिया जा रहा है । इसलिए उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में ऊर्जा संरक्षण, पर्यावरण प्रदूषण एवं बचाव, जनसंख्या शिक्षा, रोग मुक्ति व रोग नियंत्रण के उपाय, सकारात्मक मूल्यों का विकास, कौशल विकास, मानवाधिकार, शांति शिक्षा, कम्प्यूटर से लेकर अंतरिक्ष विज्ञान तक, समुद्र के गर्भ से लेकर वास्तुशास्त्र, खनिजशास्त्र तक आदि नवीन विषयों का समावेश किया जा रहा है । पाठ्यक्रमों में आए इस परिवर्तन को विद्यालय में प्रभावकारी ढंग से लागू करना शिक्षकों के लिए एक बड़ी चुनौती है जिसके लिए उन्हें अपनी दक्षता में वृद्धि करनी होगी और इसके लिए उन्हें सशक्त बनना होगा ।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने शिक्षा की परम्परागत प्रणाली में अत्यधिक परिवर्तन ला दिया है । आज शिक्षा में सूचना सम्प्रेषण तकनीकी के सशक्त माध्यमों जैसे रेडियो, दूरदर्शन, टेपरिकार्डर, वीडियोरिकार्डर, टेलीफोन, मोबाईल, कम्प्यूटर, सीडीरोम, उपग्रह संप्रेषण, ई-मेल, इण्टरनेट आदि का सीखने की प्रक्रिया में सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा रहा है । शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र व अंग को सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने प्रभावित किया है । प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में रेडियो, दूरदर्शन, टेपरिकार्डर, वीडियो रिकार्डर आदि का शिक्षण में उपयोग किया जा रहा है । रेडियो तथा दूरदर्शन पर विभिन्न विषयों के शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण किया जा रहा है । जिससे सुदूर क्षेत्रों में रह रहे लाखो विद्यार्थी घर पर शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं । एन०सी०ई०आर०टी०, दिल्ली एवं एस०सी०ई०आर०टी० द्वारा इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए गए हैं । इसके अतिरिक्त इन विद्यालयों में कम्प्यूटर का प्रयोग बच्चों को सूचना प्रौद्योगिकी की शिक्षा देने, बच्चों की उपस्थित, शुल्क तथा छात्रवृति का ब्यौरा रखने में एवं परीक्षण प्रश्नों के निर्माण में किया जा रहा है । उच्च शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग ने शिक्षा की परम्परागत प्रणाली में अत्यधिक परिवर्तन ला दिया है । यह शिक्षक के सर्वाधिक मददगार के रूप में उभरी है । सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षक को अपने ज्ञान को अद्यतन बनाए रखने में, पाठयोजना तैयार करने में, विद्यार्थियों के विभिन्न अभिलेख बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देती है । आज शिक्षक पावर प्वाइन्ट प्रेजेन्टेशन के माध्यम से मल्टीमीडिया का प्रयोग कक्षा शिक्षण में विषय वस्तु को रूचिकर, सहज एवं सुग्राह्य बनाने में कर रहा है । इसके अतिरिक्त विद्वान शिक्षकों के व्याख्यानों को इण्टरनेट के द्वारा छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है । जिससे सुदूर क्षेत्रों में अध्ययनरत छात्र भी विषय विशेषज्ञों के ज्ञान से परिचित हो जाता है । विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के अत्यधिक समुन्नत साधनों ने व्यक्तिगत जीवन तथा व्यावसायिक जीवन दोनों को जटिल बना दिया है । कक्षाध्यापन में कम्प्यूटर, टेपरिकॉर्डर एवं अन्य इलेक्ट्रानिक साधनों का उपयोग करने, हार्डवेयर, सॉफ्टवेयर को अपनाने जैसे दायित्व बढ़ गए हैं । इससे शिक्षकों में नए कौशल लाने की आवश्यकता बढ़ गई है । अतएव शिक्षकों के प्रशिक्षण में इन बिंदुओं को शामिल किए जाने की जरूरत है ।

बाजार, मण्डी तथा प्रतिस्पर्धाओं ने शिक्षा जगत को भी प्रभावित किया है । जीवन मूल्यों, चरित्र निर्माण तथा व्यक्तित्व विकास की शिक्षा का पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं है । शिक्षा की परिभाषा बौनी हो गई है । केवल जानकारियों के ढेर को मस्तिष्क में ठूंसने का प्रयास हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप लक्ष्यविहीन युवा पीढ़ी स्वेच्छाचारी बनती जा रही है । आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्यीकरण का प्रभाव, वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, मन-मस्तिष्क को प्रदूषित करता जा रहा है । समान संस्कृति के नाम पर प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को भारत के पाठ्य पुस्तकों से बहिष्कृत कर दिया गया है । आधुनिकता के नाम पर प्राचीन बुद्धिमत्ता से विछोह हो गया है और देश की धरती से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया है ।

यूनेस्को के कथनानुसार "किसी भी देश की शिक्षा का सम्बन्ध उस देश की संस्कृति के संरक्षण तथा विकास के लिये होना चाहिए ।"

"The education of the country should be rooted to its cultute and wedded to its growth."

इस कथन से मार्गदर्शन प्राप्त न करते हुए हम वैश्वीकरण के नाम पर पाश्चात्यीकरण का अन्धानुकरण कर रहे हैं और यह शिक्षा के लिये बहुत बड़ी चुनौती है । यदि भारतीयता अथवा इसकी संस्कृति को इन स्थितियों में बने रहना है तो सुनियोजित, गहन विचारित एवं गम्भीर शैक्षिक प्रयासों की जरूरत है जिसके लिए गुणात्मक रूप से समृद्ध एवं सार्थक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों की आवश्यकता है जिसके द्वारा ऐसे शिक्षक तैयार हों, जो भारतीय पहचान व संस्कृति को अक्षुण्ण रख सकें ।

11.5 शिक्षाशास्त्र के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Pedagogy)

शिक्षण-कार्य की प्रक्रिया का विधिवत अध्ययन शिक्षाशास्त्र (Pedagogy) कहलाता है । इसमें अध्यापन की शैली या नीतियों का अध्ययन किया जाता है । शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है । इसमें अध्यापक और शिक्षार्थी के मध्य अंत:क्रिया होती रहती है और सम्पूर्ण अंत:क्रिया की दिशा किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख रहती है और यह प्रभाव किसी विशिष्ट दिशा की ओर स्पष्ट रूप से अभिमुख होता है । निजीकरण और वैश्वीकरण के दौड़ में सम्पूर्ण शिक्षा - चक्र गतिशील है । उसकी गति किस दिशा में हो रही है? कौन प्रभावित हो रहा है? इस दिशा का लक्ष्य निर्धारण का कार्य शिक्षाशास्त्र का है ।

आज वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा और समाज दोनों के क्षेत्र में बदलाव आ गया है । **अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1996)** के अध्यक्ष **जे0 डेलर्स** व सहयोगियों के अनुसार, शिक्षा के चार स्तम्भ **'ज्ञान के लिए शिक्षा, कार्य के लिए शिक्षा, सह-अस्तित्व की शिक्षा** तथा **स्व-अस्तित्व की शिक्षा** है ।' इन चारों स्तम्भों को पूर्ण करने के लिए शिक्षा प्रणाली में सुधार अवश्यंभावी है । अत: शिक्षक को छात्रों को स्वाध्याय और विवकेशील चिंतक बनाने के लिए प्रेरित करना होगा और शिक्षक को स्वयं विवेकशील व शोधार्थी बनने की दक्षता प्राप्त करनी होगी ।

वर्त्तमान वैश्वीकरण के युग में सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव के कारण एक देश की घटनाएँ अन्य देशों को भी प्रभावित करती हैं । जिसके कारण अनेक तानाशाह पदच्युत हो चुके हैं और वहाँ पर लोकतंत्र की स्थापना हो गयी है । आज जब सारा विश्व लोकतंत्र की दुहाई दे रहा है, ऐसे में शिक्षकों को अपना एकतंत्रीय व्यवहार छोड़ना पड़ेगा । घर जब सहकारी वातावरण देने में असमर्थ होने लगे हैं तब विद्यालयों की जिम्मेदारी सहकारिता बढ़ाने में और अधिक हो जाती है । इस संदर्भ में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कहा गया है - "शिक्षा के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है, हमारे सहभागिता आधारित लोकतंत्र व संविधान में प्रतिस्थापित मूल्यों को सुदृढ़ करना ।" आज शिक्षक विद्यालय में लोकतंत्र के मूल तत्वों स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देकर लोकतंत्रीय भावना का विकास करने का महत्वपूर्ण कार्य करने में विशिष्ट भूमिका का निर्वाह कर सकता है ।

वैश्वीकरण ने शिक्षा के हर पहलू को प्रभावित किया है । जैसे शैक्षिक उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन, मूल्यांकन आदि जिसका वर्णन निम्न रूप से है ।

वैश्वीकरण एवं उच्च शिक्षा :

1. मानव मूल्य विश्व संस्कृति एवं समाज को विकसित करना ।

2. विश्व स्तर पर सभी देशों के बीच विज्ञान तकनीकी एवं आर्थिक विकास का आदान-प्रदान करना।
3. छात्रों को ज्ञान के नवीन क्षेत्रों से परिचति कराना ।
4. उच्च शिक्षा के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय बोध और परिपेक्ष्य को विकसित करना ।

वैश्वीकरण और पाठ्यक्रम : वैश्वीकरण के प्रभाव में शिक्षा के पाठ्यक्रम में भी व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है जो निम्नवत है :-

1. अंतरिक्ष विज्ञान एवं तकनीक
2. जैव प्रौद्योगिकी
3. पर्यावरण संरक्षण एवं संबहनीय विकास
4. सूचना संचार तकनीक
5. आपदा प्रबंधन
6. स्वास्थ्य एवं तकनीक

वैश्वीकरण और शिक्षण विधियाँ : वर्त्तमान वैश्वीकरण के युग में शिक्षा की शिक्षण विधियों में भी परिवर्तन दृष्टिगत हो रहा है । आज परम्परागत विधियों के स्थान पर नवीन विधियों के द्वारा विद्यार्थी को स्व-अधि गम (सेल्फ लर्निंग) के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है । इस शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में विद्यार्थी की सक्रिय भागीदारी होती है और उन्हें सहयोग द्वारा सीखने के लिए वांछित वातावरण प्रदान किया जाता है ।

वैश्विक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले पाठ्यक्रम के अनुसार अत्याधुनिक शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जा रहा है जिसमें प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं :-

1. कम्प्यूटर प्रणाली में परिवर्तन किए अनुदेशन और इन्टरनेट
2. प्रदर्शन एवं प्रयोग विधि
3. ट्यूटोरियल विधि
4. सेमिनार विधि
5. ह्यूरिस्टिक विधि
6. स्वयं करके सीखना

आज व्याख्यान पद्धति के साथ-साथ सेमीनार, ग्रूप डिस्कशन, कोपरेटिव लर्निंग, वर्कशॉप, ट्यूटोरियल, ब्रेन स्टार्मिंग, एक्सटेम्पोर आदि का प्रयोग शिक्षण में किया जा रहा है । इन नवीन विधियों को शिक्षक प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या में अनिवार्य रूप से शामिल करने की आवश्यकता है ताकि शिक्षक इन नवाचारों से अवगत हो सकें।

वैश्वीकरण एवं उच्च शिक्षा में अनुशासन : शिक्षण प्रक्रिया की सफलता काफी हद तक अनुशासन पर निर्भर करती है । शैक्षिक प्रक्रिया में अध्यापक और छात्र में ऐसा समन्वय होना चाहिए कि अध्यापक प्रभावपूर्ण ढंग से छात्र को ज्ञान प्रदान करने में सफल हो सके ।

स्वतंत्र अनुशासन : वैश्वीकरण स्वतंत्र अनुशासन के पक्ष में है छात्रों को स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए लेकिन उन पर नियंत्रण भी होना चाहिए ।

स्व-अनुशासन : वास्तविक अनुशासन स्व-अनुशासन है । यह आन्तरिक रूप से स्वतंत्र और स्व-नियंत्रित होता है । यह किसी बाह्य दबाव पर निर्भर नहीं करता बल्कि मनुष्य के अन्त: मन में निहित होता है ।

11.6 प्रबंधन के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का समकालीन शिक्षा पर प्रभाव (Impact of Privatization & Globalization on Contemporary Education with reference to Curriculum)

वैश्वीकरण के कारण देश में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक व सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ है । इन परिवर्तनों ने हमारे शिक्षातंत्र को अत्यधिक प्रभावित किया है । इसी क्रम में शिक्षक व छात्र की भूमिका में भी बदलाव आना निश्चित है । आज से लगभग ढाई दशक पूर्व विद्यार्थी के ज्ञान पिपासा को जागृत करने व शांत करने का मुख्य आधार शिक्षक था । उस समय विद्यार्थी अक्षरीय एवं पुस्तकीय ज्ञान के लिए शिक्षक पर निर्भर होते थे । उस समय बहुत कम विद्यार्थियों के पास टेलीवीजन, रेडियो, समाचारपत्र एवं पत्रिकाएँ उपलब्ध हो पाती थी । विद्यार्थियों के पास कल्पनाएँ, जिज्ञासाएँ व प्रश्नों की भरमार होती थी । लेकिन उसके पास समाधान का एकमात्र स्रोत शिक्षक था जो अपने अनुभवों के आधार पर उनकी जिज्ञासा को शांत करता था। लेकिन आज शिक्षक की भूमिका में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ गया है । राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में शिक्षक की बदलती भूमिका का उल्लेख करते हुए कहा गया है - "उसे अब तक ज्ञान के स्रोत के रूप में केंद्रीय स्थान मिलता रहा है, वह सीखने-सिखाने की समूची प्रक्रिया का संरक्षक और प्रबंधक रहा है और पाठ्यचर्या या अन्य विभागीय आदेशों के जरिए सुपुर्द शैक्षणिक और प्रशासनिक जिम्मेदारियों को पूरा करने वाला रहा है । अब उसकी भूमिका ज्ञान के स्रोत के बदले एक सहायक की होगी जो सूचना को ज्ञान में बदलने की प्रक्रिया में विविध उपायों से शिक्षार्थियों को उनके शैक्षणिक लक्ष्यों की पूर्ति में मदद करे ।"

एन०सी०टी०ई० ने शिक्षक प्रशिक्षण के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में सूचना प्रौद्योगिकी को स्वीकार किया और इसके लिए एक सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक घटकों से युक्त एक कार्यक्रम बनाया । जिसके माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षणार्थी मल्टीमीडिया के प्रयोग से पाठ योजना तैयार कर सकते हैं । ऑनलाईन और ऑफलाइन स्रोतों से अपना दत्तकार्य (एसाइनमेंट) बना सकते हैं । विद्यार्थियों के अभिलेख तैयार कर सकते हैं । इसके अलावा सूचना प्रौद्योगिकी शिक्षकों को सूचनाओं के नवीनीकरण में, शिक्षक दक्षता विकसित करने में, नयी-नयी शिक्षण विधियों एवं मॉडल की जानकारी प्रदान करने में, निर्देशात्मक तत्वों के प्रयोग में तथा अनुसंधान दक्षता विकसित करने में सहायता प्रदान करता है । शिक्षकों को सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान प्रदान करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा एकेडमिक स्टॉफ कॉलेजों में सूचना संचार प्रौद्योगिकी विषय पर रिफ्रेशर कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं । साथ ही सभी ओरियन्टेशन व रिफ्रेशर कार्यक्रमों मे सूचना प्रौद्योगिकी के प्रशिक्षणा को अनिवार्य रूप से शामिल कर दिया गया है ताकि शिक्षक अपने ज्ञान को अद्यतन एवं विस्तृत आयाम देकर शिक्षण व अनुसंधान कार्य को उन्नत बना सके । नि:संदेह सूचना प्रौद्योगिकी का ज्ञान रखने वाला शिक्षक ही वैश्वीकरण के इस युग में शिक्षार्थियों की आकांक्षाओं पर खरा उतर पायेगा ।

आज विश्व एक गाँव का रूप ले रहा है । संस्कृतियों मे तेजी से संक्रमण हो रहा है । ऐसे में शिक्षक की अपनी भूमिका और भी अधिक संवेदनशील हो जाती है । शिक्षक का कार्य वास्तव में अन्य कार्यों से अधिक महत्वपूर्ण और चुनौती भरा है क्योंकि उसे भावी नागरिकों का निर्माण करना है । उस पीढ़ी का निर्माण करना है जो संस्कृति की संवाहक होगी । आज शिक्षक को पारम्परिक शिक्षण के स्थान पर नवाचार की ओर उन्मुख होना पड़ेगा । सूचना प्रौद्योगिकी व नवीन शिक्षण तकनीकों की जानकारी प्राप्त करने के साथ ही शिक्षक को मूल्यों

का संरक्षण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना होगा । ऐसे दक्ष व नवाचारी शिक्षक के द्वारा ही उच्च शिक्षा की वैश्विक चुनौतियों का समाना कर पाना संभव हो सकेगा । यदि शिक्षकों को उचित संसाधन, नवाचारों व उपयुक्त प्रशिक्षण के द्वारा सशक्त कर दिया जाए तो निःसंदेह भारत के विश्वविद्यालय विश्व की रैंकिंग में उच्च स्थान प्राप्त कर सकेंगे और उच्च शिक्षा के लिए छात्रों को विदेश जाने की जरूरत नहीं होगी वरन् विदेशी छात्र भारत में अध्ययन करने के लिए आयेंगे । जिससे भारत आर्थिक रूप से समृद्ध हो सकेगा एवं नालंदा के समय की तरह भारत एक बार पुनः विश्व गुरू बनकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करेगा ।

वैश्वीकरण के फलस्वरूप देश में तीव्र औद्योगिक विकास हुआ है । आज लोग रोजगार व बेहतर जीवन की तलाश में गाँव से शहर की ओर पलायन कर रहे हैं । ऐसे में संयुक्त परिवार बिखर कर एकल परिवारों में परिवर्तित हो गए जिसमें माता, पिता तथा बच्चे रह गए । ऐसे परिवेश का सर्वाधिक प्रभाव बच्चों पर पड़ा। बच्चे जो मूलतः निष्कपट, सरल हृदय, सच्चे, ईमानदार व विश्वसनीय होते थे, इस बदले हुए महानगरीय तथा शहरी परिवेश में आकर तेजी से बदलने लगे । बच्चे की प्रथम पाठशाला परिवार तथा प्रथम गुरू माता होती थी। बढ़ती आवश्यताओं के कारण पति-पत्नी दोनों को कमाने के लिए घर से बाहर निकलना पड़ा । इस एकल पारिवारिक व्यवस्था में बालक न केवल बाबा, दादी, चाचा, ताऊ के प्यार से वंचित हो गया है, बल्कि कुछ हद तक माँ-बाप के स्नेह से भी वंचित रहने लगा है । आज अभिभावकों के पास बच्चों के लिए समय नहीं है । बच्चों के मन में उठने वाले प्रश्नों व जिज्ञासाओं का उत्तर देने वाला, भावनाओं को सहेजने वाला कोई नहीं है । फलस्वरूप संयुक्त परिवार में मिलने वाले मानवीय मूल्यों, आदर्शों तथा संस्कारों से वे वंचित हो गए हैं जिसके कारण आज बालकों में बचपना, भेलापन, सहजता, सरलता, चंचलता, निश्छलता, सहनशीलता तथा सहकारिता जैसे मानवीय भाव लुप्त होते जा रहे हैं तथा उनमें उग्रता, अशांति, अवसाद, लालच, क्रोध आदि दृष्टिगत हो रहे हैं । ऐसी परिस्थितियों में, जब परिवार का साथ व स्नेह बालकों को नहीं मिल पा रहा है, शिक्षक का महत्व व भूमिका बढ़ जाती है । यहाँ पर शिक्षक ही एकमात्र विकल्प है जो उनकी भावनाओं, प्रश्नों व विचारों की धाराओं को संस्कारो को बाँध बनाकर उचित दिशा दे सकता है । ऐसा माना जाता है कि अध्यापक वर्ग अभिभावकों की तुलना में अधिक मान्य होता है । इसलिए अध्यापक का साथ विद्यार्थी को न केवल पढ़ाई पूरी करने में, बल्कि अच्छी आदतों व गुणों का विकास करने में भी अति आवश्यक है ।

निजीकरण, वैश्वीकरण एवं विश्व व्यापार संगठन सिर्फ आर्थिक एवं शैक्षिक तत्व नहीं है, वरन् वे सांस्कृतिक परिणाम भी उत्पन्न करते हैं । सामान के साथ ज्ञान, शिक्षा व विशेषज्ञता, संस्कृति, विचार एवं विचारधाराएँ भी आयात होते हैं और सांस्कृतिक प्रदूषण प्रारम्भ हो जाता है । मादक व्यसन और उपभोक्तावादिता महामारी की तरह फैलती है और युवा चाहें शिक्षित हों या अशिक्षित, इसके सबसे बुरी तरह शिकार हो रहे हैं। व्यवहार के तरीके, मूल्य, पहनावा, उपभोग के तरीके एवं पारिवारिक जीवन की गुणवत्ता द्रुतगति से न्यूनता प्रदर्शित कर रही है । भारतीय सांस्कृतिक माहौल और इसकी सांस्कृतिक विरासत आक्रमणग्रस्त है । भारत की विशिष्ट पहचान का परिरक्षण एक विशालकाय कठिन कार्य माना गया है ।

व्यापारीकरण, व्यवसायीकरण तथा निजीकरण ने शिक्षा क्षेत्र को अपनी जकड़ में ले लिया है । मण्डी में शिक्षा क्रय-विक्रय की वस्तु बनती जा रही है । इसे बाजार में निश्चित शुल्क से अधिक धन (Capitation Fee) देकर खरीदा जा सकता है । परिणामतः शिक्षा में एक भिन्न प्रकार की जाति प्रथा जन्म ले रही है जो धन के आधार पर आई.आई.टी, एम.बी.ए, सी.ए, एम.बी.बी.एस आदि उपाधियों के लिये प्रवेश पा कर उच्च भावना से ग्रस्त और धनाभाव के कारण प्रवेश से वंचित हीनभावना से ग्रस्त रहते हैं । दोनों ही श्रेणियों के छात्र

ग्रस्त है । असमानता की खाई बढ़ रही है । सामाजिक असंतुलन और विषमता इस का ही परिणाम है ।

सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी विषयों की उपेक्षा करना देश की उन्नति के लिए हानिकारक है और साथ ही इस दृष्टि से शोध को भी दुर्लक्ष करना और भी घातक है । पारम्परिक ज्ञान की ओर ध्यान न देना और शिक्षा को बाजारीकरण की शक्तियों के अधीन करना देश के लिए खतरनाक है । बाजारवादी नुस्खों में कई निहितार्थ छिपे हैं । एक तो यह सरकार ने मान लिया है कि देश के सभी बच्चों को शिक्षित करने का काम उसी का नहीं है । शिक्षा को बाजार का उन्मुक्त स्वरूप देने में क्रय-विक्रय की क्षमता रखने वाले छात्रों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मिलेगी । शेष के लिए नहीं ।

शिक्षा के आधिकार पर धन और बल का अधिकार होगा, भेदभाव बढ़ेगा । स्पष्ट है निजीकरण के माध्यम से कभी भी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकता । कोचिंग के बाजार में कई घटिया, गैरमान्यता प्राप्त, फर्जी शिक्षा की दुकानें खुलती जा रही हैं । इन सबको रोकना बहुत बड़ी चुनौती है । देश में 125 डीम्ड विश्वविद्यालय हैं । इनके 102 निजी स्वामित्व वाले संस्थान हैं । इन्होंने उच्च शिक्षा को मुनाफे का धंधा बना दिया है । आंध्रप्रदेश में 600 से अधिक निजी इंजीनियरिंग महाविद्यालय, कर्नाटक में यह संख्या 170 है, उड़ीसा में 81, राजस्थान में 80 है । इस परिदृश्य से जो स्थिति उपस्थित हुई, इस कारण आर्थिक व सामाजिक आधार पर भी शिक्षा विभाजित हुई है ।

शिक्षा पर मुनाफा कमाने पर रोक, धनवान तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़े सभी छात्रों के लिए अच्छी शिक्षा दिलाने का संकल्प, शिक्षा इन सबको स्वीकार करे । राजनीति की चेरी बने रहने से इसे छुटकारा मिले । **देशभक्ति, स्वास्थ्य-संरक्षण, सामाजिक संवेदनशलीता तथा आध्यात्मिकता यह शिक्षा के भव्य के चार स्तम्भ हैं ।** इनको राष्ट्रीय शिक्षा की नीति में घोषित कर, स्वायत्ता शिक्षा को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करना चाहिए । इन सब उपायों से शिक्षा की चुनौतियों का मुकाबला किया जा सकता है । शिक्षा बाजार नहीं अपितु मानव मन को तैयार करने का उदात्ता सांचा है । जितनी जल्दी हम इस तथ्य को समझेंगे उतना ही शिक्षा का भला होगा ।

11.7 सारांश (Summary)

शिक्षा का निजीकरण और वैश्वीकरण वर्त्तमान शिक्षा समाज की एक आवश्यक आवश्यकता बनती जा रही है । यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो शिक्षा के सभी आयामों यथा शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षाशास्त्र (Pedagogy), शिक्षण विधियाँ एवं इसके प्रबंधन को गहराई से प्रभावित कर रहा है । वैश्वीकरण एवं निजीकरण के प्रभाव से समकालीन शिक्षा का अलगाव आज के दौड़ में संभव नहीं है । वैश्विक समाज की तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या की जरूरतों को सिर्फ सरकार अपने प्रयत्नों से पूरा नहीं कर सकती है इसलिए सार्वजनिक-निजी भागीदारी एवं ज्ञान का निर्बाध व वैश्विक आदान-प्रदान जरूरी है । समकालीन शिक्षा को यह सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों रूपों में प्रभावित करता है । भारतीय संदर्भ में संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों से शिक्षा के अलगाव को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है । वर्तमान समाज में शिक्षा एक ऐसा ब्रह्मास्त्र का स्वरूप ग्रहण कर चुका है कि इसके बिना किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के लिए आगे बढ़ना संभव नहीं है । शिक्षाविदों एवं समाजशास्त्रियों ने 'भविष्य का समाज' ज्ञान समाज (Knowledge Society) के रूप में प्रतिस्थापित होने की बात कही है । अत: समकालीन शिक्षा एवं इसके आयामों को निजीकरण एवं वैश्वीकरण के साथ कदम-ताल मिलाना समीचीन आवश्यकता है । आधुनिक विज्ञान एवं तकनीक यथा सूचना एवं संचार तकनीक, अंतरिक्ष विज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्र जो शिक्षा और मानव विकास के समग्र आयामों को

प्रभावित कर रहा है तथा मानव समाज के कल्याण की नयी परिभाषा गढ़ रहा है । शिक्षा का स्वरूप लोकतांत्रिक होने के साथ ही साथ 'शिक्षक प्रधान' से 'बाल प्रधान' हो चला है । इसी के अनुरूप शिक्षण विधियों तथा पाठ्यचर्या में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है ।

11.8 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

1. निजीकरण और वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं? शिक्षा पर इसके प्रभाव की विवेचना करें ।
   What do you understand by privatization and globalization? Discuss its impact on education.
2. पाठ्यचर्या के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
   Explain the impact of privatization and globalization with reference to curriculum.
3. शिक्षाशास्त्र के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव का वर्णन करें ।
   Describe the impact of privatization and globalization with reference pedagogy.
4. प्रबंधन के संदर्भ में निजीकरण एवं वैश्वीकरण का शिक्षा पर प्रभाव का विश्लेषण करें ।
   Analyse the impact of privatization and globalization with reference to management.

11.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Agrawal, J.C. (2009) : Education in the Emerging Indian Society, Shipra Publications, Delhi.
2. Singh, J.P. (2013) : Samajshastra Awdharnaye ewm Siddhant, PHI, Delhi.
3. मदान, पूनम और त्यागी, गुरू शरणदास (2016) : समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगर ।
4. अग्रवाल, जे०सी० (2010) : शिक्षा व्यवस्था का आधार तथा प्रबंधन, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा ।
5. समुनलता और खत्री, एच०एल० (2016) : शिक्षा और समाज, शिप्रा पब्लिकेशन, दिल्ली ।
6. लाल, रमण बिहारी (2014) : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत, रस्तोगी पब्लिकेशन, मरेठ।
7. NCF 2005, NCERT, New Delhi, 2006
8. गाँधी जी के शैक्षिक विचार, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, 1999
9. भारतीय आधुनिक शिक्षा (त्रैमासिक), एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, जनवरी 2008
10. भारतीय आधुनिक शिक्षा (त्रैमासिक), एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली, जनवरी 2011
11. अध्यापक शिक्षा के कतिपय विशिष्ट मुद्दे एवं संदर्भ, राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, 2004
12. उच्च शिक्षा पत्रिका (त्रैमासिक), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली, वर्ष 6 अंक 2 ग्रीष्म 199
13. आजकल पत्रिका (मासिक), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली, नवम्बर, 2009
14. शिक्षक अभिव्यक्ति (वार्षिक), अंक 3-4, 2004-05
15. http://www.articlesphere.com/hi/Article/Impact-of-Globalisation-in-Education/229811.

❑ ❑ ❑

इकाई : 12 शान्ति शिक्षा
Peace Education

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

12.2 शान्ति शिक्षा के अर्थ (Meaning of Peace Education)

12.3 शान्ति शिक्षा की अवधारणा (Concept of Peace Education)

12.4 शान्ति शिक्षा की आवश्यकता (Need of Peace Education)

12.5 शान्ति शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Peace Education)

12.6 शान्ति शिक्षा की कार्यनीति (Strategies of peace Education)

12.7 सारांश (Summary)

12.8 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

12.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

12.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्र शिक्षक :

- शान्ति शिक्षा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- शान्ति शिक्षा की अवधारणा को जान सकेंगे।
- शान्ति शिक्षा के क्षेत्रों को बता सकेंगे।
- शान्ति शिक्षा के कार्यनीति की जानकारी दे सकेगे।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य हैं।

12.1 प्रस्तावना (Introduction)

शांति किसी देश की बुनियादी आवश्यकता है। देश के नागरिक खुद को तभी सुरक्षित महसूस कर सकते हैं, खुश रह सकते तथा समूह समृस कर सकते हैं, जब वातावरण शांतिमय हों। इस इकाई के अन्र्तगत शांति

शिक्षा के अर्थ तथा अवधारणा का विस्तार से चर्चा किया गया है। शांति शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों का भी वर्णन इस इकाई में किया गया है। शांति शिक्षा के विभिन्न कार्यनीतियों को भी इस इकाई के अन्तर्गत बतलाया गया है।

12.2 शान्ति शिक्षा के अर्थ (Meaning of Peace Education)

समाज में शान्ति तथा विकास के लिए उचित वातावरण के निर्माण में मूल्य तथा शांति आधारित शिक्षा की आवश्यकता है। इस कार्यो के लिए शिक्षा को सशक्त साधन माना गया है। शिक्षा से यह अपेक्षा की जाती है कि धार्मिक सद्भाव तथा आपसी भाईचारा के मूल्यों को प्रोत्साहित कर धार्मिक टकराव और अशान्ति के खतरा से राहत दिला सके। व्यक्तियों के आंतरिक आत्मा को बढ़ाने की कुंजी शिक्षा है। शिक्षा, राष्ट्रों तथा मनुष्यों को एक जुट कर रहा है। शांति को संस्कृति के रूप में निर्माण में शिक्षा के योगदान की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। शांति और गैर हिंसा की संस्कृति वर्तमान युग के भौतिक मानवाधिकार के अन्तर्गत आता हैं। शान्ति शिक्षा का अर्थ है शान्ति के लिए शिक्षा/नि:संदेह शिक्षा के माध्यम से शान्ति स्थापित करने के लक्ष्य की पूर्ति सत्यता से की जा सकती है। स्कूलों तथा कॉलेजों में विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा देने की आवश्यकता है जिससे उनमें आतंकवाद, हिंसा, विद्रोह जैसी अवांछनीय घटनाओं के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो तथा परस्पर सौहार्द। सह-अस्तित्व, सहयोग, सहिष्णुता एवं भाईचारा जैसे सकारात्मक गुणों का विकास हो सके। शान्ति के मूलभूत सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए एक सनियोजित तथा व्यापक कार्यन्वयन योजना को लागू करने की सख्त जरूरत है। किसी भी शिक्षा का उच्चतम उद्देश्य वातावर्ण में शांति पैदा करना है तथा प्रत्येक व्यक्तियों में इस आवश्यक मूल्य को सिखाना है। माता-पिता, बच्चों के पहले शिक्षक हैं और परिवार में शांति बनाए रखना तथा शांति के संस्कृति का निर्माण करना उनका दायित्व है। परिवार में सिखाया गया शांति विद्यालय में और अधिक मजबूत होता है। व्यावहारिक और अध्यात्मिक मूल्यों के साथ शांति एक व्यापक अवधारणा है। यह आंतरिक शांति तथा संघर्षो के अंत की स्थिति को दर्शाता है। शांति शिक्षा एक उचित शिक्षण और सीखने की रणनीति के माध्यम से असमानता, अशान्ति तथा मानवाधिकार ''उल्लंघन को कम करने का तरीका है। इस शिक्षा के माध्यम से जिम्मेदार वैश्विक नागरिकों के निर्माण द्वारा संघर्ष और हिंसा को नष्ट कर विश्व में शांति फैलाने की योजना है। शांति शिक्षा की कोई सार्वभौमिक परिभाषा नही है पर इस संबंध में कुछ धारणा तथा दृष्टिकोण निम्नलिखित हैं :-

फीचर (2006) : शांति शिक्षा, चेतना के विकास को बढ़ावा देने का प्रयास किया है जो हमे वैश्विक नागरिक के रूप में कार्य करने तथा सामाजिक संरचनाओं तथा विचारों को मानव स्थिति के अनुसार बदलने में सक्षम बनाता है। शांति शिक्षा एक वैश्विक, राष्ट्रीय से लेकर स्थानीय तथा व्यक्तिगत रूप तक हिंसा तथा संघर्षो की समस्यओं को खत्म करने का प्रयास है।

जान डेवी के अनुसार - "शांति शिक्षा सक्रिय नागरिकता पर आधारित एक प्रक्रिया है जो लोकतंत्र में प्रभावी भागीदारी के लिए छात्रों की तैयारी/समस्या सुलझाने की शिक्षा तथा समाज में परिवर्तनवादी कार्रवाई के प्रति प्रतिबध्ता के गुणों का विकास करवाएँ।"

इन परिभाषाओं से यह पता चलता है कि शांति शिक्षा व्यक्तियों में उच्चतर मानव मूल्यों को पैदा करता हैं। अत: शांति शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों का समग्र विकास करना तथा उनके शाश्क्त मूल्यों को बढ़ाने में मदद करना है।

12.3 शांति शिक्षा की अवधारणा (Concept of Peace Education)

शान्ति शिक्षा की अवधारणा सकरात्मक तथा नकरात्मक शांति के संदर्भ में दिया जाता हैं। नकारात्मक शान्ति का अर्थ युद्ध, भौतिक तथा प्रत्यक्ष हिंसा की अनुपस्थिति है जबकि सकरात्मक शांति का संबंध सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय तथा गैर शोषण संबंधो से है। शिक्षाविदों के मुताबिक शांति की शिक्षा में विविध मुद्दों को शामिल किया गया है। उदाहरण संबंध, आर्थिक अभाव, विकास, पर्यावरण, संसाधन का उपयोग, सार्वभौमिक मानवाधिकार तथा सामाजिक न्याय इत्यादि। छात्रों को संघर्ष तथा हिंसा से बचने का ज्ञान देना चाहिए। शान्ति की शिक्षा का लक्ष्य देश, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय अपील के सारांश जो कहता है कि शांति की संस्कृत, वैश्विक समस्याओं की समझ संघर्ष को हल करने का कौशल तथा रचनात्मक रूप से मानवाधिकार, लिंग और नस्लीय समानता के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुसार जीने से हासिल होगी।

जिनेवा (1994) में आयोजित शिक्षा के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के 44वें सत्र में शांति शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य सूचीबद्ध किए गये।

(i) प्रत्येक व्यक्ति में सार्वभौमिक मूल्यों की भावना विकसित करना।

(ii) व्यक्ति को मुश्किल तथा अनिश्चित परिस्थितियों से निपटने और व्यक्तिगत स्वायत्ता और जिम्मेदारी के लिए उपयुक्त बनाने के लिए तैयार करना।

(iii) व्यक्ति को शिक्षित करने और व्यक्तियों की विविधता में मौजूद मूल्यों को पहचानने और स्वीकार करने की क्षमता विकसित करना।

(iv) व्यक्तियों के बीच शांति, दोस्ती और एकता मजबूत करने के लिए।

(v) अहिंसक संघर्ष की क्षमता विकसित करने के लिए।

(vi) सांस्कृतिक विरासत का सम्मान करने के लिए नागरिकों को सिखाना, पर्यावरण और सामाजिक सद्भाव की रक्षा करना।

(vii) व्यक्तियों में अहिंसक संस्कृति की क्षमता विकसित करना।

(viii) समग्र, संतुलित तथा दिर्घकालिक विकास के लिए राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करना।

(ix) व्यक्तियों में एकता और प्रेम की भावना विकसित करना।

इसलिए शांति शिक्षा का उद्देश्य विभिन्न विषयों पर आधारित है। शांति और शिक्षा सभ्यता के अलग-अलग पहलुओं पर आधारित होता है। शिक्षा में बदलाव लाकर विश्व को सार्वभौमिक सिद्दान्त अर्पीत मानवीय मूल्यें पर आधारित बनाना। दुनिया को एक बेहतर और अधिक मानवीय स्थान बनाने के लिए बदलावों को बढ़ावा देना। अत: शांति शिक्षा आपसी सहअस्तित्व के लिए एक समावेशी दृष्टिकोण और एक समग्र जीवन शैली के लिए वकालत करता है। शिक्षा प्रणाली में हर स्तर पर शांति शिक्षा को सभी पाठ्यक्रम की सामग्री में लागू करने की आवश्यकता है। शिक्षा के माध्यम से समान अवसरों को बढ़ावा देने के लिए सभी तरह के बच्चों जैसे पिछड़े, वंचित तथा विकलांगों सहित सभी छात्रों के लिए शांति शिक्षा को व्यापक बनाना चाहिए।

12.3.1 शांन्ति शिक्षा संस्थानों की स्थापना (Establishment of Peace Educatiion)

शांति शिक्षा के लिए विश्व में बहुत सारे संगठनो का गठन हुआ जो दुनिया भर में शांति को बढ़ावा दे

रहे हैं। कुछ महत्वपूर्ण संस्थान निम्न हैं:-

1. **संयुक्त राष्ट्रसंघ (United Nation Organisation 'UNO')** : अक्टूबर, 1945 में यह संस्थान 51 देशों के शांति बनाने की सहमति के साथ अस्तित्व में आया। वर्त्तमान में विश्व के अधिकांश देश इसके सदस्य हैं। इनकी संख्या औपचारिक रूप से 193 तथा सदस्य पर्यवेक्षक स्थिति में हैं। इस संगठन का मुख्य कार्य विश्व स्तर पर राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुसार शिक्षा-प्रसार, प्रकृति-संरक्षण और सामाजिक विज्ञानों के विकास के लिए प्रयत्न करना है। साथ ही सांस्कृतिक मूल्यों के उत्थान एवं संचार के साध नों द्वारा विश्व शान्ति की दिशा में किये जाने वाले प्रयासों को प्रोत्साहित करना भी है। विशेष रूप से विश्व शान्ति सहयोग, सौहार्द और मातृत्व-भावना को अधिकाधिक विकसित कर विश्व को सुरक्षित तथा विकास मुख बनाए रखना है । संयुक्त राष्ट्र, संघ के मूल उद्देश्यों के अन्तर्गत लोगों को न्याय, मानवाधि कार, समानता तथा स्वतंत्रता को वास्तवकि परिधि में लाना है।

2. **संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सास्कृतिक संगठन (United Nations Educational, Scientific and cultural organisation - UNESCO)** : यह संयुक्त राष्ट्र का ही एक घटक निकाय है। 1945 में इसकी स्थापना हुई है। इसका उद्देश्य शिक्षा एवं संस्कृति के अंर्तराष्ट्रीय सहयोग से शांति एवं सुरक्षा की स्थापना करना है ताकि विश्व में न्याय, कानून का राज, मानवाधिकार तथा मौलिक स्वतंत्रता हेतु वैश्विक सहमति बन पाए। वर्तमान यूनेस्को के 195 सदस्य देश, 07 सहयोगी देश तथा 2 देश पर्यवेक्षक सदस्य देश हैं। यूनेस्को का कार्य शांति शिक्षा के संबंध में बहुत महत्वपूर्ण है। यह संगठन सामाजिक न्याय, समानता, आजीविका और मानवाधिकार की सुरक्षा तथा सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण में कार्य करके शांति शिक्षा में योगदान करता है।

2. **दक्षिण एशियाई सहयोग संगठन (South Asian Association for regional cooperation-SAARC)** : यह आठ देशों का आर्थिक तथा राजनीतिक संगठन है। इसकी स्थापना 1985 में हुआ है। इसका मुख्यालय काठमाण्डु, नेपाल में स्थित है।

   यह संगठन शांति और सहयोग की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस संगठन का उद्देश्य है देशों के बीच शांति, स्वतंत्रता, समाजिक न्याय, आर्थिक समृद्धि, आपसी सूक्षबूझ पड़ोसियो के साथ अच्छे संबंध और सार्थक सहयोग से ही प्राप्त किये जा सकते है।

4. **एमनेस्टी इन्टरनेशनल (Amnesty International)** : इस संगठन की शुरूआत 1961 में ब्रिटेन में की गई थी। यह संगठन अन्तराष्ट्रीय मानवाधिकारों की सुरक्षा पर जोर देता है। यह महिलाओ के खिलाफ हिंसा रोकने, गरीबो को अधिकार देने, मौत की सजा को खत्म करने तथा शरणार्थियों एवं प्रावासियों के अधिकारो की रक्षा करने की वकालत करता है।

5. **नोबेल शांति पुरस्कार (Nobel Peace Prize)** : यह पुरस्कार लोगों को उनके शांतिपूर्ण कार्यो के लिए दिया जाता है। इस पुरस्कार की शुरूआत अलफ्रेड नोबेल नामक एक प्रसिद्ध व्यक्ति ने की थी। भारत में मदर टेरेसा तथा कैलाश सत्यार्थी को नोबेल शांति पुरस्कार दिया गया है।

6. **अन्तराष्ट्रीय शांति ब्यूरो (IPB)** : यह संगठन युद्ध रहित विश्व के दर्शन के साथ स्थापित किया गया है। यह 70 देशों में एक वैश्विक नेटवर्क से समस्याओं का समाधान करता है।

7. **शांति के लिए हेग अपील** : यह संगठन हेग अपील के नाम से विख्यात है। हेग अपील मुद्दो के उन्मूलन तथा शांति को मानवीय अधिकार बनाने के लिए समर्पित संगठनो तथा व्यक्तियो का एक

अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य नस्लवाद, लिंग असमानता, सामुदायिक हिंसा, मानव अधिकारो का उल्लंघन तथा गिरावट की चुनौतियो का सामना करने की कार्य योजना का निर्माण करना हैं।

8. **नेशनल पीस फांण्डेशन (NPF)** : इसकी शुरूआत 1975 ई० में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य यूरेशिया, माध्यपूर्व तथा अफ्रिका देशों में समुदाय तथा नागरिको को सशक्त बनाना हैं। यह संगठन नागरिक समाज के संस्थानो का निर्माण, संवाद, बातचीत तथा लोगों की मदद करने के लिए प्रतिबद्ध है।

9. **कार्टर सेंटर (The carter centre)** : कार्टर सेंटर दुनिया के सभी देशें में शांति तथा स्वास्थ्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह संगठन मानवाधिकारों के कार्यान्वयन, चुनावों की निगरानी तथा मानवाधिकार की सुरक्षा को देखता है।

   "Need of Peace Education are holistic, Participating, cooperative, experiential and human."

12.4 शांति शिक्षा की आवश्यकता (Need of Education)

आज के ग्लोबलाइजेशन युक्त डिजिटल युग में संपूर्ण विश्व एक शहर की तरह है। शिक्षा राष्ट्रों को एक दूसरे के करीब लाकर खड़ा कर दिया है। इस समय भी दुनिया के कई हिस्सों में नागरिक हिंसक संघर्षो तथा युद्ध की परिस्थिति से जूझ रहे हैं। शांति की संस्कृति निर्माण में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। अत: शांति शिक्षा आज की जरूरत है। शांति शिक्षा के मुख्य निम्नलिखित आवश्यकताएँ हैं :

1. संघर्षो के अहिंसक समाधान ढूढ़ने के लिए व्यक्तियों को प्रेरित करना।
2. व्यक्तियों के अन्तर आत्मा को जगा कर राष्ट्रों को एकजुट करने की संस्कृति का निर्माण।
3. शांति, सहनशीलता तथा सहायता का पाठ पढ़ाकर सभी व्यक्तियों के लिए एक उन्नत और खुशहाल समाज का निर्माण।
4. सत्यम, शिवम और सुन्दरम आधारित शिक्षा का प्रसार।
5. शांति और अहिंसा की संस्कृति का विस्तार।
6. छात्रों को अच्छे नागरिक बनने की शिक्षा देना।
7. मानवाधिकार का प्रचार या प्रसार करना।
8. अन्याय और असमानता के विरूद्ध विचार पैदा करना।
9. जिम्मेदार वैश्विक नागरिकों का निर्माण करना।
10. नैतिक तथा सामाजिक मूल्यों का निर्माण करना।
11. जीवन तथा मानवीय मूल्यों के प्रति आदर की भावनाओं का निर्माण।
12. व्यक्तियों के बीच स्वतंत्रता, न्याय सदभाव तथा प्रेम के सिद्दान्तो की समझ विकसित करना।
13. महिलाओं तथा बच्चों के प्रति आदर का भाव पैदा करना।
14. व्यक्तियों में शांति के प्रति घनात्मक मनोवृति, कौशल तथा व्यवहारों का अभ्यास।

15. छात्रों में क्रियाओं के द्वारा शांति के दर्शन का विकास।

15. We do not need guns and bombs to bring peace, we need love and compassion

— Mother Teresa

एक ऐसे विश्व का निर्माण जिसमें युवा और बच्चे शांतिपूर्वक, स्वरूप सुरक्षित तथा एकजुट होकर रहें।

16. एकजुट विश्व का निर्माण जिसमें वर्त्तमान तथा भविष्य में आनेवाले पीढ़ियों का अस्तित्व सुरक्षित हो।

17. समस्याओं से ग्रसित सभी व्यक्तियों को गुणवत्ता पूर्ण, सुरक्षित तथा सापेक्षिक शिक्षा देने की कोशिश करना।

उपर्युक्त बिन्दुओं के अवलोकन के बाद यह स्पष्ट दिखता है कि शांति शिक्षा आज के समाज की आवश्यकता है। उपर्युक्त बिन्दुओं को विभिन्न कारणों में बाँटा जा सकता हैं जो निम्नलिखित हैं :-

12.4.1 आदर्शवादी मूल्यों के विकास के लिए (For the Development of Idealistic Values)

जीवन में वर्त्तमान समाज में आदर्शवादी मूल्य लगभग समाप्त हो गया है। व्यक्ति आज खुलेआम अपनी स्वार्थ आदर्शो से समझौता करता है। इस कारण समाज में पूरी तरह अराजक्ता की स्थिति उत्पन्न हो गई है। चारो तरफ भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार तथा अशान्ति है। आदर्शवादी शिक्षा एवं मूल्यों के विकास से मानव समाज में शान्ति की स्थापना की जा सकती है। इसलिए शान्ति शिक्षा के द्वारा विलुप्त हो चुके आदर्शो को पुनः स्थापित किया जाना आवश्यक है जिससे प्राथमिक स्तर से ही बच्चों को आदर्श एवं मूल्यों के प्रति संवेदनशील बनाया जा सके।

12.4.2 जीवन कौशलों के विकास के लिये (For the Development of the Life Skills)

जब मनुष्य के पास किसी तरह का कौशल नहीं रहता है तो उसका व्यवहार अशांति उत्पन्न करने वाला होता है। प्रत्येक मानव का व्यवहार विभिन्न प्रकार का होता है। उसे उचित एवं सार्थक रूप में कौशल द्वारा परिवर्तित करना सरलता का ही कार्य होता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि बहुत सारे समस्याओं का कौशलों के द्वारा सामााधान किया गया है। अतः विभिन्न कौशलों के आधार पर जीवन को अधिक सुगम बनाया जा सकता है ताकि वातावरण में शांति हो। जीवन संबंधी कौशल जैसे घर साफ करना, खाना-बनाना, कपड़ा साफ करना तथा कपड़े की मरम्मत करना इत्यादि। प्राथमिक स्तर से ही शान्ति शिक्षा द्वारा बच्चों के व्यक्तित्व में शामिल किया जा सकता है। बालकों के विकास के साथ-साथ विभिन्न कौशल वृद्दि को प्राप्त किया जा सकता है ताकि समाज में चारों ओर शान्तिप्रद एवं सुखद वातावरण का सृजन होता रहे ।

12.4.3 नैतिक मूल्यों के विकास के लिए (For the Development of Moral Behaviour)

शान्ति शिक्षा की आवश्यकता अनैतिकता की समाप्ति तथा नैतिक व्यवहार के उदय के लिए आवश्यक है। वर्त्तामान समय में मानव में नैतिकता पूरी तरह से खत्म हो चुकी है। व्यक्ति सामाजिक तथा मानसिक संबंधों को भूलकर सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए कार्य करता है जिससे समाज में अशान्ति उत्पन्न होती है। शान्ति शिक्षा के द्वारा बच्चो में नैतिक विकास किया जाता है ताकि समाज में शान्ति और सद्भाव कायम रहे। बच्चे बड़े

होकर केवल अपने स्वार्थ में न डूबकर मानवता तथा समाज के प्रति समर्पित हो सके।

12.4.4 सामाजिक मूल्यों के विकास के लिए (For the Development of Social Values)

वर्त्तमान समाज में अराजकता का सम्राज्य है क्योकि व्यक्ति सिर्फ अपने विषय में सोच रहा है। इसलिए बच्चों में सामाजिक गुणो के विकास के लिए शान्ति शिक्षा आवश्यक है जिससे समाज में शान्ति स्थापित की जा सके। शान्ति शिक्षा के द्वारा व्यक्ति सार्वजनिक हित के विषय में सोच पाता है तथा सामाजिक वातावरण में प्रेम और सौहार्द कायम किया जा सकता है ।

12.4.5 चारित्रिक विकास के लिए (For Character Development)

अच्छे चरित्र के लिए शांति शिक्षा आवश्यक है क्योंकि जब व्यक्ति चरित्रहीनता से ग्रसित होता है तो उसका प्रत्येक कार्य सामाजिक अशान्ति उत्पन्न करता है। शान्ति शिक्षा व्यक्ति में सर्वप्रथम चारित्रिक गुणों का विकास करती है तथा व्यक्ति को उसके दायित्व एवं व्यवहार के लिए आदर्श दिशा निर्देश प्रदान करती है। इस प्रकार बच्चो में प्रारंभ से ही यह शिक्षा चारित्रिक गुणो से सम्पन्न कर देती है। अतः चरित्रवान नागरिकों द्वारा समाज में प्रेम तथा शान्ति के वातावरण का निर्माण किया जाता है।

12.4.6 सामाजिक एकता के विकास के लिए (For the Development of Social Unity)

सामाजिक एकता के लिए भी शान्ति शिक्षा आवश्यक है। इसके माध्यम से बालकों में वाद-विवाद उत्पन्न नहीं होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण समाज कलह एवं विवाद के स्थान पर एकता के सूत्र में बंधे होते हैं।

12.4.7 पर्यावरणीय प्रेम के लिए (For the Environmental Love)

पर्यावरण संरक्षण आज के समाज की प्रमुख आवश्यकता है। शांति शिक्षा द्वारा छात्रों में पर्यावरण के प्रति प्रेम तथा उसका महत्व बतलाया जाता है जिससे वे पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूक हो सके। पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने में सहायक हो सके क्योकि शान्ति शिक्षा के अभाव में व्याक्ति पर्यावरणीय संसाधनो का व्यापक रूप से दोहन करता है, जिससे पर्यावरणीय असन्तुलन होता है। यह असन्तुलन सम्पूर्ण मानव समाज के लिए विधवन्सकारी सिद्द हो रहा है।

शान्ति शिक्षा मानव में प्राकृतिक संसाधनो तथा पर्यावरणीय प्रेम के प्रति सकरात्मक भाव उत्पन्न करती है, जिससे एक तरफ पर्यावरण संरक्षण को बल मिलता है और दूसरी ओर समाज में शान्ति स्थापित होता है।

12.4.8 सामाजिक न्याय के विकास के लिये (For the Development of Social Justice)

वर्त्तामान समाज में बहुत सारे विकास के बावजूद सामाजिक भेदभाव अक्सर देखने को मिलता है। अनेक दलितो एवं गरीबों को विकास के अवसर तथा उनका अधिकार उनको नहीं प्राप्त होता है। अक्सर उनके साथ अन्याय का व्यवहार देखने को मिलता है। इन सब स्थिति में शांति शिक्षा का योगदान महत्वपूर्ण हो सकता है। यह शिक्षा प्राथमिक स्तर से ही बच्चों में समानता तथा निस्पक्षता का भाव उत्पन्न करती है, जिससे बालकों के मन में ऊँच नीच का भावना समाप्त हो जाती है। इस प्रकार समाज में प्रत्येक व्यक्ति को विकास के समान अवसर प्राप्त होते है तथा वे अपने आधिकारों का प्रयोग अपने जरूरत के हिसाब से कर सकेंगे। इससे समाज में सभी व्यक्तियों को सामाजिक न्याय प्राप्त होता है तथा सामाजिक अन्याय तथा अशांति पैदा नहीं होता है।

अत: सामाजिक न्याय के लिए शांति शिक्षा आवश्यक है।

12.4.9 वैश्विक विकास के लिए (For Global development)

शान्ति शिक्षा के मूल में सर्वे भवन्तु सुखिन: तथा वसुधैव कुटुम्कम का भाव समाहित है। इस शिक्षा के द्वारा बच्चों को प्राथमिक स्तर से ही विचार को इतना व्यापक बना दिया जाता है कि वह सभी व्यक्तियों की जरूरत तथा भावना को समझ पाता है। इस प्रकार की भावना जब शान्ति शिक्षा के माध्यम से सम्पूर्ण मानव समाज में विकसित हो जाती है तो वैश्विक विकास का मार्ग प्रशस्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण विश्व में प्रेम एवं सौहार्द्र का वातावरण उत्पन्न होता है। अत: विश्व के मानवों के सर्वागीण विकास के लिए शांति शिक्षा आवश्यक है।

12.4.10 वैश्विक संस्कृति के विकास के लिए (For the Development of Global Culture)

समाज में रूढिवादिता एवं अंधविश्वासों का बोलबाला है। शान्ति शिक्षा के माध्यम से छात्रों में प्राथमिक स्तर से ही रूढ़िवादिता एवं अंधवश्विासो के प्रति नकारात्मक भाव विकसित किया जा सकता है। फलस्वरूप बच्चों में स्वस्थ एवं उपयोगी परम्पराओं के प्रति सकरात्मक दृष्टिकोण विकसित किया जाता हैं। इससे कुछ ऐसे सांस्कृतिक तत्वों का विकास होता है जो कि समग्र रूप से सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार किये जाते हैं। दहेज प्रथा, बाल-विवाह, कन्या भ्रूण की हत्या, तथा बलि प्रथा इत्यादि का सम्पूर्ण संसार में विरोध किया जाता है तथा सत्य, अहिंसा, नैतिकता एवं मानवता संबंधी परम्पराओं का स्वागत संपूर्ण संसार में किया जाता है। अत: शांति शिक्षा के द्वारा वैश्विक संस्कृति का विकास किया जा सकता हैं। अत: शांति शिक्षा बहुत आवश्यक है।

12.4.11 अन्तर्राष्टीय शान्ति के लिए (For the International Peace)

शान्ति शिक्षा का महत्व व्यापक तथा संपूर्ण विश्व को प्रभावित करने वाला है। सत्य, अहिंसा तथा वैदिक साहित्य की चर्चा सम्पूर्ण विश्व में होती है क्योकि उपर्युक्त बातों में शान्ति की भावना समाहित है तथा विवाद एवं अशान्ति का कोई स्थान नहीं है। शान्ति शिक्षा के माध्यम से विश्व के मानवों तथा संस्कृति के प्रति आदर उत्पन्न कर विश्व को एक परिवार के रूप में समझने का कौशल विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार की भावनाओं को यदि संपूर्ण विश्व के छात्रों में प्राथमिक स्तर से ही विकसित कर दी जाये तो विश्व एक परिवार जैसा होगा तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रेम तथा भाईचारा का भाव उत्पन्न होगा तथा विश्व में संपूर्ण शांति होगा।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि शान्ति शिक्षा वर्त्तमान समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। शान्ति शिक्षा संबंधी क्रियाओं एवं गतिविधियाँ सम्पूर्ण समाज तथा विद्यालय में प्रचलित होनी चाहिए ताकि समाज में व्याप्त अशान्ति, भ्रष्टाचार, भेदभाव तथा स्वार्थलोलुपता का अन्त हो सके। अत: प्राथमिक स्तर से ही अनिवार्यता के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं हैं। जिस प्रकार समाज के विकास के लिए विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता है उसी प्रकार शान्ति शिक्षा की भी आवश्यकता है। शान्ति शिक्षा के अभाव में व्यक्ति तथा विश्व के विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

12.5 शांति शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Peace Education)

शांति शिक्षा, विद्यार्थियों को मूल्यों, कौशलों तथा व्यवहारों के प्रति जागरूक करता है। विश्व में शांति,

अहिंसा तथा सदभाव को बढ़ावा दें। शांति शिक्षा का क्षेत्र बहुत व्यापाक हैं। मुख्य क्षेत्र निम्न हैं :-

1. शांति के लिए शिक्षा (Education for Peace) : शांति की संस्कृति का विकास करना।
2. आलोचनात्मक शांति शिक्षा (Critical Peace Education)
3. निरस्त्रीकरण शिक्षा (Disarmament Education)
4. मानवाधिकार शिक्षा (Human Rights Education)
5. वैश्विक नागरिक शिक्षा (Global Citizenship Education)
6. संस्कृतिक शिक्षा (Multiculteral Education)
7. लिंग तथा शान्ति शिक्षा (Gender and Peace Education)
8. पर्यावरण संबंधी शिक्षा (Environmental Education)
9. संघर्ष समाधान शिक्षा (Conflict Resolution Education)
10. भविष्य की शिक्षा (Future Education)

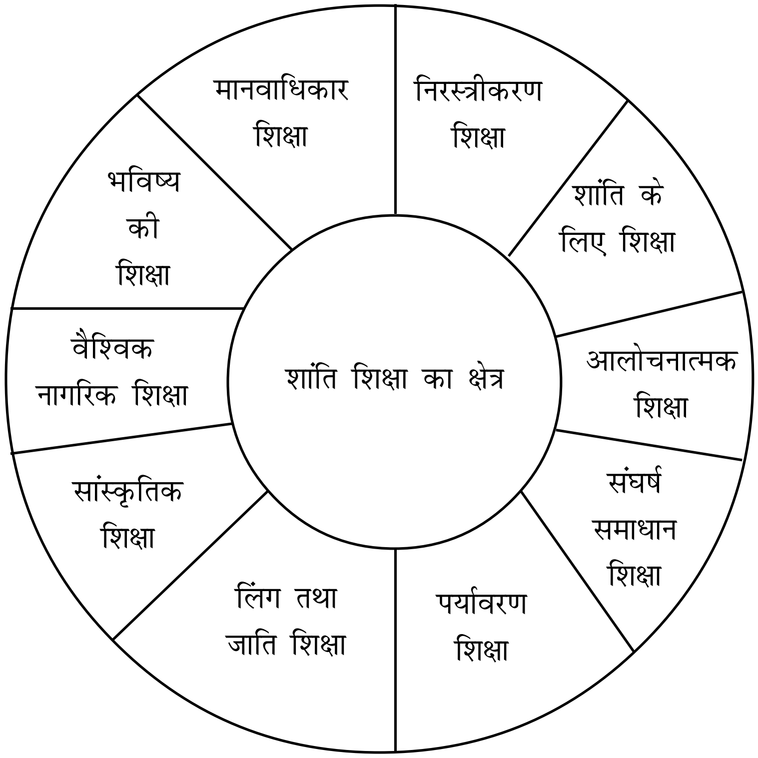

शांति शिक्षा का क्षेत्र

12.5.1 शांति के लिए शिक्षा (Education for Peace)

शिक्षा के क्षेत्र के अन्र्तगत शांति शिक्षा का क्षेत्र बहुत महत्वपूर्ण है। शांति के लिए शिक्षा के अन्र्तगत बालक के मन मस्तिस्क में शान्ति एवं अहिंसा की भावना का बीज रोपित कर सम्पूर्ण विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया जा सकता है। जहाँ समाज में इन वस्तुओं के लिए झगड़ा तथा कलह होता है, उस समाज मे इन वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं होगा क्योंकि व्यक्ति में त्याग की भावना का समावेश हो जायेगा। व्यक्ति अपने लिए न जीकर समाज के लिए जीवन जी सकेगा। अत: शान्ति के लिए शिक्षा के अन्र्तगत आदर्शवादी मूल्यों का विकास, सामाजिक मूल्यों का विकास, नैतिक विकास तथा चारित्रिक विकास पर अधिक जोर दिया जाता है।

12.5.2 समीक्षात्मक शान्ति शिक्षा (Critical Peace Educatiion)

आलोचनात्मक शान्ति शिक्षा के अन्र्तगत शिक्षा में आलोचनात्मक विषय वस्तु का विश्लेषण तथा उसका उपयोग बतलाया गया है। शिक्षा देने के क्रम में बहुत सारी सामाजिक क्रियाकलाप का उपयोग किया जाता है। इन क्रियाकलापों की आलोचनात्मक व्याख्या होनी चाहिए ताकि बच्चे समाज में हो रहे अशान्ति के कारकों को पहचान सके। आलोचनात्मक विषय के पीछे उद्देश्य यह होता है कि बच्चे राजनीतिक न्याय, सामाजिक क्रियाकलाप तथा सरकारी चिन्ता के प्रति जागरूक हो सके। किसी भी समाज की सबसे बुरी बात है बच्चो के मन ऋणात्मक भावों का उदभव। अत: प्रत्येक छात्र को बचपन से ही सभी क्रिया कलापो का आलोचनात्मक विश्लेषण करना आवश्यक है ताकि बच्चे में आलोचनात्म्क चिन्तन का विकास जैसे तथ्य विचार तथा आस्था में अन्तर करने की योग्यता ।

12.5.3 निरस्त्रीकरण शिक्षा (Disarmesment Education)

यह शांति शिक्षा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है । हमारे देश में कई संस्थान शांति संबंधी गाँधीवादी विचारों के प्रोत्साहन के लिए काम कर रहे हैं, जैसे - गाँधी शांति प्रतिष्ठान, गाँधी अध्ययन संस्थान तथा दर्शन समिति इत्यादि । अहिंसा, शांति तथा द्वन्द (conflict) से लड़ने की एक सांस्कृति परम्परा रही है जो विश्व के अन्य हिस्सों में भी शांति तथा अहिंसा की वकालत करती है । शांति और निरस्त्रीकरण शिक्षा संयुक्त राष्ट्र के निरस्त्रीकरण मामलों के विभाग और शांति के लिए हेग अपील के द्वारा संचालित है । न्यूयॉर्क स्थित दी अर्थ एंड पीस (ई.पी.ई.) एक अन्य संगठन है जो शांति से संबंधित बुनियादी मूल्यों - मसलन अहिंसा, सामाजिक न्याय, समता तथा निर्णय सहभागिता को बढ़ावा देता है । निरस्त्रीकरण शिक्षा द्वारा विश्व में अस्त्रों की होड़ को कम किया जा सकता है । निरस्त्रीकरण को मानवाधिकार पर्यावरण तथा सामाजिक न्याय के संदर्भ में भी देखने की आवश्यकता है ।

12.5.4 मानवाधिकार शिक्षा (Human Right Education)

मानवाधिाकार शिक्षा के अन्तर्गत व्यक्ति के गरिमा, समानता, न्याय, व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा तथा भाषण, अभिव्यक्ति तथा आस्था की स्वतंत्रता पर बल दिया जाता है ताकि व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान यिका जा सके । यह शिक्षा मानव गरिमा तथा समानता की वकालत करता है । इस क्षेत्र के द्वारा विभिन्न मूल्यों का विकास किया जाता है, मसलन - सहिष्णुता, समानता तथा मित्रता की समझ । इस शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत स्तर पर बच्चों के मूल्यों का विकास, मनोवृति बदलाव तथा ऐसे कौशलों का विकास जो मानवाधिकार

के मूल्यों में अपना योगदान दे सके । मानवाधिकार शिक्षा ऐसी शिक्षा है जो मानवाधिकार के आलेख, प्रक्रिया तथा शब्दावली की जानकारी देता है । यह एक ऐसे स्वतंत्र समाज की व्याख्या करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अधिकार के साथ गरिमामय जिन्दगी जी सके । प्रत्येक व्यक्ति को अपने मानवाधिकार की समझ हो तथा उन्हें ये भी पता हो कि उनको जो अधिकार मिले हैं वो सार्वभौमिक (Universal), संपूर्ण (Integral) तथा अटल (Irrevocable) है । प्राथमिक स्तर से ही मानवाधिकार तथा सामाजिक समस्याओं को जोड़कर बताने की आवश्यकता है ताकि बच्चे मानवाधिकार को मौलिक नीतियों की तरह स्वीकार करे । मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा पत्र (Universal Declaration Human Rights (UDHR)) के मौलिक सिद्धांत हैं - समानता, सार्वभौमिकता, भेदभाव रहित, व्यक्तिगत (नागरिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृति अधिकार) तथा उत्तरदायित्व । उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट है कि मानवाधिकार भी शिक्षा का ही क्षेत्र है । इन विषयों को विद्यालय में प्राथमिक स्तर से ही रखना चाहिए ताकि बच्चों मे इन मूल्यों का बीजारोपण हो सके ।

12.5.5 वैश्विक नागरिक शिक्षा (Global Citizenship Education)

यह शांति शिक्षा का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। शांति शिक्षा के उद्देश्य में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना अर्न्तनिहित होती है। इसके द्वारा व्यक्ति के विचार इतने व्यापक हो जाते हैं कि वैश्विक विकास तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना विकसित हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व में प्रेम तथा सौहार्द्र का वातावरण उत्पन्न होता है तथा संपूर्ण विश्व को एक परिवार की तरह विकसित करने में सफलता प्राप्त हो सकती है। वैश्विक नागरिक शिक्षा का महत्व ग्लोबलाइजेशन के दौड़ में और भी बढ़ गया है। आप विश्व के सभी व्यक्ति वैश्विकरण (Globalisation) के कारण एक दूसरे के बहुत करीब आ गये है। पहले शिक्षा के अर्न्तगत राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति का ही पाठ पढ़ाया जाता था लेकिन आज के संदर्भ में देश का नागरिक विश्व का नागरिक बन चुका है। बच्चों को विश्व के विविधताओं (Diversities) विभिन्न स्तरों पर दिखता है उसे समझना तथा उसका आदर करना सीखना होगा। वैश्विक नागरिक शिक्षा के अर्न्तगत शांति तथा संघर्ष का अध्ययन, वैश्विक नागरिक कौशल, आलोचनात्म्क चिन्तन, विविधता, संधारणीय विकास (Sustainable development), ग्लोबलाइजेशन तथा परस्पर निर्भरता, संघर्ष, समाधान, वाद-विवाद, दूसरे देश के धर्म तथा संस्कृति के प्रति आदर तथा विवादित तथ्यों का अध्ययन करना इत्यादि आता है।

12.5.6 बहुसांस्कृतिक शिक्षा (Multicultural Education)

आज के ग्लोबलाइजड विश्व में अलग-अलग संस्कृति के लोग तेजी से एक दूसरे के करीब आ रहे हैं। संस्कृति से संबंधी विविधता लोगों को एक दूसरे को समझने का मौका देता है तथा अलग-अलग कार्यो और पद्दतियों को सीखने का भी मौका देता है। लोग एक दूसरे के संस्कृति को अपनाते है, समझते है तथा आनंद लेते हैं। कभी-कभी इस तरह की परिस्थिति संघर्ष को भी जन्म देती है।

मिखाइल गोर्वोजोब ने कहा हैं : "Peace is not unity in similarity but unity in diversity, in the comparison and consiliation of differences".

अतः बहुसंस्कृति शिक्षा विविधता में एकता की वकालत करता है। इसको विभिन्न जीवन शैली के रूप में भी देखा जा सकता हैं। बहुसंकृतिक दर्शन विभिन्न संस्कृयितों के समावेशन (Assimilation) तथा एकीकरण (Integration) पर आधारित हैं। बहुसंस्कृतिक शिक्षा के अर्न्तगत वैश्विक संदर्भ में शांति को महत्व देना है। अंतर्राष्ट्रीय सहकारिता तथा सहयोग से ऐसी न्यायपूर्ण विश्व व्यावस्था की रचना करना है। बहुसंस्कृतिक शिक्षा

की विशेषता है सभी की अवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धरती के संसाधनों को साझा करने की इच्छा और पहल की संस्कृति का विकास करना। बहुसंस्कृतिक शिक्षा के सिद्दान्त के अर्न्तगत सांस्कृतिक अनेकता (Cultural pluralism), सामाजिक न्याय (Social justice) के अर्न्तगत सभी तरह के भेदभाव का अन्त (जैसे-नस्लवाद, रंगभेद) तथा समानता की भावना का विकास किया जाना है।

12.5.7 लिंग तथा शांति शिक्षा (Gender and Peace Education)

The only way to solve the problem of women's subordination is to change people's mind set and to plant the new idea of gender equality into every mind – **Qingrong Ma**

वर्त्तमान समाज मे विकास के बावजूद लिंग विभेद एक सामान्य घटना है। इसका उदाहरण घर से लेकर समाज तक दिखता है। विश्व की लगभग आधी आबादी के साथ यह भेदभाव विश्व के भविष्य के लिए अच्छी नहीं है। लिंग पर आधारित भेदभाव तथा अयोग्ताएँ व्यवस्थागत अन्याय के रूप में गरीबी के कारण और भी विकृत होकर लाखों बच्चों को स्कूली शिक्षा तथा सम्मान पाने के अधिकार से वंचित करते आाये हैं। लिंग आधारित अन्याय और भेदभाव शिक्षा के मौलिक अधिकार को भी नष्ट कर रहा है। इन कमियों को दूर करना शांति शिक्षा की कार्य सूची में सबसे ऊपर है। शांति शिक्षा में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। समाज में महिलाएँ शांतिदूत के रूप में कार्य करती हैं। अत: महिलाओं के इस गुण को पहचाना बहुत जरूरी है। महिलाओं के प्रति हिंसाओं को तुरन्त रोकने की आवश्यक्ता है। अत: प्राथमिक स्तर से बच्चो में महिलाओं के प्रति समानता तथा आदर का भाव उत्पन्न करना होगा ताकि लैगिक भेदभव के कारण समाज में अशन्ति न हो।

12.5.8 पर्यावरणीय शिक्षा (Environmental Education)

आज पर्यावरण खतरे में है साथ ही व्यक्ति का अस्तित्व भी। पर्यावरण संकट के कारण चारों तरफ अशान्ति का माहौल है। कहीं अतिवृष्टि है तो कही अकाल है। बहुत सारे जीवों की प्रजाति विमुक्त हो चुकी है, तो कुछ खतरे में है। पर्यावरण असंतुलन स्पष्ट दिख रहा है। अत: शांति शिक्षा के अन्तर्गत पारीतंत्र संबंधी चिन्तन (Ecological Thinking) तथा सभी जीवों के प्रति आदर का भाव जागृत करना होगा। पर्यावरणीय शिक्षा में पर्यावरण संरक्षण पर जोर देना होगा। क्योंकि पर्यावरण के संधारणीय (Sustainable) विकास के बिना शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती है। सामान्य रूप से प्रकृति के प्रति प्रेम तथा प्राकृतिक संसाधनो को स्वार्थ के लिए दोहन न करना भी शांति शिक्षा के अर्न्तगत आता है। बच्चों में प्राथमिक स्तर से ही प्राकृतिक वातावरण तथा पर्यावरण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का बीजा रोपण करना होगा।

12.5.9 संघर्ष समाधान शिक्षा (Conflit Resolution Education)

An eye for an eye makes the whole world blind — **Mahatma Gandhi**

संघर्ष का उदय मौलिक शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकातओं के अभाव से शुरू होता है। संघर्ष का परिणाम आधिकत्तर विनाशकारी ही होता है। संघर्ष समाधान शिक्षा के अर्न्तगत बच्चों में संघर्ष के विभिन्न कारणों को समझने के कौशल का विकास करना होगा। संघर्ष के तीन मुख्य कारण है पहला मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होना, सीमित संसाधन तथा विभिन्न प्रकार का मूल्यों का होना। संघर्ष व्यक्ति के दिनचार्य का ही एक भाग है तथा शांति शिक्षा का काम है संघर्ष का समाधान रचनात्मक, सृजनात्मक तथा अहिंसक तरीके से करना।

12.5.10 भविष्य की शिक्षा (Future Education)

For tomorrow belong to thepeople who prepare for it today — **African Proverb**

भविष्य की शिक्षा, सामाधान तथा क्रिया पर आधारित होगा। भविष्य की शिक्षा इस तरह की नायाब प्रक्रिया है जो ऐसे विषयों का अध्ययन करेगा जिसका अभी उदय नहीं हुआ है। भविष्य की शिक्षा का प्रारूप निम्नवत हो सकता है। यह हिस्क के द्वारा दिया Future गया प्रारूप हैं।

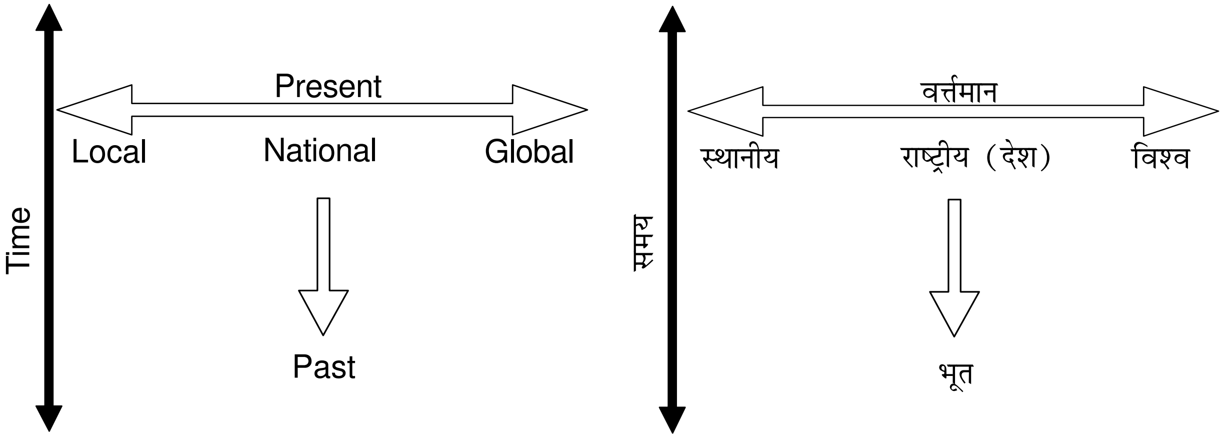

चित्र – हिमन का प्रारूप

भविष्य की शिक्षा के अनुसंधान, अध्ययन तथा शिक्षा पर आधारित होगा।

12.6 शान्ति शिक्षा की रणनीतियाँ (Strategies of Peace Educatioin)

समाज में विभिन्न प्रकार की अशान्तिपूर्ण स्थितियाँ व्यक्ति के भौतिकतावादी मानसिकता के कारण ही हैं। देश तथा विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए व्यक्ति के मूल्यों का विकास अनिवार्य है जिससे उनमें शान्ति के मूल्यो को समझने के गुणों का विकास हो सके। शांति शिक्षा के माध्यम से प्राथमिक स्तर से ही छात्रों के उच्च आदर्शवादी मूल्य एवं नैतिक विकास की शिक्षा प्रदान की जाए तो व्यक्ति में समन्वित दृष्टिकोण का विकास होगा। शांति शिक्षा की कौशल तथा रणनीतियाँ सामूहिक सोचने विचारने, साझा करने, ख्याल रखने तथा सहयोग पर आधारित होने चाहिए। शिक्षा पद्दतियाँ रचनात्मक, बाल केन्द्रित, प्रस्तुतीकरण, सामुहिक तथा सहकारी योजनाएँ शामिल होना चाहिए। विद्यार्थियों में विभिन्न संस्कृति और मौलिक मूल्यों के विषय में खुलापन तथा व्यापार कार्य विकसित करने के लिए अध्यापक और विद्यालय को अन्य संदर्भ विशिष्ट रणनीतियाँ विकसित करनी चाहिए। विद्यार्थियों में मूल्यों को उदय करने के लिए विद्यालय का वातावरण बहुत महत्व रखता है। विद्यालय का वातावरण, शिक्षकों का व्यक्तित्व तथा विद्यालय में उपलब्ध सुविधाये विद्यार्थियों के मूल्यों के विकास में बहुत महत्व रखता है। विद्यालय जीवन में शाति मूल्यों को रोपीत करने की जरूरत है ।

शांति शिक्षा के उद्दश्यों के अर्न्तगत शांति शिक्षा संबंधित ज्ञान, कौशलों तथा अभिवृतियों को समझना आवश्यक है। ये निम्नलिखित हैं–

ज्ञान

- मूल संवैधानिक मूल्य
- मानवाधिकार एवं जिम्मेदारियाँ
- सांस्कृतिक, नस्ल संबंधी, जेंडर आधारित और धार्मिक पूर्वाग्रहों की पहचान और इनसे बचाव
- वैश्वीकरण और इसके प्रभाव
- पर्यावरण पारिस्थितिकी और संधारणीय विकास
- अंतर्राष्ट्रीय समझ
- द्वंद्व, युद्ध और परमाणु निरस्त्रीकरण
- द्वंद्व विश्लेषण, बचाव एवं हल इत्यादि के सिद्धांत
- बच्चों के व्यवहार में हिंसा के लक्षण
- सीखने के सहभागी तरीके
- हिंसा को बढ़ावा देनेवाले मीडिया की छवि

कौशल

- सक्रिय श्रवण, संप्रेषण और चिंतन (मनन/विमर्श)
- सहयोग और सहानुभूति
- द्वंद्वों का निपटारा
- पाठ्यपुस्तक के विषय वस्तु की पहचान और सकारात्मक व्याख्या
- सहभागी अध्ययन-अध्यापन प्रणाली का प्रयोग
- नेतृत्व और निर्णय लेना

अभिवृत्तियाँ

- सहनशीलता
- मानव प्रतिष्ठा और मतभेद के लिए आदर
- लिंग और जाति संवेदनशीलता
- पर्यावरीणी जागरूकता
- देखभाल और सहानुभूति
- निष्पक्ष निर्णय लेना
- सामाजिक जिम्मेदारी एवं जवाबदेही
- आत्मसम्मान
- बदलाव की ओर रूझान (बदलाव के लिए तत्परता)

शांति शिक्षा की रणनीतियो के अर्न्तगत शांति की संस्कृति को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से निम्नांकित बिन्दुओं को पादयचर्या में शामिल करने की आवश्यकता है :-

शांति का मूल्य

1. व्यक्तित्व निर्माण के लिए शांति का मूल्य

- प्यार
- सच्चाई
- शुद्धता-शारीरिक एवं मानसिक (जो सही है वही सोचो, बोलो और करो)
- सुंदरता और शांति-प्रकृति एवं मानव की विविधता में एकता की सराहना।
- देखभाल करने का भाव (आभार)
- उत्तरदायित्व का भार
- अहिंसा
- विनम्रता (सही होने के तत्परता एवं अपनी गलती स्वीकारने का साहस)
- सेवा का भाव
- नेतृत्व, शांति स्थापित करने के लिए या स्थिति में सुधार करने के लिए पहल करना
- सकारात्मक सोच और आशावाद
- अनुशासन, आत्म-नियंत्रण, एकाग्रता, परिश्रम और वृद्धि
- दूसरों के प्रति संवेदनशीलता- 'भिन्नता' के साथ सामना करने के कौशल और दूसरों के लिए सोचने तथा उनकी मदद करने की योग्यता।
- वृद्धि - अपने तथा अपने पड़ोसी दोनों के लिए

2. शाति मूल्य और साझी आध्यात्मिकता

- आंतरिक संसाधनों के विकास द्वारा आंतरिक शांति की अभिलाषा करना
- सोच, आस्था और अंतर्विवेक की स्वतंत्रता
- धार्मिक व्यवहार की आज़ादी
- दूसरों की धार्मिक भावनाओं एवं रीतियों का आपसी आदर-सम्मान।
- राज्य द्वारा सभी धर्मो के साथ व्यवहार में समानता विद्यार्थियों में धर्म के बारे में तार्किक एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित करने की जरूरत है : ऐसा प्रतिस्पर्धात्मक धार्मिकता को साझी आध्यात्मिकता में और अंधविश्वास को जिम्मेदारीपूर्ण तर्क-वितर्क की योग्यता में परिवर्तित करके ही किया जा सकता हैं।

3. शांति मूल्य बनाम भारतीय इतिहास और संस्कृति

- शांति की सकारात्मक एवं नकारात्मक समझ

- एकीकृत दृष्टिकोण (वसुधैव कुटुंबकम्)
- मध्यवर्ती रिवाज़ों और संस्कृतियों पर विशेष जोर के साथ विविधता, बहुलता और सह-अस्तित्व
- शांति पर उपदेश (अहिंसा, सच्चाई और आतिथ्य)
- शांति संबंधी गांधीजी के विचार और व्यवहार
- शांति आंदोलन (विशेषकर स्वतंत्रता आंदोलन)

4. शांति मूल्य, मानवाधिकार और लोकतंत्र

- गरिमा
- समानता
- न्याय
- सभी लोगों के अधिकारों की स्वतंत्रता
- सहभागिता
- भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
- आस्था की स्वतंत्रता

भारतीय संविधान से परिचय :-

- प्राक्कथन
- अधिकार और कर्त्तव्य
- विशेष प्रावधान
- अपूर्ण कार्य सूची: राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत

5. शांति मूल्य और जीवनशैली

- प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता एवं उसकी सराहना
- जीवन के सभी रूपों का सम्मान
- सादगी-सादगी से जियो जिससे अन्य भी सादगी से जी सकें
- उत्तरदायित्त्व-समुदाय में रहने का भाव
- सृजन का एकीकरण एवं उपभोग
- गांधीजी का विचार है कि पृथ्वी के संसाधन सभी की जरूरतो ंको पूरा करने के लिए हैं, न कि कुछेक के लालच को पूरा करने के लिए।

6. शांति मूल्य और राष्ट्रीय एकता

- भारत-धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषयी विविधता में एकता
- मनुष्य की गरिमा

- समानता
- सामाजिक न्याय
- सभी लोगों के अधिकारों की रक्षा
- सहभागिता
- भाषण और अभिव्यक्ति की आज़ादी

7. हिंसा : क्या है और यह क्या करती है

- हिसा के प्रकार
  - (i) मौखिक
  - (ii) मनोवैज्ञानिक
  - (iii) शारीरिक
  - (iv) ढाँचागत
  - (v) लोकप्रिय संस्कृति में अश्लीलता
- हिंसा के मोर्चे
  - (i) जाति
  - (ii) जेंडर
  - (iii) भेदभाव
  - (iv) भ्रष्टाचार
  - (v) सांप्रदायिकता
  - (vi) विज्ञापन
  - (vii) गरीबी
- हिंसा का खतरा
- मीडिया और हिंसा
- विवादों के शांतिपूर्ण हल
- विवादों के बाद समझौता

8. शांति मूल्य और वैश्वीकरण

- वैश्विक संदर्भ में शांति
- शांति आंदोलन और पहलें
- पारिस्थितिकी चिन्ताएँ-प्रकृति की देखभाल और सतत विकास
- उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा निजीकरण- इनमें शांति के लिए निहितार्थ

- भूमंडलीकरण और लोकतंत्र
- शांति, विकास और सामाजिक न्याय
- शांति और लैंगिकता
- पीढ़ियों का अंतराल
- 'ड्रग और अल्कोहल' की कुप्रथा
- एचआईवी/एड्स
- आतंकवाद

शांति शिक्षा के रणीनितियों के अन्तर्गत शांति कौशल पर भी दबाव दिया जाता है।

यह अपेक्षा की जाती है कि विद्यार्थियों में ऐसा कौशल या व्यवहार विकसित किया जाए जो उन्हें प्रभावी शांति निर्माता बना सके। इनका परिचय हम चिंतन कौशल, संप्रेषण कौशल और वैयक्तिक कौशल के तहत संक्षिप्त जानकारी के रूप में दे सकते हैं।

1. चिंतन कौशल

आलोचनात्मक चिंतन : तथ्य, विचार और आस्था में भेद करने की योग्यता। भेदभाव और पूर्वाग्रह को पहचानना। तर्क या बहस में निहित पूर्वसूचना एवं विषयो और समस्याओं को पहचानना। सही ढंग से तर्क करना।

सूचना प्रबन्ध : परिकल्पना को आकार देने एवं जाँच की क्षमता होना। हल कहाँ से मिल सकते हैं और सूचना को कैसे स्वीकार और अस्वीकार किया जाता है यह जानकारी भी रखना, प्रभावी ढंग से साक्ष्यों को आँकना, सर्वाधिक उचित कार्रवाई के लिए सक्षम होने हेतु संभावित परिणामों को आँकने की समझ होना।

रचनात्मक चिंतन : नूतन समाधान और हल तलाशना, पार्श्विकता से सोचना और समस्याओ को कई परिप्रेक्ष्यों में देखना।

प्रतिबिंबन : समस्या से अलग रहना और उसके मुख्य हिस्सों को समझना, चिंतन प्रक्रिया पर कड़ी नज़र रखना और किसी भी समस्या विशेष से निपटने के लिए रणनीति तैयार करना।

द्वंद्वात्मक चिंतन : एक से अधिक दृष्टिकोण से सोचना, दोनों दृष्टिकोणों को समझना, दूसरे के ज्ञान के आधार पर किसी भी बिंदु से तर्क देने में सक्षम होना।

2. संप्रेषण कौशल

प्रस्तुतीकरण : विचारों को सुस्पष्ट और संगति पूर्ण ढंग से व्याख्यायित करने में सक्षम होना।

सक्रिय श्रवणता : अन्य के विचारो को ध्यानपूर्वक सुनना, समझना और पहचानना।

समझौता वार्ता : संघर्ष पर विराम लगाने के लिए समझौते की एक उपकरण के रूप में भूमिका और सीमाओं को पहचानना: विवाद हल करने की दिशा में सार्थक संवाद की ओर कदम बढ़ाना।

मूक संप्रेषण : बॉडी लैंग्वेज के अर्थ और महत्त्व को पहचानना।

3. वैयक्तिक कौशल

सहयोग : साझे उद्देश्य के लिए दूसरों के साथ मिलकर प्रभावी ढंग से काम करना।

अनुकूलनशीलता : तर्क और साक्ष्य की रोशनी में विचार बदलने के लिए इच्छुक होना।

आत्म अनुशासन : अपने आचरण को उचित बनाए रखने और प्रभावकारी ढंग से समय का प्रबंधन करने की योग्यता।

उत्तरदायित्व : काम का बीड़ा उठाने और उसे ठीक ढंग से पूरा करने की योग्यता, अपने हिस्से के दायित्व का निर्वाह करने को तैयार रहना।

सम्मान : दूसरों को ध्यान से सुनना, निष्पक्षता और समानता के आधार पर निर्णय लेना, इस बात को पहचानना कि दूसरो की आस्था, विचार और दृष्टिकोण आप से अलग हो सकते हैं।

शांति के लिए शिक्षा : कुछ सिफारिशों

शांति के लिए शिक्षा हेतु एकीकृत उपागम के लिए आवश्यकता, उद्देश्यो और लक्ष्यो के लिए निम्न सुझाव दिए गए हैं :-

1. स्कूलों में शांति क्लब और शांति पुस्तकालयों की स्थापना करना। शांति मूल्यों और कौशल को प्रोत्साहित करने वाली अनुपूरक पाठ्य सामग्री तैयार करना।
2. न्याय और शांति के मूल्यों को बढ़ावा देने के लिए फिल्मों, वृत्तचित्रों और फीचर फिल्मों का संग्रह तैयार करना और इन्हें विद्यालय में प्रदर्शित करना।
3. शांति के लिए शिक्षा हेतु मीडिया को हिस्सेदार के रूप में सहयोजित करना। अखबार जिस तरह आजकल धर्म के ऊपर लेख दे रहे हैं उसी तरह शांति कॉलम भी शुरू कर सकते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को विद्यालयो में शांति के लिए शिक्षा की जरूरत के अनुसार शांति के कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए बढ़ावा दिया जा सकता है। इसी के अंतर्गत अध्यापकों को शांति शिक्षकों के रूप में प्रोत्साहन देने तथा समर्थ करने की आवश्यकता है।
4. विद्यालयों में ऐसे प्रावधान करना जिससे बच्चे इस योग्य हो कि वे समझ सकें तथा आयोजित कर सकें : (अ) भारत की सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता (ब) मानवाधिकार दिवस (स) बालिका दिवस (द) महिला दिवस (य) पर्यावरण दिवस और (र) भिन्न क्षमतावान व्यक्ति दिवस।
5. महिलाओं के विरूद्ध बढ़ते अपराधों को देखते हुए महिलाओं के प्रति सम्मान और जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए कार्यक्रम आयोजित करना।
6. जिला स्तर पर विद्यालय विद्यार्थियों के लिए शांति उत्सवों का आयोजन करें। इससे हम शांति को मनाने और विभिन्न प्राकर की बाधाओं से मुक्ति पाने जैसे दोहरे उद्देश्य पा सकेंगे।
7. विभिन्न धाराओं के विद्यार्थियों के बीच परस्पर विचार विनिमय के कार्यक्रम आयोजित कराना जो उनको पूर्वाग्रहों, क्षेत्रीय, जाति औरवर्गीय बाधाओं से उबरने में मदर करें।
8. स्थानीय गैरसरकारी संगठनों द्वारा चलाई जाने वाली शांति परियोजनाओं में स्वयं सेवक की भूमिका निभने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना और उनके लिए अवसर उपलब्ध कराना। शांति के लिए शिक्षा के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए यह जरूरी है कि विद्यालय गैर सरकारी संगठनों के

साथ भागीदारी करें। ऐसे में शांति संबंधी स्वयंसेवी संगठनों की डायरेक्टरी उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

9. शांति के लिए शिक्षा देने के लिए अध्यापकों और अभिभावकों की कार्यशलाएँ आयोजित की जाएँ।

10. राज्य स्तर की एजेंसियों की स्थापना : (क) शांति के लिए शिक्षा क्रियान्वयन की निगरानी के लिए विशेषकर पाठ्यपुस्तक लेखन, अध्यापक शिक्षा, कक्षा में दी जाने वाली शिक्षा एवं विद्यालय व्यवस्था के संबंध में (ख) शांति के लिए शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त शोध को बढ़ावा देने के लिए ताकि आँकड़ों और अनुभवो को प्रकाश में पाठ्यचयार्य की समीक्षा और सुधार हो सके।

11. विद्यालय से जुड़ी, विभिन्न प्रणालियों में व्याप्त असमानताओं को कम करना जिससे शिक्षा में असमानता और सामाजिक विभाजन को बढ़ावा न मिल सके।

12. ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में शैक्षिक अनदेखी में संशोधन के एिल सकारात्मक कदम उठाना। इसमें पर्याप्त संख्या में विद्यालयों की स्थापना और मौजूदा विद्यालयों की स्थिति में सुधार की बात शामिल हैं।

13. अध्यापकों की भर्ती में व्याप्त भ्रष्टाचार मिटाने के लिए तत्काल राष्ट्रव्यापी मुहिम शुरू की जानी चाहिए। भ्रष्टाचार भी हिंसा का ही एक रूप हैं। अध्यापकों के भ्रष्टाचार का शिकार होने से उनके शांति शिक्षक होने के उद्देश्य को धक्का पहुँचेगा।

14. विद्यालयों की संस्थानात्मक संस्कृति में सुधार की जरूरत के प्रति जागरूकता फैलाना। व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता के कार्यक्रमों के लिए पहल करना; जिसमें विद्यालय के परिवार के सभी सदस्यों खासकर वंचितों के लिए सम्मान और चिंता पर जोर दिया जाए।

15. शांति के लिए शिक्षा भविष्य में दी जाने वाली शिक्षा की समीक्षा या नीति में सुधार के लिए मज़बूत उपकरण होनी चाहिए। इसे शैक्षिक प्रशासकों के लिए आयोजित किए जाने वाली प्रत्येक बहस और अभिमुखीकरण / प्रशिक्षण कार्य में गंभीरता से शामिल किया जाए।

16. अभिभावक-अध्यापक संबंधों को स्थापित एवं मज़बूत करना। विद्यालय में पैदा होने वाली समस्याओं और विवादों के प्रति अभिभावक और अध्यापकों को शांति का रूख अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना।

17. शांति के लिए शिक्षा के सभी ससांधन (इतिहास, लक्ष्य, उद्देश्य, लाभ) सेवापूर्व और सेवा के दौरान होने वाले अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रमों का हिस्सा हों।

18. पाठ्यचर्या निर्माण में शांति के लिए शिक्षा को समग्र रूप में रखे जाने की आवश्यकता है।

19. शांति के लिए शिक्षा के उद्देश्यों को प्रकट करने के लिए पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के पुनर्गठित किए जाने की जरूरत है।

20. पाठ्यपुस्तक लेखकों को यह समझ दिए जाने की जरूरत है कि पाठ्यपुस्तकों में दी गई भाषा और चित्रों को गहराई से जाँचकर उनका पुनः प्रस्तुतीकरण जरूरी हैं।

21. प्रत्येक स्तर पर अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम को शिक्षा के स्वीकृत लक्ष्य के अंतर्गत तथा शांति के लिए शिक्षा की विशेष आवश्यकता के प्रकाश में संशोधित एवं पुनर्गठित किया जाना चाहिए।

22. विद्यालयी वातावरण को प्रत्येक प्रकार की हिंसा से अलग रखना चाहिए। यह अन्य चीजों के अलावा अनुशासन के रूप में हिंसा को भी शामिल करता है। शारीरिक सजा को गंभीरता से लिए जाने की आवश्यकता है और इसको पूर्ण रूप से समाप्त करना जरूरी है। विद्यार्थियों को इस योग्य बनाया जाए कि वे अनुशासन बनाए रखने और सुधारने की प्रक्रिया में भागीदार हो।

23. अध्यापकों की समस्या पर ध्यान देने के लिए एक सक्षम और प्रभावी तंत्र की जरूरत है। प्रत्येक राज्य और केंद्रशासित प्रदेशों में अध्यापकों के लिए ट्रिब्यूनल स्थापित किए जाने चाहिए। आसानी से सबकी पहुँच के लिए बड़े राज्यों में ट्रिब्यूनल की कई शाखाएँ खोलने की आवश्यकता है।

24. एक ऐसी पुस्तिका तैयार की जाए जिसमें शांति के लिए शिक्षा के एकीकृत रूख हेतु दिशा-निर्देश हों। जिन्हें स्कूल में पढ़ाए जाने वाले प्रत्येक विषय और अध्यापक शिक्षा संस्थानों में प्रत्येक अध्यापक, अध्यापक-प्रशिक्षक तथा पाठ्यपुस्तक लेखक द्वारा पालन किया जाना चाहिए।

25. विद्यालयों में हिंसा के कारण और उपायों पर एक मैनुअल तैयार करना और उपलब्ध कराना। मैनुअल में यह दिशा निर्देश अंकित हो कि मनोवैज्ञानिक समस्याओं से निपटने, शारीरिक, आपराधिक और ढाँचागत हिंसा और विद्यालयी जीवन को शांति की संस्कृति की दिशा में बढ़ाने में व्यवहारिक कदम लिए जा सके।

12.7 सारांश (Summary)

शांति शिक्षा वह विज्ञान है जिसके माध्यम से लोगों को किसी समाज के स्वरूप तथा आवश्यकताओं को समझने तथा मानवाधिकारो की जानकारी देने में मदद करती है। यह शिक्षा ऐसे समाज का विकास करती है जो शोषण, हिंसा तथा अन्याय रहित हो। शांति शिक्षा के अर्न्तगत वे सारे नियम, निर्देश, साहित्य तथा पाठ्यचर्या आते हैं जो समाज में शान्ति व्यवस्था कायम रख सके। शांति शिक्षा के लिए विश्व के बहुत सारे संस्थान कार्य कर रहें हैं, मसलन-संयुक्त राष्ट्र संघ, संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक संगठन, सार्क, एमनेस्टी इन्टरनेशनल, नोबेल शांति पुरस्कार, आई बी एफ, शांति के लिए हेग अपील तथा कार्टर सेंटर इत्यादि। वर्त्तमान समाज की स्थितियों को देखते हुए शांति शिक्षा बहुत आवश्यक है। इसके विभिन्न क्षेत्र हैं, जैसे आदर्शो तथा मूल्यों का निर्माण, शांति के लिए शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, निरस्त्रीकरण शिक्षा, लिंग विभेद शिक्षा तथा भविष्य की शिक्षा इत्यादि।

12.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. शांति शिक्षा के अर्थ तथा आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

   Describe the meaning and need of peace education.

2. शांति शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या कीजिए।

   Discuss the concept of peace Education.

3. शांति शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों की व्याख्या कीजिए।

   Explain the various scopes of peace Education.

4. शांति शिक्षा के रणनीतियों का वर्णन कीजिए।

   Describe the strategies of peace, Education.

12.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Reardon B.A (1999) Peace Education : A review and projection, malmo universing
2. Reardon, B.A & Cabe zudo A (2002) : Teaching toward cultura of peace. Hague appeal for peace, New York.

❒ ❒ ❒

इकाई : 13 गुणवत्ता शिक्षा : अवधारणा, आयाम एवं सूचक (Quality Education : Concept, Dimensions and Indicators)

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

13.2 गुणवत्ता के अर्थ, परिभाषा रूप एवं विशेषता (Meaning Definitions forms and Characteristics of Quality)

13.3 शिक्षा में गुणवत्ता, गुणवत्ता शिक्षा की अवधारणा (Dimensions of Quallity Education)

13.4 गुणवत्ता शिक्षा के आयाम (Dimensions of Quality Education)

13.5 गुणवत्ता शिक्षा के सूचक (Indicaators of Quality Education)

13.6 सारांश (Summary)

13.7 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

13.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

13.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् छात्राध्यापकः

- 'गुणवत्ता' के अर्थ व परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
- 'गुणवत्ता' की विशेषताओं को समझते हुए उन्हें सूचीबद्ध कर सकेंगे।
- गुणवत्ता शिक्षा की अवधारणा समझ सकेगे।
- गुणवत्ता शिक्षा अन्तर्गत इनके विभिन्न आयामों से अवगत हो सकेंगे।
- गुणवत्ता शिक्षा के विभिन्न सूचकों पर विमर्श करते हुए उनपर ध्यान दे सकेंगे।

उपर्युक्त उद्देश्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्‌देश्य हैं।

13.1 प्रस्तावना (Introduction)

हम सभी 'गुणवत्ता' (Quality) शब्द से भली-भाँति परिचित हैं। प्राय: इस शब्द का उपयोग किसी उद्योग, उत्पादन, व्यापार, तकनीकी सन्दर्भ में वस्तु की उत्तमता एवं उपयोगिता को दर्शाने हेतु किया जाता हैं। प्रस्तुत इस इकाई में हम गुणवत्ता के अर्थ, परिभाषा एवं इसके विशेषताओं को जानते हुए इनके विभिन्न प्रकार से अवगत होंगे। इसके आगे हम 'शिक्षा में गुणवत्ता' (Quality in Education) एवं इनके 'प्रसार' (Dimensions) के साथ-साथ 'गुणवत्ता शिक्षा के प्रमुख सुचकों' (Main Indicators of quality education) की विस्तार पूर्वक चर्चा करने हेतु समझ बनाने का प्रयास करेंगे।

हम प्राय: ही शिक्षा में गुणवत्ता की बात करते रहते हैं। शिक्षा में गुणवत्ता होनी चहिए, यह बात बार-बार दुहराई जाती रही है। हमें विचारना यही है कि जिस 'शिक्षा' में आज गुणवत्ता की बात हो रही है, वह अपने आप में गुणवत्ता युक्त है तो फिर इस ओर ध्यान दिलाने की जरूरत क्यों आ पड़ी है ? यह ठीक है कि शिक्षा एक ऐसी सामग्री है जो गुणवत्ता युक्त है परन्तु, इस ओर ध्यान दिलाने का अर्थ ही होगा कि अपने गुणों को खो देने से समय सापेक्ष जब ऐसा लगने लगा कि शिक्षा अपने वास्तविक उद्देश्य/लक्ष्यों या गुणों के अनुरूप नहीं रह गई है, तो लोगों ने इसे गुण क्षय/ह्रास के रूप में जानना शुरू किया। यह ठीक वैसे ही है जैसे-कोई गुणकारी फल पपीता/आँवला/अन्य अपने गुण/पोषकता/स्वाद खो देते हों, तो फल यहाँ विद्यमान रहता हैं पर उसे गुणकारी नही कहा जाता है। बात जब शिक्षा में गुण ह्रास की हो रही है तब ऐसे कौन से गुण इसमें डालें जायें जिससे की गुणवत्ता संधारित होता हो। तो यहीं से शुरू हो जाती है उन अपेक्षित गुणों की जिसको पूरा कर हम शिक्षा में गुणवत्ता संधारण की बात शुरू कर सकते हैं। अब इसपर ध्यान लाने हेतु हमें विशेष सूचकों (Indicators) की जरूरत आ पड़ती है। ये सूचक की गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के शैक्षिक मुद्दों पर शैक्षिक-व्यवस्था के समस्त लोगों का ध्यान खींचती है। जरा सोचिए कि शिक्षा यदि वैयक्तिक शरीरिक भिन्नता का ख्याल न करे यानि कि उनके हितों का, मन का, ध्यान न रखें तो आप इसे गुणवत्तायुक्त कह सकेंगे ? आगे ऐसे की मुद्दों पर हम बात करने वाले हैं।

13.2 गुणवत्ता के अर्थ, परिभाषा, रूप एंव विशेषताएँ (Meaning, Definitions, Forms and Characteristics of Quality)

13.2.1 'गुणवत्ता' के अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definitions of Quality)

सामान्यत: ''गुणवत्ता' का आशय किसी वस्तु के गुणो को कोई कितना महत्त्व देता है, से है। प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता एवं उत्तमता अलग-अलग होती है ओर प्रत्येक व्यक्ति गुणवत्ता का उल्लेख भी अपने ढंग से करता है। जैसे-'चावल'। आमतौर पर कई गुणों से युक्त होने के कारण इसे लोग गुणकारी कहेंगे परन्तु, यह कहना कि सफेद, पतला, लम्बा दाने वाला चावल ही थोड़े मोटे एवं लाल चावल की तुलना में उत्तम है तो यह विवादित होगा क्योंकि, अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा इन दोनों किस्म के चावल की खूबियाँ (गुण/मूल्य/value) अलग-अलग से बताई जाती रही है। हाँ, यदि ऐसा होता कि सभी/अधिकत्तर व्यक्ति उचित तर्क एवं कारण आधार पर सफेद/पतले दाने वाले चावल को ही अधिक अच्छा कहें तो यह कहना ही पड़ता कि लाल/मोटे की अपेक्षा सफेद, पतले दाने वाले चावल की गुणवत्ता ज्यादा अच्छी है।

इस प्रकार से ''किसी वस्तु को कोई कितना महत्त्व देता है यह उस वस्तु की गुणवत्ता मानी जाती है।''

("Quality is the value fo some thing by some one.")

शिक्षा के विभिन्न पक्षों के गुणवत्ता का संप्रत्यय (Concept of Quality) व्यक्ति निष्ठ (subjective) होता है । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने चिन्तन तथा ढंग से इसे महत्त्व देता हैं ।

अर्थशास्त्रियों के दृष्टि से गुणी वस्तु की गुणवत्ता का निर्धारण व्यक्ति की आवश्यकता से की जाती है । व्यक्ति की आवश्यकतानुरूप वस्तु का महत्त्व भी बदलता रहता है । इस प्रकार से गुणवत्ता संप्रत्यय (Quality concept) वस्तुनिष्ठ (objective) नहीं हैं ।

यहाँ इसे परिभाषित किया जाता है –

- ''गुणवत्ता एक आवश्यक तथा विभेदीकरण का गुण है जो किसी वस्तु की व्यक्ति द्वारा आकलन किया जाता हैं ।'' ("Quality is an essential and distinguishing attribute of something by some one")
- ''गुणवत्ता किसी वस्तु की किसी व्यक्ति द्वारा जो उसकी विशेषता की अभिव्यक्ति करता है, उसे उस वस्तु की गुणवत्ता कहते हैं । प्रत्यक वस्तु तथा व्यक्ति की अपनी गुणवत्ता होती है, जो उस वस्तु की माँग पर निर्भर होती है ।'' ("Quality is a characteristic property that defines the apparent individual nature of some thing each individual or thing has a quality of its own, but assessment depends on the demand.")

इस प्रकार

''गुणवत्ता शब्द अपने मूल आधार की परिभाषा स्वतः करता है । गुणवत्ता अग्रसर होने वाली सतत प्रक्रिया है जो रचना करती हे और पूर्व निर्धारित स्तर और उसकी प्राप्ति/पूर्ति में सम्बन्ध भी बनाये रखती है जिनमें आवश्यकताएँ/माँगें निहित होती हैं ।''

("Quallity term itself has been defined fundamental rational. Qualilty is the ongoing process of making and sustaining relationship by assessing, anticipating and fulfilling stated and impllied needs.")

13.2.2 'गुणवत्ता' की विशेषताएँ (Characteristics of Quality)

साधारणतः गुणवत्ता की खास बातों को ध्यानों दें तो पाते हैं कि गुणवत्ता परम्परागत के साथ-साथ आधुनिक भी है । यहाँ पर दोनों प्रकार की विशेषताओं को दिया गया हैं–

- गुणवत्ता एक विशेषता (attribute) तथा प्रक्रिया हैं ।
- गुणवत्ता व्यक्तिनिष्ठा (Subjective) तथा वस्तुनिष्ठा (Objective) दोनों प्रकार की होती है । गुणवत्ता से विषमताओं को कम करते हैं ।
- गुणवत्ता किसी वस्तु तथा प्रक्रिया की उत्तमता तथा उपयोगिता मानी जाती हैं ।
- गुणवत्ता किसी वस्तु की अंश या अनुस्थिति सापेक्ष होती हैं । इसका आकलन व्यक्तिनिष्ठ अधिक होता है ।
- किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु का जो महत्व आका जाता है उसे उस वस्तु की गुणवत्ता कहा जाता हैं ।

- यह एक आवश्य तथा विभेदीकरण की विशेषत है जो किसी व्यत्ति द्वारा किस वस्तु के लिए प्रयुक्त की जाती हैं।
- गुणवत्ता एक विशेषता है जो किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु के लिए अभिव्यक्ति की जाती हैं। यह वस्तु के प्रति अभिव्यक्ति मात्र है, जो व्यक्ति की आवश्यकता पर निर्भर होती है।
- गुणवत्ता एक विशेषता के साथ एक विकास की सतत् प्रक्रिया है जिसमें रचना की जाती है और लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता हैं।
- गुणवत्ता में वस्तु की आन्तरिक तथा बाह्य विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता हैं। वस्तु की उपयोगिता प्रमुख होती हैं।
- किसी वस्तु की सामान्यत: दो विशेषताएँ होती हैं- एक गुणवत्ता (Quality) तथा दूसरी मात्रा (Quantity) यह दोनों विशेषतायें वस्तु की उपयोगिता का निर्धारण करती है। उपयोगिता भी विशेषताओं पर आधारित होती है। इन विशेषताओं का ऋणात्मक सह-सम्बन्ध होता हैं।
- गुणवत्ता एक विशेषता, एक प्रक्रिया तथा एक प्रणाली है। इसका सीधा सम्बन्ध गुणवत्ता की प्रक्रिया के उत्पादन से होता है।
- गुणवत्ता के अनुरक्षण हेतु प्रणाली में सुधार की आवश्यकता होती है।
- गुणवत्ता मानव की श्रेष्ठता की अभिव्यक्ति हैं।
- गुणवत्ता का तात्पर्य सही कार्य की सही ढंग, सही दिशा, सही उत्पादन में करने से होता है।
- किसी वस्तु, व्यक्ति, प्रक्रिया तथा कार्यो की विशेषताओं को भी गुणवत्ता कहते है।।

13.2.3 'गुणवत्ता' के प्रकार (Forms of Quality)

गुणवत्ता की परिभाषाओं तथा मूल्यांकन के आधार पर इसका विभाजन दो वर्गो में किया गया हैं –

1. **व्यक्तिनिष्ठ गुणवत्ता (Subjective Quality)** : किसी व्यक्ति द्वारा किसी वस्तु के महत्व एवं उपयोगिता का आकलन अपने ढंग से करते हैं। वस्तु की प्रक्रिया के उत्पादन का मूल्यांकन वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिगत रूप में ही किया जाता है। एक ही पाठ्यवस्तु किसी छात्र की सरल और अन्य को कठिन लगती है परन्तु पाठ्यवस्तु का सीखने की प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ होती है।

2. **वस्तुनिष्ठ गुणवत्ता (Objective Quality)** : यह गुणवत्ता उस वस्तु की उपयोगिता से सम्बन्धित है जिसे प्रक्रिया द्वारा उत्पादन किया या उसकी रचना की गई है। इसका मानदण्ड पूर्व निर्धारित होता है जो उसका अन्तिम लक्ष्य होत है। जैसे अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों द्वारा शिक्षक वृत्तिका आचार संहिता और शिक्षणशास्त्रीय तत्वों क विकास करता है। इन गुणों के विकास का मूल्यांकन तथा प्रशिक्षण वस्तुनिष्ठ रूप में किया जा सकता हैं।

इस प्रकार गुणवत्ता उत्पादन सेवाओं की एक प्रणाली है, जिसमें अभिसूचनायें, लक्ष्य, आवश्यकताओं, विषमताओं की शिक्षा की उपलब्धियों द्वारा पूर्ति की जाती है। शिक्षा द्वारा उत्पादन होता है। वह वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ दोनों प्रकार का होता हैं। शिक्षा की गुणवत्ता के मानदण्डों में अधिक विषमता होती है। इसे सुनिश्चित करना सम्भव नहीं है।

13.3 शिक्षा में गुणवत्ता, गुणवत्ता शिक्षा की अवधारणा (Quality in Education, Quality Education Concept)

अब तक हम 'शिक्षा' एवं 'गुणवत्ता' इन दोनों शब्दों से पूर्ण परिचित हो गये हैं। इन दोनों शब्दों के अर्थ भी समझ चुके हैं। इनके अर्थ समझ लेने के बाद ऐसा प्रतीत होता है कि ''शिक्षा में गुणवत्ता'' (Quality in Education) का प्रकरण समुचित तथा सार्थक नही है।

ऐसा इसलिए क्योंकि शिक्षा मे नैतिकता तथा मानीवय मूल्यों की सर्वोच्चता है। शिक्षा द्वारा आध्यात्मिक, सामाजिक, मानसिक, शारीरिक, नैतिक आचरण संबंधी गुणो का विकास किया जाता है। तो फिर ऐसा क्या कि हम शिक्षा में गुणवत्ता की बात करने लगे है।। इसके तर्क में एक उदाहरण पर विचार अपेक्षित है। उदाहरण कुछ इस तरह है–

एक 'पपीता' (फल) जिसे कई औषधिय गुणों की वजह से 'कायफल', गुणकारी फल आदि कहा जाने लगा परन्तु, जब इसी पपीते में न तो वह स्वाद हो न ही वह पोश लवण/विटामिन हो और न ही सुपाच्य हो, (जिससे इसकी पहचान बनी थी), तो क्या अब आप इसे गुणयुक्त (गुणी) फल कहेंगे ? क्या, आप कहेंगे कि इन समस्त गुणो के कारण यह गुणकारी फल है ? अन्ततः आप यही कहेंगे कि इस पपीते की गुणवत्ता सही नहीं है या अब यह गुणकारी नहीं रह गया है। 'शिक्षा' गुणों की खान है पर कतिपय कारणों से इसमें शामिल गुणों का ह्रास होने लगा और अब कहा जाने लगा कि हमारी शिक्षा नैतिक मूल्यों का विकास नहीं करा पा रही है, सामाजिक भेद-भाव, विषमता पर नियन्त्रण या सुधार कर पाने में असमर्थ दिखती है, विनय प्रदान करने की बजाय हठी व स्वार्थी बनना सीखाती है, तब हमें कहना पड़ता है कि शिक्षा में अपेक्षित गुणों का समावेश कराया जाए। 'शिक्षा में गुणवत्ता' प्राकरण का अर्थ ऐसा है, जैसे-फूल में सुगन्ध, चीनी में मिठास, सूर्य में रौशनी, भोजन में स्वाद व पोषकता आदि। इन प्रकरणों के प्रथम शब्द से ही उसकी विशेषता का बोध होता है। फूल शब्द ही सुन्दरता का सुगन्ध जैसे विशेष गुण को प्रकट करता है। इसी प्रकार शिक्षा मानव की उत्कृष्टता तथा नैतिकता की अभिव्यक्ति कराती है। अब इस आधार पर आप विचार करें कि –

- क्या, हमारी शिक्षा वास्तव में उच्च नैतिकता, मानवीय उत्कृष्टता के लिए काम कर रही है ?
- क्या, आप ऐसा नहीं महसूस कर रहे कि शिक्षा को सिर्फ धनोपार्जन का साधन मान लिया गया है ?
- क्या, शिक्षा हर बच्चों के लिए उपयोगी है ?
- क्या, यह जीवन कौशलों के विकास में सहायक है ?
- क्या, यह एक बेहतर समाज निर्माण की ओर अग्रसर है ?

उक्त सभी प्रश्नों के आधार पर सोचना शुरू करेंगे तो आप यही पायेंगे कि अपेक्षित गुण जिससे शिक्षा जानी जाती है, का घोर अभाव दिखता है। तब हमें कहना पड़ता है कि गुणवत्ता शिक्षा (Quality Education) जरूरी है और यह तब होगा जब हम अपने शैक्षिक प्रक्रिया में वांछित गुणों का समावेश कर शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की संप्राप्ति कर कार्य करना शुरू कर दें।

आज जब गुणवत्ता शिक्षा की बात जोरों से की जाने लगी है, तब से सबों की जुबान पर यह जरूर है कि शिक्षा में अपेक्षित गुणों की समावेश हो। ऐसे में औपचारिक अभिकरणों (स्कूल, कॉलेज) की जिम्मेवारी इस रूप में है शिक्षा में शिक्षाशास्त्रीय (Pedagogic) तत्वों को बढ़ावा दिया जाए और यह प्रक्रिया कक्षा-कक्ष (Class Room) से ही आरम्भ हो। कक्षा से बाहर चर्चा करने से विशेष लाभ की उम्मीद नहीं की जा सकती

है। चूँकि कक्षा शिक्षण में शिक्षक की भूमिका अहम् होती है। परन्तु इस प्रक्रिया में लगे सभी लोग इसके जिम्मेवार होते है। इसलिए गुणवत्ता शिक्षा अन्तर्गत -

(A) शिक्षकों में -

- जवाबदेही (Accountabililty)
- वृत्तिक/पेशे के प्रति प्रतिबद्धता (Professional Commitment)
- शिक्षक के वृत्तिक मानक (Professionala norms)
- शिक्षा पेशे के आचार संहिता (Professional ethics) पर जोर दिया जाना जरूरी है।

(B) अभिभावकों/समाज में -

- जागरूकता आवश्यक होगी।

(C) सरकार से अपेक्षा -

- बेहतर नीति निर्माण एवं उसका क्रियान्वयन
- उचित वित्तीय व्यवस्था
- समता समानता पर ध्यान देकर व्यवस्था संतुलित बनाने की ओर काम करना अपेक्षित है।

शिक्षा में गुणवत्ता से अभिप्राय प्राय: विद्यार्थियों की गुणवत्ता से होता है। क्योंकि विद्यार्थी ही शिक्षा प्रक्रिया के उत्पाद हैं। औद्योगिक उत्पाद यदि गुणवत्तापूर्ण नहीं है तो बाजार से वापस लिये जा सकते हैं अथवा उन्हें नष्ट किया जा सकता है। किन्तु शिक्षा के उत्पाद के एक बार तैयार हो जाने पर आप उसमें कुछ परिवर्तन नहीं कर सकते और न ही उन्हें नष्ट कर सकते हैं। अत: शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता का होना अत्यन्त आवश्यक है।

पश्चिमी दृष्टिकोण

शिक्षा लक्ष्य अभिमुख होती है। लक्ष्य वैयक्तिक तथा सामाजिक होते हैं। लक्ष्यों के अनुसार शिक्षा में गुणवत्ता को निम्न रूप से परिभाषित किया जा सकता है–

- आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अधिपूर्ति
- सतत् सुधार
- प्रत्यक का कार्य
- नेतृत्व
- प्रणाली में मानव संसाधन विकास
- भय ह्रास
- प्रत्याभिज्ञान और पुरस्कार
- कार्यकारी दल का कार्य
- मापन
- व्यवस्थित समस्या समाधान

सीमौट (1992) ने उपरोक्त सिद्धान्तों की रचना करते समय उत्पाद की अपेक्षा प्रक्रियाओं पर अधिक बल दिया है। शिक्षा के कुछ मूलभूत लक्ष्यों को छोड़ दें तो प्रत्येक समाज के लक्ष्य भिन्न होते है। अतः प्रत्येक समाज में शिक्षा की प्रक्रिया भी भिन्न होता है तथा विद्यार्थियों की गुणवत्ता के सूचक थी। शिक्षा में समान पाठ्यचर्या, सभी विषयों के समतुल्य स्थान, समान उपयुक्त शिक्षण विधियाँ, लगभग समान योग्यता वाले अध्यापक तथा लगभग एक समान सरकारी नीतियों का पालन करते हुये भी विद्यालयों में गुणवत्ता के आधार पर अन्तर पाया जाता है और यह भी सत्य है कि एक ही विद्यालय में अपने बच्चे को प्रवेश दिलाने के लिए अभिभावक अपनी जी जान लगा देते हैं तथा दूसरी ओर कोई अन्य अभिभावक उस विद्यालय की शिक्षा व्यवस्था से निराश होकर अपने बच्चे को उस विद्यालय से निकाल लेते हैं। स्पष्ट है कि विद्यालयी परिप्रेक्ष्य तथा अभिभावकों के दृष्टिकोण से ही गुणवत्ता का अर्थ भिन्न-भिन्न होता है।

भारतीय दृष्टिकोण - चूँकि शिक्षा का उद्देश्य मानव-निर्माण से है, शिक्षा की गुणवत्ता पर होने वाले किसी भी चर्चा में माननीय गुणों के विकास पर बात होना स्वाभाविक सा है। मानव बहुतल वाली समग्र आकृति है। वह एक साथ भौतिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक तलों पर जीवन जीता है। इन्हीं तलों को हम शरीर, मन, बृद्धि एवं चित्त/आत्मा के रूप में जानते हैं। शिक्षा में गुणवत्ता की अभिव्यक्ति तभी होती है जब मन द्वारा इन्द्रियों को वश में रखा जा सके, बुद्धि द्वारा सही और गलत की पहचान की जा सके और शरीर केवल स्व अर्थात आत्मा के साक्षात्मकार के साथ आनन्द की अनुभूति कर सके।

शिक्षा में गुणवत्ता को उसके प्रभाव आधार पर भी वर्णित किया जा सकता है। सबसे अधिक उद्धरित एवं प्रचलित है–

'सा विद्या या विमुक्तये' (विद्या वही है जो हमें मुक्त करे- अज्ञान एवं अविद्या के बन्धनों से)

'विद्या ददाति विनयं (शिक्षा विनम्रता प्रदान करती है)

इन दो प्रभावों के अतिरिक्त शिक्षा का एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रभाव है कि वह व्यक्ति को पराविद्या एवं अपराविद्या का विवेक विकसित करती है। भारतीय समाज में इस प्रकार के मूल्यों की प्रधानता रही है। अतः भारतीय परिप्रेक्ष्य में मानव पर छोड़े गये प्रभाव ही शिक्षा की गुणवत्ता के द्योतक है।

कुल मिलाकर शिक्षण द्वारा अधिगम उपलब्धियों को हासिल करना जो कि निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप है, या धारित रख पाना ही शिक्षा में गुणवत्ता/गुणवत्ता शिक्षा की पहचान है।

निष्कर्षतः, ''गुणवत्ता शिक्षण के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि यह अध्यतेताओं के अधिगम परिणाम में अपेक्षित सुधार हेतु शिक्षणशास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुप्रयोग एवं समझ का विकास है।''

(''An understanding and application of Pedagogical Principles that contribute to improving students outcomes in the resul of Quality Education.'')

13.4 गुणवत्ता शिक्षण के आयाम (Dimensions of qulilty Education)

वर्त्तमान भारतीय शिक्षा परम्परा एव आधुनिकता का एक विलक्षण मिश्रण है। वैश्वीकरण के फलस्वरूप जहाँ एक ओर ऐसे विद्यालय में हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, वही दूसरी ओर अत्यन्त निम्न स्तर के विद्यालीय भी देखे जा सकते हैं। विद्यालयों मे गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के लिये निर्धारक भूमिका निभाते है – विद्यालयी सुविधायें, शिक्षक, प्रधानाचार्य, सहपाठी, पठन-पाठन सामग्री, शिक्षण विधियों, आकलन एवं

मूल्याँकन प्रणाली, प्रौद्योगिकी तथा आस-पास की अर्थव्यवस्था इत्यादि। निजी विद्यालयों में अपने बच्चों की शिक्षा पर व्यय करने वाले अभिभावक अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होते जा रहे हैं। शिक्षा पर होने वाले व्यय के एक निवेश के रूप में देखा जा रहा है। यही कारण है कि आज विद्यालयों में गुणवत्ता नियंत्रण (Quality control) तथा सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन (total quality management) पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। आज विद्यालयों में निजी परीक्षणों एवं साक्षात्कार के आधार पर योग्यता परखी जाती है तब विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है। इन विद्यालयों में एक सुविभाजित वार्षिक समय-सारणी होती है। विद्यार्थी गुणवत्तापरक शैक्षिक गतिविधियों मे व्यस्त रखे जाते हैं। समय-समय पर पर्यवेक्षक होता है। अभिभावक भी समय-समय पर क्रिया कलापों की मॉनीटरिंग करते हैं। दूसरे शब्दों में ये सुप्रबंधित विद्यालय है। जो न केवल गुणवत्ता को पूरे समग्र रूप में देखने का प्रयास करते हैं अपितु गुणवत्ता प्रबंधन की कार्यप्रणाली भी विकसित करने का प्रयास कर रहे है।

इस प्रकार शिक्षा में गुणवत्ता की बात होते ही सर्वप्रथम विद्यालयी शिक्षा (औपचारिक संस्था) के गुणवत्ता की बात ही सामने आती है जिसमें प्रमुखता से हम निम्न चीजों को देखना चाहते हैं–

- गुणवत्ता का पैमाना (Quality Parameter)
- गुणवत्ता का नियन्त्रण (Quality Control)
- सम्पूर्ण गुणवत्ता प्रबन्धन (Total Quality Management)

इन्हें उचित दिशा प्राप्त हो सके एवं उस अनुरूप गुणवत्ताधारित हो जाए इसलिए हम इन्हें दो (2) रूपों में विभक्त करते हैं–

(a) गुणवत्ता शिक्षा के आयाम (Dimensions of Quality Education)

(b) गुणवत्त शिक्षा के सूचक (Indicators of Quality Education)

जहाँ Dimensions (आयाम) हमें यह बताता है कि गुणवत्ता संधारण हेतु जाना किधर है वहीं Indicators (सूचक) हमें उन क्रियात्मक और मूल्यांकन पक्षों को उजागर करता है जिनसे गुणवत्ता संधारण की स्थिति का अन्दाजा लगाया जा सकता है।

आइये सर्वप्रथम हम कुछ गुणवत्ता आयामों (Quality Dimensions) की चर्चा करें–

मुख्य आयाम है–

(a) आधारभूत संरचना और मूलभूत सुविधायें (Basic Infrastructure and facilities)

(b) समुदायिक एवं प्रबन्धकीय सहायता (Community and Management Support)

(c) विद्यालय एवं कक्षा-कक्ष का अधिगम माहौल (Learning Environment of School and Class room)

(d) शिक्षक और शिक्षक निर्माण/शिक्षक-शिक्ष (Teacher and Teacher Preparation/Teacher-Educatioin)

(e) शिक्षक-अधिगम समय या मौके (Teaching Learning time/opportunity time)

(f) कक्षा–कक्ष संचालन एवं अध्येताओं का आकलन, अनुवीक्षण एवं पर्यवेक्षण (Class room parctices and Learners Assessment, Monitoring & Supervision)

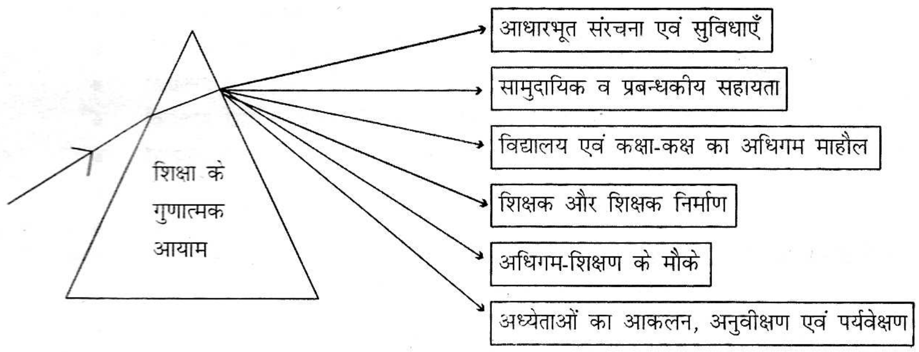

13.5 गुणवत्ता शिक्षा के सूचक (Indicators of Quality Education)

आखिर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के सूचक क्या हैं ?

गुणवत्ता के सूचक क्या हैं इस पर कोई एकमत नहीं है। किसी ने खुली मानविकता, जिम्मेदारियों का बोध , आलोचनात्मक ढंग से सोचने की क्षमता, बहुभाषई निपुणता तथा बहु सांस्कृतिक वातावरण को गुणवत्ता का चूक माना है तो वहीं दूसरी ओर किसी ने शिक्षक की गुणवत्ता को ही विद्यालयी गुणवत्ता का सूचक माना है।

डेविस और एलिसन ने विद्यालयी गुणवत्ता जानने के लिये तीन उत्तरदाताओं विद्यार्थी, शिक्षक तथा अभिभावक से बातचीत की। गुणवत्ता के सूचकों की पहचान के प्रमुख मुद्दे इस प्रकार थे:

विद्यार्थी

- शिक्षण और अधिगम की गुणवत्ता
- स्टाफ मे संतुष्टि
- संप्रेषण
- विद्यार्थियों के व्यवहार के मानदंड
- विद्यालय सुविधाओं की गुणवत्ता
- विद्यालय के सामान्य घटकों तथा संपूर्ण पक्षों से संतुष्टि
- विद्यार्थियों के लिये समान अवसरो का विस्तार

अभिभावक :

- शिक्षण और अधिगम की गुणवत्ता
- स्टाफ से सतुष्टि
- संप्रेषण
- विद्यार्थियों के व्यवहार के मानदंड
- विद्यालयी सुविधाओं की गुणवत्ता

- विद्यालय के सामान्य घटकों तथा संपूर्ण पक्षो से संतुष्टि
- विद्यालय के नियामकों (गवर्नर्स) की भूमिका

अभिभावक

- विद्यालय में संप्रेषण
- अध्यपकों के लिए कार्यकारी वातावरण की गुणवत्ता
- विद्यालय में व्यावसायिक वातावरण
- विद्यालय द्वारा दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता
- शिक्षकों को प्रदान किया जाने वाली व्यावसायिक समर्थन
- शासी निकाय की भूमिका
- विद्यालय से सामान्य संतुष्टि

बॉयर (1996) के अनुसार विद्यालयी गुणवत्ता के लिए पांच प्राथमिकताएं हैं, जो इस प्रकार है :

- उस संस्था के भीतर समुदाय बोध का निर्माण
- भाषाई केंद्रिकता - प्रतीकों का अध्ययन एवं उपयोग
- पाठ्यचर्या का सामंजस्य
- सृजनात्मक अधिगम के लिए वातावरण का निर्माण-सक्रिय अधिगम के लिए एक स्थान, न कि अकर्मणीय अधिगम, एक स्थान जहाँ लोग सर्जक बनने के लिए सीखें, सिर्फ अनुकरण के लिए नहीं, जहाँ वे सहयोग करना सीखें, साथ ही साथ प्रतिस्पर्धा भी हो।
- ऐसे वातावरण का निर्माण जो हर विद्यार्थी के चारित्रिक निर्माण की पृष्टि करें।

विद्यालयों मे गुणवत्ता प्रबंधन पर आयोजित कार्यशालाओं में से एक में भाग ले रहे वरिष्ठ शैक्षिक प्रशासकों ने निम्नलिखित गुणवत्ता के सूचकों को उद्धृत किया है।

- विद्यार्थियों एवं शिक्षकों द्वारा अनुशासन एवं समय की पाबंदी
- विद्यालय प्रांगण की स्वच्छता एवं रखरखाव
- शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता
- गैर शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता।
- संस्था का वातावरण एवं ग्राहकों की संतुष्टि।

उपरोक्त पाँचो सूचक उत्पाद पर जोर देते हैं। शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक उपलब्धियों में उत्कृष्टता गुणवत्ता का पूर्व एवं प्रत्यक्ष सूचक है। जबकि अनुशासन, समयबद्धता, स्वच्छता एवं कार्य संतुष्टि गुणवत्ता के अमूर्त अप्रत्यक्ष सूचक है।

इसी तरह कक्षा की गुणवत्ता एवं कक्षा के बाहर अनुदेश, विद्यार्थियों का मूल्यांकन तथा आकलन, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ, कार्यालयी प्रबंधन तथा बाह्य एजेंसियों के साथ सपर्क गुणवत्ता के कुद सूचक हैं या यूं कहे कि विद्यालय की प्रक्रिया है। बाह्य परीक्षाओं में प्रदर्शन, क्षेत्रीय, जिला, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर के खेलकूद एवं दूसरी इसी तरह की सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों, नौकरी में शिक्षकों की आचार-संहिता एवं संतुष्टि आदि

गुणवत्ता के सूच कहै या यूं कहें कि विद्यालय के उत्पाद हैं। आइए, हम गुणवत्ता आयामों के अन्तर्गत कुछ प्रभावी सूचकों को सूचीबद्ध करने की कोशिश करते हैं–

क्र0(Sl.)	गुणवत्ता आयाम (Quality Dimensions)	गुणवत्ता सूचक (Qualilty Indicators)
(1)	आधारभूत सुविधा	● पर्याप्त जगह, पेयजल, शैचालय खेल का मैदान, बेहतर कक्षा-कक्ष आदि
(2)	विद्यालय प्रबन्धन और समुदाय सहयोग	● छात्रोंपस्थिति, शिक्षकोपस्थिति अकादमिक अनुसमर्थन, यदि सभव हो तो वित्तीय सहयोग, अध्येता, आकलन में सहयोग, समय से किताबों, कॉपियाँ व शिक्षण सामग्री की उपलब्धता
(3)	विद्यालय एवं वर्ग कक्ष वातावरण	● भौतिक स्थिति (हवादार, रोशनी युक्त) ● सामाजिक वातावरण– – छात्र-शिक्षक सम्बन्ध – शिक्षक-शिक्षक सम्बन्ध – शिक्षक-प्रशासक सम्बन्ध – फोकस ग्रुप से छात्र पर विशेष ध्यान – विद्यालय पूर्व सुविधा – प्रोत्साहन योजना – स्वास्थ्य सेवा/जाँच आदि
(4)	शिक्षण अधिगम सामग्री, TLM (उपयोग, निर्माण)	● वर्तमान पाठ्यचर्या अनुरूप सही हो ● दक्षता संघारित करने योगय पाठ समावेश ● पुस्तकालय एवं इसका उपयोग ● TLM निर्माण ● पाठ्य पुस्तक की उपलब्धता एवं वितरण ● प्रयोगशाला 'किट और उनके उपयोग'
(5)	शिक्षक एवं शिक्षक तैयारी	● शिक्षक प्रोफाइल, शिक्षक स्थिति (वर्ग वाट), पूर्व सेवा के अनुभव, सेवा कालीन अनुभव, कक्षा-कक्ष प्रक्रिया का अनुवीक्षण, नवाचारी शिक्षण विधि
(6)	वर्ग कक्ष अभ्यास एवं प्रक्रिया	● छात्र शिक्षक अनुपात, बैठने की उचित व्यवस्था, व्यवस्था, शिक्षण शास्त्रीय विचार (Pedagogy), मूल्यांकन/आकलन प्रक्रिया, सतत आकलन व मूल्यांकन
(7)	समय (शिक्षक-अधिगम)	● कुल दिवस ● वास्तविक कार्य दिवस

		● पाठ्यक्रम पूर्ण करना ● अध्येता के शैक्षणिक कार्य के साथ-साथ सह-शैक्षणिक गतिविधियों के लिए समय
(8)	अध्येता आकलन, अनुवीक्षण एवं पर्यवेक्षण	● नीति का अनुग्रहण (ग्रेड, अंक, सतत व्यापक, सार्वाधिक आदि) ● प्रतिपुष्टि की क्रियाविधि ● अभिभावक की संलिप्तता ● रिकॉर्ड का संधारण आदि।

समग्र रूप से जो गुणवत्ता सूचक हैं, वे कुछ इस तरह से हो सकते हैं–

(i) **हर बच्चे के लिए उपयोग :** आसान शब्दों, 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का मतलब ऐसी शिक्षा है जो हर बच्चे के काम आए व जो हर बच्चे की क्षमताओं के संपूर्ण विकास में समान रूप से उपयोगी हो। यानि ऐसी शिक्षा वैयक्तिक विभिन्नता का ध्यान रखने वाले वाली होगी क्योंकि हर बच्चे के सीखने का तरीका अलग-अलग होता है। ऐसे में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं इस हेतु शिक्षण हर बच्चे के सीखने के तरीकों को अपने में समाहित करने वाली होगी ताकि वर्ग-कक्ष मे कोई भी अच्छा सीखने के पर्याप्त अवसर से वंचित न रह जाये। इसके साथ ही हर बच्चे को विभिन्न गतिविधियों, खेल और प्रोजेक्ट परियोजनाकार्य के माध्यम से उनको सीखने का मौका देने वाला भी होगा।

ऐसी शिक्षा के प्रकरणों के अर्थ निर्माण समझ बनाने पर विशेष ध्यान होगा। बच्चों को चर्चाओं के माध्यम से अपनी बात कहने और ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी का मौका मिलेगा। इस प्रकार से कक्षायी गतिविधि और पढ़ने-पढ़ाने के मुद्दों में विविधता होगी एवं शिक्षक बाल हित में लचीला व्यवहार रखेंगे यानि वास्तव में छात्र केन्द्रि की ओर विचार हो सकेगा। शिक्षक हर बच्चों को साथ-साथ सीखने के अतिरिक्त उन्हें खुद के प्रयास से भी सीखने का पर्याप्त मौका देंगे ताकि बच्चों का आत्मविश्वास बढ़े।

(ii) जीवन कौशलों का विकास करें : ऐसी शिक्षा में बच्चों के सामने समस्या समाधान की दिशा में सोचने वाली परिस्थितियाँ रखी जायेगी ताकि बच्चा ऐसी जीवन कौशलों का विकास कर सके जो आने वाले भविष्य में उसके काम आयेगा। इसके लिए क्लास में एक ऐसा माहौल का होना जरूरी है जहाँ बच्चे भावनात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करें और जहाँ उनकी रचनात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए भी पर्याप्त अवसर उपलब्ध हों। स्कूल में ऐसे माहौल के लिए समुदाय के साथ अच्छी सहभागिता की जरूरत होगी क्योंकि बगैर समुदाय सहयोग के ऐसे सकारात्मक माहौल का निर्माण करना स्कूल के लिए संभव नहीं है क्योंकि स्कूल भी समुदाय का एक हिस्सा है। समुदाय के तरफ से मिलने वाले सकारात्मक सहयोग से ही स्कूल में पढ़ने वाली लड़कियों को भावात्मक संबल दिया जा सकता है। उन्हें आगे की शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है। भारत में भी बालिका शिक्षा के ऊपर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में बच्चों को चुनाव का अवसर दिया जाता है। ऐसे माहौल में एक शिक्षक सुगमकर्ता के रूप मे काम करता है। कक्षा के केन्द्र में बच्चा होता है। बच्चे का सीखना सबसे ज्यादा मायने रखता है। ऐसे में एक बच्चे को पूरा सम्मान मिलता है कि वह आत्मविश्वास के साथ क्लास में अपनी बात बगैर किसी झिझक व संकोच के कहे।

(iii) **सीखने का बेहतर माहौल :** वर्ग कक्ष में पढ़ाई का काम सुचारू ढंग से होने के लिए बच्चो की बैठक व्यवस्था और कमरे में साफ-सफाई का होना भी जरूरी है। गंदे और आपाधापी वाले माहौल में किसी बच्चे के लिए अपनी पढ़ाई के ऊपर ध्यान केन्द्रित करना संभव नहीं रह जायेगा। ऐसे में जरूरी है कि पढ़ने पर काम सुचारू ढंग से हो पाने के लिए बुनियादी माहौल उपलब्ध हो। आखिर में कह सकते हैं कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एक बहुआयामी संप्रत्यय है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के आयाम के रूप में ऐसी शिक्षण व्यक्ति के सामाजिक विकास, चारित्रिक/मूल्य विकास, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सांवेगिक विकास, भाषायी विकास के रूप में गुणवत्ता प्रदान करेगी। यदि हमारी शिक्षा इसमें असफल है, तो फिर हमारी गुणवत्ता का कोई मतलब नहीं रह जाता है।

(iv) सामाजिक सांस्कृतिक चारित्रिक/मूल्य विकास सूचक

प्राथमिक शिक्षा के साथ ही इन गुणों का विकास शुरू होते-होते आगे भी इन गुणों का विकास होता हो एवं इसका व्यवहार मे उपयोग प्रदर्शित होता हो। यदि ऐसा नहीं दिखता हो तो हमारे शिक्षा की गुणवत्ता किस काम की रह जायेगी। अतः गुणवत्त शिक्षण का यह प्रबल सूचक है। इसमें हम देखना चाहेंगे :-

- प्रेम, मित्रता, रिश्ते-नातों का बोध
- भाईचारा, एकता भाव, मदद करने जैसे भावो का विकास
- सहिष्णु भाव
- धार्मिक सौहार्द गुण
- विभिन्न संस्कृतियों के प्रति आदर भाव
- जेण्डर संवेदनशीलता
- महिलाओं, बुजुर्गो, आदरणीय/माननीयों के प्रति आदर, सम्मान एवं सहयोगी भाव प्रकटीकरण
- देश हित (मानवीय गुण) मानव हितों के प्रति उचित निर्णय ले सकने के साथ कर्तव्य बोध भाव।
- अच्छे नागरिक के रूप में उचित कर्तव्य करने में सक्षमता एवं अधिकारों के प्रति सचेतता।
- जाति/धर्म/प्रजाति/वर्ण आधार पर विभेद करने जैसे सामाजिक विकृतियों से छुटकारा दिला पाना।
- सामाजिक कुरीतियों को दूर कर पाना।

यदि हम इन सूचकों के उक्त मुद्दों को नजर अंदाल करेंगे तो पायेंगे कि शिक्षा सर्वहित में न हो अमानवीय व्यवहारों के सूचक हो जायेंगे।

(v) शारीरिक, मानसिक, संवेगी विकास सूचक

अच्छी शिक्षा हमारे शरीर, मन, बुद्धि, सोचने/विचारने, तर्क करने की उचित क्षमता के संवर्धन के साथ-साथ उचित संवेग विकास को बढ़ावा देती है।

- हम, हमारा शरीर, शरीर-तन्त्र, स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ समाज के प्रति सचेतता के विकास में शिक्षा कितना कारगर हैं ?
- किसी समस्या का उचित हल ढूँढ़ पाना, तर्कपूर्ण हल में विश्वास करना, स्मरण करना, तुलना कर

पाना, विश्लेषणात्मक क्षमता का विकास कर पाना, संश्लेषण क्षमता आदि का विकास शिक्षा द्वारा संभव है।

क्या इन सूचकों के प्रति हमारी शिक्षा संवेदनशील है ? यदि हाँ तो गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा के प्रति हमारी तत्परता दीखती है।

- प्यार, घृणा, डर, आनन्द, सुख/दु:ख भाव, संवेदना, तनाव, ईर्ष्या, क्रोध, आत्मसम्मान जैसे सकारात्मक व नकारात्मक संवेगों का संतुलन व्यक्ति के अन्दर किस रूप में शिक्षा अवधि में दौरान विकसित किए गए हैं, यह महत्वपूर्ण है।

(vi) वर्ग कक्ष अभ्यास एवं प्रक्रिया को बेहतर बनाना :

(A) पाठ्यचर्या (Curriculum)

अध्येता समर्थित/सहयोगी समावेशी पाठ्यचर्या (Learner friendly inclusive curriculum)

- विभिन्न पाठ्यक्रमों के पाठ्य प्रकरणों/विश्व वस्तओं का जुड़ाव विद्यालयी ज्ञान के अतिरिक्त दैनिक सामाजिक व्यवहरों या क्रियाओं से संबंधित है।
- विभिन्न पाठ्यक्रमों के विषय वस्तु एवं पाठ्यपुस्तकों की संबंद्धता कला/सौन्दर्य, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा, पर्यावरणीय शिक्षा, शांति जैसे विषयों के समावेशन रूप में हों।
- विद्यालयों के विषय अध्ययन की योजना कुछ ऐसी हो जिसमें माध्यमिक स्तर तक विज्ञान, गणित, सामाजिक-विज्ञान, भाषा, कला शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा इस बात के पर्याप्त मौके उपलब्ध कराती हों जिसमें विज्ञान प्रयोग के कौशल, पूर्व व्यावसायिक क्षमता विकास, कला कौशल एवं खेल कौशल विकसित हो सकें।

उक्त सूचक के सारे शैक्षिक मुद्दे गुणवत्त पूर्ण शिक्षा हेतु विचारणीय है।

(B) वर्ग-कक्ष प्रक्रिया (Clssroom Process)

- सभी अध्येत अधिगम अवधारणाओं को मजे से अर्जित करें अथवा निर्माण (construct) करें एवं उसमें अपने-आप को शामिल रखें।
- पाठ्यचर्या सन्दर्भ/प्रकरण/पाठ्य सामग्रियों का चिन्तन करें।
- अध्येता पाठ्यचर्या में अपनी भाषा एवं संस्कृति की झलक देख सकें।
- अध्येत विज्ञान किट एवं प्रायेगशाला में अपनी पहुँच बना सकें।
- सभी अध्येता को शिक्षकों के साथ विविध सामाजिक/राष्ट्रीय मुद्दों, विभेद के मुद्दों, बेरोजगारी, गरीबी, सामाजिक हाशिए पर के लोगों की बात रखने एवं परिचर्चा करने का मौका मिलता हो।

(C) शिक्षक एवं शिक्षणशास्त्रीय विचार बिन्दु (Teaacher and Pedagogy)

शिक्षक (Teacher)

- विभिन्न संभागों में शिक्षण की योग्यता एवं प्रशिक्षित शिक्षक द्वारा शिक्षण उपलब्धता।
- विषय पर पुख्ता जानकारी होनी चाहिए।

- पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकों के जुड़ाव को शिक्षक जानते हों।
- नियमित, समयबद्ध एवं सहयोगी रूप में शिक्षक की विद्यालय प्रबन्धन के साथ भूमिका।
- बाल मनोविज्ञान/किशोरों के मनोविज्ञान की समझ हो एवं अध्येता के साथ मित्रवत व्यवहार की अपेक्षा।
- पाठ्यचर्या अन्तर्गत अन्तर्विषयक समझ एवं इनके मत्वों से अवगत हो सकना।
- अपने पेशेवर क्षमता के विकास हेतु तत्परता दिखना एवं न केवल प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति तत्परता दिखाना बल्कि जहाँ तक संभव हो सके सेमिनार, शैक्षिक संगोष्ठी आदि में भी भाग लेना।
- शैक्षिक शोध के प्रति पहल कर पाना जिसमें विषय की अवधारणात्मक समझ की समस्या का समाधान, शिक्षण विधि-प्रविधि पर विचार, व्यक्तित्व का आकलन, रूचि/क्षमता निर्धारण, सामंजन आदि जैसे मुद्दो पर क्रियाशील शोध या अनुप्रयोग शोध (Action or Applied Reasearch) शामिल हों।
- अभिग्रम में ICT अनुप्रयोग में अपनी और छात्रों की क्षमता का विकास देख पाये।
- छात्राओं की रूचि, सृजनात्मक क्षमता, अभिक्षमता, आदत व मूल्यों आदि के आकलन के तरीको से अवगत होना।
- पर्यावरण संरक्षण के प्रति स्वयं (शिक्षक) की जागरूकता के साथ छात्रों को भी अभिप्रेरित करना।

शिक्षणशास्त्र (Pedagogy)

- अनिवार्य अवधारणा स्पष्टीकरण हेतु पाठ्यपुस्तक के अलावे विभिन्न अधिगम संसाधनों के उपयोग।
- समुदाय सदस्यों, अभिभावकों, पड़ोस के विद्यालयों के कर्मियों से अच्छे सम्बन्ध।
- समुदाय एवं पड़ोस के विद्यालयों से उपलब्ध संसाधनों को अध्येता के बेहतरी हेतु साझा करना।
- छात्रों की समस्या एवं उनके समाधान पर नजर रखना एवं इस संबंध में उचित निर्देशन एवं सलाह मशविरा करना।
- छात्रों को पुस्तकालय, प्रयोगशाला, हस्त कौशल युक्त क्रियाओ के प्रति अभिप्रेरित करना।
- नवाचार के प्रयेग हेतु भी तैयार कर पाना।

(D) अध्यता अधिगम के गुणवत्ता सूचक (Quality-Indicators of Learner's Learning)

- विविध अवधारणाओं की स्पष्टता हेतु, पूछ-ताछ व संशय दूर करने हेतु और ज्ञान हेतु प्रश्न पूछना।
- पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त पाठ्य सामग्रियों को भी पढ़ना।
- समूह कार्यो एव दायित्वें को समझना एवं समूहगत/दलगत उत्साह से काम करना।
- अध्येता का नियमबद्ध एवं समयबद्ध होना।
- प्रयोगिक कार्यो में नवाचारी विचारों को लागू करना एवं शिक्षकों से विमर्श करना।
- अपने समसमूह (Peer group) से विभेद नहीं करना।

- नियमित रूप से समाचार पत्र, पत्रिका, अपने रूचि अनुसार पुस्तकों का पठन करना।
- सतत आकलन व मूल्यांकन में शिक्षकों के साथ सहयोगी भाव।
- उम्मीद अनुरूप परिणाम न मिलने की स्थिति में शिक्षकों से सहयोग लेना।

(E) विद्यालय के प्रधान शिक्षक/प्राचार्य एवं विद्यालय प्रबन्धन सूचक (Head Teaacher/ Principal of the School and School Management)

- एक कुशल प्रशासक/प्रबन्धक/नेतृत्वकर्त्ता के रूप में अपने समस्त कर्मियो से बेहतर संतुलित ताल-मेल।
- भाषा एवं सम्प्रेषण की स्थिति में निपुणता प्राप्त।
- कर्मियों एवं विद्यार्थियों के प्रति सहयोगी एवं उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील दिखना।
- नवाचार को बढ़ावा देना।
- क्रियाशील शोध को बढ़ावा देना।
- अध्येता के अधिगम विकास की समीक्षा कर पाना।
- अभिलेखों का अद्यतन संधारित होना।
- जिला स्तरीय/राज्य स्तरीय/राष्ट्रीय स्तर के शैक्षिक संस्थाओं के साथ जुड़ाव रखना।
- पाठ्यचर्या क्रियान्वयन एवं शिक्षण शास्त्रीय विचार को ध्यान में रखते हुए शिक्षक को स्वायत्तता प्रदान करना।
- लचीले समय-सारणी, स्कूल कैलेण्डर हेतु शिक्षको से विमर्श कर दिनचर्या तैयार करना।

(F) सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (Continuous & Comprehensive Evaluation)

- प्रत्येक छात्र का जिम्मेवारी युक्त, पारदर्शी तौर तरीके से संधारित एक वर्ष तक के लगातार विषय आधारित/अधिगम अनुक्षेत्र आधारित उपलब्धि प्रदर्शन का आकलन पता हो सके।
- अंक प्रणाली/परीक्षा प्रणाली आदि के हटकर मात्रात्मक की जगह गुणात्मक पहलुओं का मूल्याकन अपेक्षित हेता है।

विशिष्ट गुणवत्ता सूचक (Specific Qulity Indicators)

(a) **आधारभूत संरचना और अन्य संसाधन** (Infrastructure and other resources) प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय को होना चाहिए।

- पर्याप्त संख्या में कक्षा-कक्ष, कला शिल्प कक्ष, समेकित विज्ञान प्रयोगशाला, पुस्तकालय, ICT कक्ष, साफ-स्वच्छ शौचालय, स्वच्छ पेयजल और बिजली।
- खेल मैदान, खेल सामग्री की उपलब्धता।
- विषय शिक्षक, प्राचार्य के रूप में स्नातक प्रशिक्षित/स्नातकोत्तर प्रशिक्षित शिक्षको की उपलब्धता।
- एक प्रयोगशाला सहायक, कम्प्यूटर ज्ञाता, एक किरानी, एक आदेशपाल की अनिवार्य उपलब्धता।
- छात्र शिक्षक अनुपात 35 : 1 की आवश्यकता।

- पुस्तकालय एवं प्रयोगशाला जो जरूरी हो, के लिए क्रमशः पुस्तकें एवं प्रयोग उपस्कर जरूर उपलब्धा हों।
- दुर्घटना से बचव हेतु तत्काल सहायता व्यवस्था (प्राथमिक उपचार हेतु) हो।

(B) विद्यालय योजना-निर्माण एवं प्रबन्धन रूप से गुणवत्ता सूचक (School Planning and Management as a Quality Indicators)

- प्रत्येक विद्यालय में वार्षिक स्कूल कैलेण्डर और कार्य योजना की उपलब्धता।
- अलग-अलग स्तर के समय-सारणी यथा-विद्यालय समय-सारणी, कक्षा-कक्ष समय सारणी एवं शिक्षक समय सारणी की उपलब्धता।
- अलग-अलग विषय शिक्षक, वर्ग मॉनिटर की राय से समय-सारणी निर्माण एवं कक्षा आवंटन।
- 200 कार्य दिवस एवं प्रति दिवस 6 घंटे की दिनचर्या पर कार्य तय किया जाना।
- पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रमों में अनुपातिक दर से समय का निर्धारण।
- NCF द्वारा निर्धारित सभी पाठ्यचर्या क्षेत्रों/विषयों के लिए आवंटन जिसमें कला, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा का भी प्रावधान शामिल हों।
- प्रातः कालीन चेतनासत्र का रोजाना आयोजन।
- SDMC (विद्यालय विकास व प्रबन्धन समिति) की नियमित बैठक जिसमें शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर बेहतरी के लिए बात हो।
- निर्देशन व परामर्श सेवा की उपलब्धत।
- शिक्षकों की नियमित साप्ताहिक बैठक जिसमें अध्येता दिक्कतों के विचारार्थ, समीक्षा व अन्तर्विषयक मामलों पर विचारार्थ मुद्दों पर विचार करना हो।
- 90–100% दैनिक छात्रों पस्थिति संधारण होता हो।
- शिक्षकों की नियमित एवं समयबद्ध उपस्थिति सुनिश्चित होती हो।
- शिक्षक एवं प्रचार्य के साथ पाक्षिक/मासिक विशेष बैठक आयोजन जिसमें समग्र तौर पर वार्षिक योजना क्रियान्वयन की समीक्षा हो।

(C) शिक्षण-अधिगम संसाधन (Teaching-Learning Resources)

- पाठ्य पुस्तक, शिक्षक संदर्शिका, प्रगति संधारक/मूल्यांकन/सतत् मूल्यांकन प्रपत्र की उपलब्धता।
- पत्रिका, पाठ्यक्रम, अलग-अलग विषयों की पाठ्य पुस्तक के साथ-साथ सहायक पाठ्य-पुस्तक, एटलस, शब्दकोष, विश्व कोष, समाचार-पत्र, दृश्य-श्रव्य सामग्री आदि की उपलब्धता।

(D) पाठ्यचर्या क्रियान्वयन (Curriculum transaction)

- कई उपगामों (approaches) पर विचार।
- उपगाम अनुरूप विधियों पर विचार, विधि-प्रविधि पर विचार, शिक्षण-अधिगम प्रक्रियानुरूप अधि गम सामग्री के चयन पर विचार।
- गतिविधि आरित शिक्षण पर जोर हो।

- रटन्त प्रणाली से छुटकार पाने का प्रयास हो।
- बच्चों में संप्रेषाण कौशल के विकास के साथ-साथ गणितीय क्षमता विकास विज्ञान के प्रति लगाव पैदा करने पर बल दिया जाना।
- सामाजिक/चारित्रिक/मूल्य विकास पर विशेष जोर होना।
- रोजगारपरक व्यावसायिक शिक्षा के प्रति रूझाान पैदा करना।
- कला समेकित शिक्षा (AIL) अन्तर्गत चित्रकारी, पेंटिंग, संगीत, नृत्य, नाटक के कक्ष का आयोजन।

इस प्रकार से हम गुणवत्ता शिक्षण सूचको पर बारी-बारी से बात कर रहे थे। अच्छी शिक्षा हेतु ये सूचक इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनहें दरकिनार कर हम एक अच्छी शिक्षा के मायने नहीं समझ सकते। इन सूचकों पर हमारा ध्यान जैसे ही जाता है उसी वक्त उनसे जुड़े संबंधित मुद्दों पर विमर्श शुरू हो जाता है। इस विमर्श का नतीजा यह आता है कि वैसे महत्वपूर्ण शैक्षिक विचारणीय बिन्दुओं पर काम शुरू होता है जिसके आधार पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की पहल शुरू हो जाती है। इस प्रकार ये सूचक ही शैक्षिक मुद्दों का ध्यान आकृष्ट कराते हुए गुणवत्ता संधारण में हम और हमारी शैक्षिक व्यवस्था को लाभ पहुँचाने का काम करते हैं।

अन्त-अन्त तक यह भी जान लेना होगा कि भारत जैसे सघन आबादी एवं विविधता से भरे देश मे कभी भी गुणवत्ता एवं इनके मानकों/सूचकों के निर्धारण की बात लायी जाती है, तो इस पर कई तरह के सवालिया निशान लग जाते हैं। आदर्श रूप से शिक्षा गुणवत्ता को संधारित करने के लिए हम कुछ सूचकों एवं उनके शैक्षिक मुद्दों पर पहल करते हैं। यह बिल्कुल ठीक है परन्तु, सर्वथा उचित नहीं भी हो सकती है। जरा सूक्ष्मत से सोचेंगे तो असहमति के मुद्दे आपको सामने दिखेंगे। जैसे ये सूचक हो सकता है कि प्रथम पीढ़ी के बच्चों एवं उनके परिवार हेतु ठीक नहीं हो तो वहाँ क्या किया जाये ? इस बात को लेकर बड़ा विवाद होता है, यह ठीक वैसे ही है जैसे खाने के लिए उपलब्ध बासमती चावल को कोई खास समूह अच्छी गुणवत्ता का मानेंगे तो कोई नहीं भी मान सकते। हो सकता है कि उनके लिये लाल चावल की गुणवत्ता युक्त हो। ऐसे स्थिति से निपटने हेतु हम सामान्यत: (Equality) की वजाय समता (Equity) से काम लेते हैं। जब थोड़ी बात बनती है तो एक तबका समता की जगह समानता की बात करने लग जाते है। रही-सही कसर बड़ी आबादी के कारण गुणवत्ता, समता और समानता पहलू को लेकर गुणवत्ता संधारण पर एक अड़ंगा लगा देते हैं। इस संबंध में जे. पी. नायक (जयंत पंडुरंग नायक, पूणे) ने अपने पुस्तक में अनुभवो को साझा करते हुए कहा था कि भारतीय शिक्षा मे गुणवत्ता संधारण को लेकर समता, समानता और मात्रा (Equity, Equlity and Quantity) एक त्रिकोण बनाती है जिसे दुर्ग्राह्य त्रिकोण (Exclusive triangle for quality) कहते हैं। यही गुणवत्ता संधारण में बाध क बन जाती है।

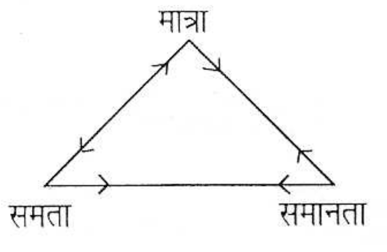

चित्र

13.6 सारांश (Summary)

गुणवत्ता किसी वस्तु का किसी व्यक्ति द्वारा उसकी अभिव्यक्ति है। जहाँ तक शिक्षा एवं गुणवत्ता की बात है यूँ तो ये दो अलग-अलग शब्द है परन्तु, इनका सम्बन्ध वैसा ही है जैसे सूरज और रोशनी। शिक्षा अपने आप में गुणी शब्द है परन्तु, इसके गुणों की अपेक्षा अनुरूप अधिगम परिणाम नहीं दिखने की स्थिति में गुणों का ह्रास देखा जाने लगता है। ऐसी स्थिति में गुणवत्ता शिक्षा की बात की जाती है। मुख्य रूप से कुछ सूचकों से हम गुणवत्ता के संधारण को देख सकते हैं। इन सूचकों का होना शिक्षायी गुणों की संप्राप्ति में सहायक हो सकती है।

13.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के क्या अर्थ है ? यह क्यों महत्वपूर्ण है ?

   What do you mean by quality education ? Why it is important ?

2. गुणवत्ता शिक्षण से आप क्या समझते हैं ? इनके विभिन्न सूचकों को सूचीबद्ध कीजिए एवं गुणवत्ता संधारण में इनके महत्वों को बताइये।

   What do you mean by quality teaching ? List its different indicators and mention the importance in quality attainment.

3. गुणवत्ता शिक्षण के विभिन्न सूचकों को दर्शाइये एवं आप इनसे जुड़े शिक्षण के मुद्दों को उजागर कीजिए।

   Mention but the different indicators of quality teaching and given your view on teaching issue there of.

4. गुणवत्ता शिक्षण हेतु विभिन्न सूचको एवं इस हेतु शिक्षण के मुद्दो की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

   Critically analyze the different indicators of quality teaching and teaching issues there of.

13.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. NCERT (2011), Pedagogy of Science Part I, NCERT, New Delhi
2. NCERT (2011), Pedagogy of Science part II, NCERT, New Delhi.
3. Kulshreshtha (2014), Teaching of Physical Science, R. Lall Book Depot, Meerut.
4. Srivastava, H.S. (2014), Curriculum and methods of teaching, Shipra Pub, New Delhi.
5. Bhatia, R.P. (2009), Features and effectiveness of E-learning tools ? Perspectives in Education 25(3).
6. NCERT, qualilty teaching indicators (Ch-9).
7. NUEPA (2014), Education for ll, To words Quality and Eqity India.
8. Kumar, Sanjeev (2017), ज्ञानानुशासन एवं विषयों की समझ, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली

❒ ❒ ❒

इकाई : 14 गुणवत्ता शिक्षा निर्धारित करने वाले कारक Factors Determining Quality Education

पाठ संरचना (Lesson Structure)

14.0 उद्देश्य (Objectives)

14.1 भूमिका (Introduction)

14.2 शिक्षा में गुणवत्ता के लिए .... (For Quality in Education ....)

14.3 शिक्षा में गुणवत्ता के विचार, क्यों? (Consideration of Education and Quality, Why?)

14.4 शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारित करने वाले प्रभावी कारक (Effective Factor for Determining Quality in Education)

14.5 सारांश (Summary)

14.6 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

14.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

14.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- शिक्षा में गुणवत्ता के उद्देश्यों से अवगत होंगे ।
- शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारित करने वाले कारकों से अवगत हो सकेंगे ।
- गुणवत्ता संधारण के शिक्षक दायित्वों से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

14.1 प्रस्तावना (Introduction)

आज की शैक्षिक व्यवस्था में 'गुणवत्ता शिक्षा' या 'शिक्षा में गुणवत्ता' की बातें खूब हो रही है । यह बताया जाने लगा है कि हमारी शिक्षा में गुणवत्ता का समावेशन होना चाहिए । अब हम शैक्षिक जगत के लोगों की चिंता यह हो जाती है कि जब शिक्षा, गुणों से युक्त एक सामाग्री है तो फिर इस शिक्षा में गुणों को धारित करने या गुणवत्ता लाने की बात क्यों सोची जाने लगी है । पहले गुणवत्ता/गुणवत्ता प्रबन्धन शब्द का उपयोग केवल व्यावसायिक संगठनों में होता था, किन्तु अब यह शिक्षा क्षेत्र में प्रयुक्त होने लगा है । जेसे-जैसे आर्थिक तथा

सामाजिक परिवेश में परिवर्तन आ रहे हैं उसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी परिवर्तन हो रहे हैं । वैश्वीकरण के दौर में अब शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष बल दिया जा रहा है । भारत में भी प्रत्येक क्षेत्र में गुणवत्ता अपनाने एवं बनाये रखने पर काफी बहस एवं विचार प्रस्तुत किए गए हैं । उद्यम के क्षेत्र में तो गुणवत्ता बनाये रखने और उपभोक्ता संबंध में सुधार लाये जाने के उद्देश्य से विशेष निवेश किये जाते हैं ताकि वस्तुओं एवं सेवाओं की गुणवत्ता में कोई कमी न आए । यही सम्बन्ध शिक्षा जगत में शैक्षिक योजनाकार, शैक्षिक प्रबन्धक व प्रशासक, अभिभावक, सामाजिक सेवा प्रदाता एवं संबंधित अध्येता (Learner) एवं उस गुणवान अध्येता के चलते पुनः बेहतर शिक्षा निवेश के प्रयोजन से पुरजोर तरीके से गुणवत्ता शिक्षा की बात हो रही है ताकि शिक्षा के निवेश एवं निवेश अनुरूप उत्पाद का एक अच्छी चीज लोगों को मिल सके ।

परन्तु, शिक्षा की गुणवत्ता को कौन निर्धारित करेगा? ऐसे कौन-से जिम्मेवार कारक हैं जिससे शिक्षा की गुणवत्ता निर्धारित हो सकेगी? इस अध्याय में हम गुणवत्ता शिक्षा को निर्धारित करने वाले कारकों का अध्ययन करेंगे ।

14.2 शिक्षा में गुण्वत्ता के लिए .... (For Quality in Eudcation ....)

शिक्षा में गुणवत्ता एक बहुविनीय अवधारणा है जिसमें शिक्षा से जुड़े सभी कार्य तथा गतिविधियाँ सम्मिलित हैं । अतः, शिक्षा में गुणवत्ता के लिए छात्र, अध्यापक, परिवार, छात्र सहयोगी सेवाएँ संसाधन तथा पाठ्यक्रम सभी की गुणवत्ता बहुत आवश्यक हो जाती है । शिक्षा की गुणवत्ता की कसौटी परिणाम (Result/Output) पर निर्भर करती है । शिक्षा की गुणवत्ता के लिए विभिन्न प्रयास किये गये हैं । ये सम्मिलित प्रयास गुणवत्ता निर्धारक के रूप में जाने जाते हैं । यदि ये अपने कार्यानुरूप हों तो बेहतर गुणवत्ता की उम्मीद की जा सकती है । एक बड़ा घटक/कारक है - 'गुणवत्ता प्रबन्धन' । जब गुणवत्ता प्रबन्धन अच्छा होगा तो शिक्षा की गुणवत्ता भी अच्छी दिखेगी । उच्च गुणवत्ता तथा उच्च मानक बहुत से घटकों (Components) पर निर्भर करते हैं । ये घटक एक प्रणाली (System) बनाते हैं जो कि इनपुट (अक्ष), प्रक्रिया तथा आउटपुट (परिणाम) में वर्गीकृत किये जाते हैं । यथा :-

Input	Process	Out
शिक्षकों की योग्यता	पाठ्यक्रम डिजाइन	बेहतर अध्येता
छात्रों का शैक्षिक अनुभव	अकादमिक सहयोग	बेहतर परिणाम पाने की उम्मीद
अधिगम संसाधन का प्रसाद	छात्र मूल्यांकन	छात्रों को बेहतर उपयोगी ज्ञान, कौशल व व्यवहारिक रूप से अनुप्रयोग

14.3 शिक्षा तथा गुणवत्ता के विचार, क्यों? (Consideration of Education and Quality, Why?)

किसी भी शिक्षण तंत्र के गुणवत्ता प्रबन्ध के कुछ उद्देश्य होते हैं । वर्त्तमान शिक्षण प्रणाली के उद्देश्यों पर गौर करेंगे तो उन्हें आप मुख्यतः तीन वर्गों में वर्गीकृत कर पायेंगे, जो निम्नलिखित हैं :-

(i) सामाजिक गुणवत्ता : भारत विविधताओं का देश रहा है । इस देश में विभिन्न भाषाएँ, धर्म, मत तथा पंथों के अनुयायी रहे हैं । सभी धर्मानुयायी अपने-अपने धर्मों तथा मतों का पालन करते हैं । शिक्षा द्वारा इन सभी को समझना एवं आदर भाव से देखना संभव है ।

निचोड़ यह है कि शिक्षा का स्वरूप व प्रारूप इस प्रकार का हो जिससे कि सामाजिक मूल्यों का विकास हो । इसके आभाव में शिक्षा की गुणवत्ता को ठीक नहीं कहा जा सकता ।

(ii) राष्ट्रीय गुणवत्ता : एकता एवं अखण्डता किसी भी राष्ट्र की प्रगति के लिए अत्यन्त आवश्यक है । नागरिकों में राष्ट्रवाद की भावना जन्म से उत्पन्न नहीं होती है बल्कि शिक्षा तथा अध्यापन द्वारा यह भावना छात्रों में विकसित करनी होती है । शिक्षा में जब शुद्धता तथा गुणवत्ता होगी, तब ही ये भावनाएँ जागृत होंगी । सामाजिक अध्ययन एक ऐसा विषय है, जिसमें राष्ट्र के इतिहास, भूगोल तथा अन्य सामाजिक स्थितियों का गहन अध्ययन किया जाता है । इसलिए इसमें ऐसे तथ्यों का समावेश होना चाहिए जिससे राष्ट्रवाद तथा नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सके । इन मूल्यों के आभाव में गुणवत्ता शिक्षा अधूरी होगी ।

(iii) शैक्षणिक गुणवत्ता : शैक्षणिक गुणवत्ता का अर्थ, शैक्षणिक उत्तमता से है । शिक्षा में सभी विषयों विशेष रूप से विज्ञान, तकनीकी गणित आदि की गुणवत्ता इतनी अच्छी होनी चाहिए कि विषयों का अध्ययन करके विद्यार्थी व्यावसायिक रूप से सक्षम हो सकें और गुणवत्ता प्रधान कार्य कर सकें । प्रायोगिक परीक्षा, प्रोजेक्ट्स तथा प्रस्तुतीकरण के माध्यम से छात्रों को ऐसी उत्तम प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाये जिससे वे भविष्य में जीवन के हर क्षेत्र में भी गुणवत्ता प्रदान कर सकें ।

मुख्य रूप से गुणवत्ता शिक्षा के ख्याल इन्हीं उक्त उद्देश्यों की पूर्ति को लेकर होना चाहिए ।

14.4 शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारित करने वाले प्रभावी कारक (Effective Factor for Determining Quality in Education)

जैसा कि हम जान चुके हैं 'शिक्षा गुणवत्ता' की कसौटी उसके परिणाम पर निर्भर करती है । परिणाम ही यह बता पाता है कि शिक्षा कितनी प्रभावी या अप्रभावी रही है । स्कूल में सीखना मात्र विषयवस्तु को ही सीखना नहीं है । दुनिया को, लोगों को और अपने को देखने का नजरिया क्या हो, यह भी सीखना ही है । विचारों को निर्मित करना, मतों, अनुभवों, व्याख्या के कार्यात्मक ढाँचों को और समग्र दुनिया के प्रति नजरिए को विकसित करना भी सीखने के अंतर्गत आता है ।

गुणवत्ता की दूसरी खास बात होती है कि बच्चों ने क्या सीखा है और जो सीखा है उसमें स्पष्टता और समझ की गहनता कितनी है ।

गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की एक और खासियत होती है कि बच्चो में स्वतंत्र रूप से सीखने और शोध करने की अवधारणाएँ । इनके अतिरिक्त गुणवत्ता शिक्षा ही वह है जो सीखने की भूख पैदा करे यानि कि सीखने और ज्ञान के प्रति रूझान का होना ।

आखिर इस तरह कि अच्छी शिक्षा के निर्धारण के लिए कौन-से कारक विशेष रूप से जिम्मेवार हैं? इन कारकों पर ध्यान से आप जब गौर करेंगे तो निम्न 4 (चार) तरह के कारक मिलेंगे । ये कारक हैं :-

(A) विद्यालय से संबंधित कारक

(B) शैक्षिक प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय गुणवत्ता प्रबंधन कारक

(C) पारिवारिक कारक

(D) मूल्यांकन कारक

(A) विद्यालय से संबंधित कारक :

(i) गुणी/योग्य/स्व-अभिप्रेरित व अनुशासित शिक्षक : एक योग्य गुणी शिक्षक का अर्थ बड़े डिग्रीधारी शिक्षक (M.A, Ph.D) से नहीं होकर वैसे शिक्षक से है, जो विद्यार्थियों को कोई विशेष विषय प्रभावी ढंग से समझा सके तथा स्कूल की अन्य गतिविधियों में भी बच्चों को प्रोत्साहित कर सके । विद्यालयी शिक्षा में अध्यापकों की गुणवत्ता विशेष महत्व रखती है । इस हेतु एक स्व-अभिप्रेरित (Self motivated) शिक्षक का होना बहुत जरूरी है जो अपने और अपने प्रणाली का सुधार स्वयं करने के लिए लालयित हो तथा अपने बच्चों में अपने विषयों के प्रति जागृति बढ़ा दे । यदि ऐसा नहीं हो पा रहा है तो इससे गुणवत्तापूर्ण शिक्षण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं मात्र एक कामचालक खानापूरी ही होती है ।

(ii) अध्यापक की शिक्षण विधि-प्रविधि : इसके अच्छा होने एवं अच्छा नहीं रहने के कारण एक अध्यापक शैक्षिक जगत में बहुत कुछ बदला जा सकता है । अच्छी विधि-प्रविधि सहज शिक्षण एवं बेहतर अवधारणा निर्माण में सहायक होती हैं । जिससे छात्रों में बेहतर ज्ञान व बोध व नए जानने की इच्छा पनपती है । यदि ऐसा हो पाता है, तो शिक्षण गुणवत्ता युक्त कहा जा सकता है ।

(iii) विषयों के अनुप्रयोगी पक्ष पर जोर : यदि विद्यालय शिक्षण का उद्देश्य विषयों के अनुप्रयोगी पक्ष की ओर ध्यान दिलाता है तो ऐसी शिक्षा व्यवहारिक शिक्षा होगी जो कि गुणवत्ता शिक्षण के लिए जरूरी एक कारक है ।

(iv) विद्यालीय जीवन में लोकतंत्र एवं बेहतर सामाजिक वातावरण : विद्यालय परिवार में विविध तरह के लोग शामिल रहते हैं । ये कई तरह के काम करते हैं । इनके बीच का सम्बन्ध यदि लोकतांत्रिक एवं सहयोगी न होकर उपद्रवी एवं नकारात्मकता से भरा होगा तो बेहतर परिणाम की उम्मीद करना बेकार है । यदि परिणाम ही बेहतर नहीं होगी, तो गुणवत्ता की बात कहाँ से सुनिश्चित हो सकेगी ।

(v) भाषा माध्यम : प्रयुक्त भाषा के चलते समझना एवं समझाना दोनों आसान हो सकता है या तो इसके विपरित परिणाम भी हो सकते हैं । समझ की भाषा नहीं होने या किसी खास भाषा को छात्र के अनुरूप नहीं होने के कारण शैक्षिक उपलब्धि कम दिखती है जिसका कुप्रभाव गुणवत्ता संधारण पर पड़ता है ।

(vi) बहुवर्गीय और बहुतस्तरीय कक्षा : कई वर्गों की एक साथ दी जाने वाली शिक्षा एवं कई स्तरों (कमजोर, औसत और तेज) को एक साथ रखते हुए दी जाने वाली शिक्षा अपेक्षित दक्षता का विकास नहीं कर पाती है जिससे हमारी गुणवत्ता प्रभावित होती है ।

(vii) विद्यालय अपनी उपलब्धियों को लेकर चिंतित : यदि विद्यालय के समस्त कर्मी अपने विद्यालय के बेहतर उपलब्धि के प्रति जागरूक हों तो वे हेमशा ही बेहतर उपलब्धि हासिल करने के लिए सोचेंगे जिससे कि एक बेहतर परिणाम मिल सकेगा ।

(viii) विद्यालय के लिए मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता : गुणवत्ता के निर्धारण में ये कारक बड़े महत्वपूर्ण हैं । किसी भी शिक्षण प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कक्षा में विभिन्न वस्तुओं जैसे - कागज, अन्य उपस्कर, पेयजल सुविधा, शौचालय, खेल का मैदान आदि होना एकदम जरूरी है ।

इन मौलिक सुविधाओं के आभाव में छात्र पढ़ने में रूचि नहीं लेते तथा शिक्षक भी ठीक प्रकार से छात्रों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दे पाते हैं । इसका परिणाम होता है कि गुणवत्ता बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है ।

(B) शैक्षिक प्रबन्धकीय एवं प्रशासकीय कारक या गुणवत्ता प्रबन्धन कारक :

(i) संस्थान नेतृत्वकर्ता : किसी भी संस्था प्रधान एवं प्रधान का सभी शैक्षणिक कर्मी एवं गैर-शैक्षण्कि कर्मियों के साथ बेहतर संबंध एवं अच्छी विकास नीति के वजह से संस्थान की प्रगति तथा गुणवत्ता में अवश्य ही सुधार लाया जा सकता है ।

(ii) प्रशासनिक गुणवत्ता : प्रशासनिक कार्य दो स्तरों पर महत्वपूर्ण है -

(a) संस्थान

(b) कक्षा

जहाँ प्राचार्य/प्रधानाध्यापक प्रशासन का कार्यभार संभालते हैं । वहीं अध्यापक कक्षीय स्तर पर देखरेख व सक्षम निर्णय लेते हैं । इसके अन्तर्गत समन्वित रूप से कई कार्य हैं जो विद्यालय विकास में सहायक होते हैं ।

जैसे - बेहतर कक्षा कक्ष संचालन, बेहतर समय सारणी निर्माण व उनपर कार्य, सामाजिक संपर्क, बेहतर नीति निर्माण, अध्यापकों को काम सौंपना, शैक्षिक उपलब्धियों का रिकॉर्ड बनाना, एकेडमिक कैलेण्डर निर्माण कर उसे लागू करना, उपचारात्मक शिक्षण कार्य, छात्रों हेतु निर्देशन एवं परामर्श जैसे कार्यक्रम चलाना, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता सेवा जैसे कार्यक्रम चलाकर बच्चों के चहुँमुखी विकास में सहायक बनना ।

(iii) पाठ्यचर्या निर्माण : क्या पढ़ाया जाए? कितना पढ़ाया जाए? शिक्षण विधि कैसी हो? हमारा मूल्यांकन कैसा हो? ये सारे सरोकार गुणवत्ता शिक्षा से जुड़े हैं । यदि हमारी पाठ्यचर्या इस बात में सक्षम हो एवं पर्याप्त मौके उपलब्ध कराने वाले हो जिससे कि विषयों के अनुप्रयोग, व्यावसायिक क्षमता का विकास, कला कौशल, जीवन कौशल के साथ-साथ नवाचार को प्रेरित करते हों, तो ऐसे पाठ्यक्रम को उत्तम कहा जाएगा । जिससे बेहतर गुणी शिक्षा हमें मिल सकेगी ।

अगर पाठ्यचर्या में संग्रहित अनुभव घिसे-पिटे एवं अद्यतन अनुभव के साथ नहीं हो तो बेहतर गुणवत्ता नहीं मिल सकती है ।

(iv) आधारभूत संरचना और संसाधनों की उपलब्धता : यह बेहतर प्रबन्धकीय/प्रशासकीय निर्णयों का ही नतीजा होगा कि एक संस्था को योजनाबद्ध रूप से उत्क्रमित/उन्नयन किया जा सके जिसमें वह हर कुछ उपलब्ध रहे जिससे हम बेहतर जान सकते हैं जिसके उपयोग से हमारा कार्य सहज हो सकता है । अगर ऐसा हुआ तो गुणवत्ता शिक्षा का बेहतर निर्धारण हो सकता है ।

(v) गुणवत्ता संधारण/प्रबंधन कारक :

(a) **अनियमित अनुवीक्षण, निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण :** संस्थाओं के अनियमित अनुवीक्षण (Monitoring), निरीक्षण (Inspection) एवं पर्यवेक्षण (Supervision) के आभाव में संस्था कर्मी गैर-जिम्मेवार न अनुवीक्षण अभिकरण (monitoring agency) सक्रिय हो जाते हैं, जिससे कि गुणवत्ता प्रभावित हो जाती है ।

(b) **भ्रष्टाचार :** प्रबन्धकीय/प्रशासकीय भ्रष्टाचार गुणवत्ता शिक्षा को बुरी तरह से प्रभावित कर देती है ।

(c) **शिक्षकों के गैर-जिम्मेवार और गैर-अनुशासनिक हरकतें :** खासकर अधिसंख्य ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षकों का समय से स्कूल न आना, समय से पूर्व छुट्टी दे देना, पूर्ण पदस्थापना के लोगों का उपस्थित नहीं रहना आदि कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो जिम्मेवार शिक्षक के लक्षण नहीं है । ऐसी मनमौजी हरकतें शिक्षा की गुणवत्ता को संधारित कर पाने में असमर्थ रहती है ।

(d) **अच्छे वेतन के बावजूद अच्छी शिक्षा का आभाव :** शिक्षक की स्वायत्तता के तहत यदि प्रबन्धन की कड़ी निगरानी नहीं होती है तो वहाँ भी अच्छे वेतनभोगी शिक्षक साधारण साक्षरता या मामूली प्रकरणों की सैद्धांतिक व्याख्या कर विस्तृत ज्ञान प्रदान करने के प्रति उदासीन ही दिखते हैं । ऐसा करने से गुणवत्ता शिक्षा कुप्रभावित होती है ।

(e) **प्रबन्धन द्वारा कम वेतन कर्मियों/शिक्षकों से काम लिया जाना :** प्रबन्धन की इस हरकत से योग्य व कुशल लोग या तो अपनी सहमति प्रकट नहीं करते हैं या तो काम के प्रति उत्साह नहीं दिखा पाते हैं । इस प्रकार से गुणवत्ता प्रभावित होती है ।

(f) **प्रबन्धकीय रणनीति का आभाव, खराब परिणामों को ठीक करने के लिए बड़ी धीमी रफ्तार :** आज कई ऐसी संस्थान है जो शैक्षिक उपलब्धियों पर अपनी वार्षिक रिपोर्ट भी पेश करती रही है।

यथा : ASER (असर) रिपोर्ट, विश्व बैंक रिपोर्ट आदि ।

ASER, 2018 के अनुसार प्रारंभिक शिक्षा के गुणवत्ता पूर्ण नहीं होने का प्रभाव अब माध्यमिक कक्षाओं में स्पष्ट रूप से दिखा है । 57% छात्रों को साधारण भाग नहीं मालूम है, 40% बच्चे अंग्रेजी के वाक्य नहीं पढ़ पा रहे हैं, 25% बच्चे अपनी भाषा को धाराप्रवाह नहीं पढ़ा पर रहे हैं, 58% बच्चे नक्शे पर अपने राजय की स्थिति नहीं जानते व देश के नक्शे की जानकारी 14% को नहीं है । यह सर्वे 24 राज्यों के 28 जिलों में किया गया था (बिहार का मुजफ्फरपुर) । यह रणनीतिक आभाव ही है कि हम गुणवत्ता संधारण के इस मामले में मन्द है ।

(g) बिना किसी Screening जाँच के शिक्षक बहाली ।

(h) उचित वित्तीय आवंटन की गड़बड़ी से आवंटन जहाँ मिलना चाहिए वहाँ नहीं मिल पाता एवं इस तरह से अपव्यय होता है जो गुणवत्ता को प्रभावित कर जाता है ।

(i) **उपलब्धि आधारित/वित्त आवंटन/सहयोग या उन्नयन :** प्रशासकीय संवर्ग यदि उपलब्धि आधारित (Performance based) वित्त आवंटन व सहयोग से संस्था/व्यक्ति को प्रोत्साहित करें तो ऐसे उत्साह बढ़ेगा एवं अच्छा काम होगा, जिससे गुणवत्ता बढ़ेगी ।

(C) पारिवारिक कारक : यह ऐसा कारका है जिसमें दो तरह के परिवारों की गुणवत्ता शिक्षा स्पष्ट रूप से भिन्न दिखती है । ये दो तरह के परिवार है -

- शिक्षित परिवार
- अभिवंचित परिवार
  - उच्च आय एवं समद्ध
  - निम्न आय एवं विपन्न

यहाँ शिक्षत एवं उच्च आय वर्ग के परिवार को ज्यादा सहयोग मिलने से गुणवत्ता हासिल कर पाने में सहायता मिल जाती है ।

अभिवंचित/निम्न आय समूह के बच्चों को पढ़ाने में कुशल शिक्षक को भी दिक्कते आती है एवं ऐसे बच्चे का व्यक्तित्व विकास भी अपेक्षाकृत कमजोर होता है ।

(D) मूल्यांकन कारक : अध्येता के बेहतर मूल्यांकन होते रहने से गुणवत्ता शिक्षा में वृद्धि होगी ।

- इस हेतु बाह्य परीक्षा में कदाचार रोकना होगा ।
- सतत व व्यापक मूल्यांकन को महत्व देना होगा ।
- अकादमिक एवं सह-अकादमिक क्षेत्रों का बेहतर मूल्यांकन करते हुए रिपोर्टिंग करना होगा ।
- अंक प्रणाली की बजाय ऐसी प्रणाली को प्रयुक्त करना होगा जिससे बच्चे अपने को सहज समझेंगे एवं भयमुक्त माहौल में पठन-पाठन का कार्य कर सकेंगे ।
- मूल्यांकन छात्रों की कमियों को दूर करने वाला होना चाहिए ।

ऐसा होने पर निश्चित रूप से गुणवत्ता बढ़ेगी । अत: यह एक प्रबल कारक के रूप में है ।

इस प्रकार से शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारण कई कारकों पर निर्भर करता है । ऐसी गुणी शिक्षा बच्चों को बेहतर बनने का अवसर देती है । ऐसे माहौल में शिक्षक एक अच्छे साधन सेवी की भाँति कार्य करते हैं । कक्षा के केन्द्र में बच्चा होता है एवं एक जागरूक ग्राहक की भाँति वह सारे लाभांश यथा - सामाजिक विकास, चारित्रिक विकास, शारीरिक विकास, संवेगी विकास, भाषिक विकास आदि पाते हुए शिक्षा की गुणवत्ता को हासिल करता रहता है । यदि यह कोई कारकों से प्रभावित होता है तो इसकी गुणवत्ता का ह्रास हो जाता है ।

14.5 सारांश (Summary)

शिक्षा में गुणवत्ता एक बहुविमीय अवधारणा है । जिसमें शिक्षा जगत की समस्त गतिविधियाँ शामिल रहती है । शिक्षा की गुणवत्ता की कसौटी परिणाम पर निर्भर करती है । परिणाम का अच्छा होना गुणवत्ता संधारित करता है । शिक्षा की गुणवत्ता के बड़े उद्देश्य - सामाजिक गुणवत्ता, राष्ट्रीय गुणवत्ता एवं शैक्षणिक गुणवत्ता को हासिल करने से है । मुख्य रूप से गुणवत्ता शिक्षा का ख्याल इन्हीं तीन उद्देश्यों की पूर्ति को लेकर है । इस गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले कुछ कारक है जिनपर विचार अपेक्षित होता है । इस गुणवत्ता को प्रभावित करने वाले चार (4) प्रमुख कारक - विद्यालय संबंधित कारक, प्रबंधकीय/प्रशासकीय गुणवत्ता प्रबन्धन कारक, पारिवारिक कारक व मूल्यांकन संबंधित कारक हैं ।

उक्त सभी कारक किसी न किसी रूप में शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं ।

14.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. शिक्षा में गुणवत्ता के विचार क्यों आवश्यक हैं?

   Why the idea of quality is important in education?

2. शिक्षा में गुणवत्ता निर्धारित करने वाले प्रमुख कारकों की सविस्तार व्याख्या करें ।

   Explain the key factors determining quality in education.

3. गुणवत्ता शिक्षा के निर्धारण में वे कौन–कौन से कारक हैं जो विद्यालय से सीधे संबंधित हैं?

   What are the factors that are directly related to the school in determining quality education?

4. प्रबन्धकीय/प्रशासकीय मुद्दे गुणवत्ता शिक्षा के निर्धारण में किस प्रकार एक प्रमुख कारक की भूमिका निभाते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट करें ।

   How do managerial/administrative issues play a key role in determining quality. Explain with examples.

5. शिक्षण प्रक्रिया का मूल्यांकन गुणवत्ता को किस प्रकार से निर्धारित करते हैं? सकारण उत्तर दें ।

   How do evaluation of teaching process determine quality? Answer reasonably.

6. गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के निर्धारण में शिक्षकों की भूमिका का वर्णन करें ।

   Describe the role of teachers in detremining quality education.

7. शैक्षिक व्यवस्था में शामिल गुणवत्ता युक्त चीजों की गुणवत्ता का प्रबन्धन आप किस तरह से करना चाहेंगे ?

   How would you like to manage the quality of the things included in the educational system?

14.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. NCERT, Quality teaching indicators (Ch-9).
2. NUEPA (2014), Education for All, Towards Quality and Equity in India.
3. Srivastava, H.S (2014) : Curriculum and methods of teaching, Shipra Pub., New Delhi.
4. Mehta, Deepa : Shaikshik Prabandhan, PHI Learning Pvt. Ltd., Delhi.
5. Kumar, Sanjeev (2017), ज्ञानानुशासन एवं विषयों की समझ, समीक्ष प्रकाशन, दिल्ली ।

❑ ❑ ❑

इकाई : 15 विद्यालयों में गुणवत्ता शिक्षा उन्नयन के पहल (Initiatives for Enhancing Quality Education in Schools)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

15.0 उद्देश्य (Objectives)

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

15.2 गुणवत्ता शिक्षा हेतु पहल कौन करेगा? (Who will take the initiative for Quality Education?)

15.3 गुणवत्ता शिक्षण पर पहल, क्यों? (Why initiatives on Quality Education?)

15.4 गुणवत्ता शिक्षा पर पहल कैसे? (How to initiate for Quality Education?)

15.5 सारांश (Summary)

15.6 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

15.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

15.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ गुणवत्ता शिक्षा के वृद्धि में पहल करने वालों को जान सकेंगे ।
- ❖ गुणवत्ता शिक्षा पर पहल क्यों, को जान सकेंगे ।
- ❖ गुणवत्ता शिक्षा पर पहल हेतु सरकार की विकेन्द्रीकृत योजना से अवगत हो सकेंगे ।
- ❖ शिक्षणशास्त्रीय पहल से गुणवत्ता उन्नयन पर विमर्श करेंगे ।
- ❖ नवाचार एवं नई आधुनिक तकनीक पहल से गुणवत्ता उन्नयन के बारे में अवगत हो सकेंगे ।
- ❖ गुणवत्ता वृद्धि में शिक्षक क्षमता वृद्धि के रूप में पहल, को जानेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

15.1 प्रस्तावना (Introduction)

आप अबतक 'गुणवत्ता शिक्षा' से परिचित हो चुके हैं । इसके अलावे आप इस गुणवत्ता शिक्षा के सूचकों से भी भली-भाँति अवगत हैं । आप यह भी जान चुके हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता को निर्धारित करने वाले कारक

कौन-कौन से हैं? इन सब कुछ को जानने के बाद यह जानना बेहद जरूरी हो जाता है कि :-

- 'गुणवत्ता शिक्षा' को लागू कैसे किया जाय? क्या पहल किया जाए?
- इसपर पहल कौन करेगा?
- पहल किस स्तर पर हो सकेगा? आदि ।

यह बहुत स्पष्ट है कि जब तक इस पर आवश्यक पहल न किया जाए तब तक शिक्षा में गुणवत्ता की वृद्धि लाने की बात बेमानी दिखती है । अतः स्कूलों में गुणवत्ता वृद्धि हेतु जरूरी पहलों पर विमर्श आवश्यक होगा । प्रस्तुत इस इकाई में हम अब तक के पहल (Initiation) पर विमर्श करेंगे ।

15.2 गुणवत्ता शिक्षा हेतु पहल कौन करेगा? (Who will take the initiative for Quality Education?)

सबसे पहले यही प्रश्न उठता है कि इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर पहल कौन कर सकते हैं?

— क्या, छात्र एवं शिक्षक? (जो सीधे संबंधित हैं)

— क्या, समाज के सदस्य? (जिनके लिए स्कूल स्थापित है और जिन्होंने स्कूल बनवाया)

— क्या, संबंधित सरकार/सरकारें? (जो पूरी नीति बनाती है और क्रियान्वित करती व कराती है)

या कि

— अध्यापक शिक्षा संस्थान (जो शिक्षक तैयार करते हैं एवं उनमें उचित कौशल विकास कर उनकी क्षमता वर्धन कर सकते हैं)

— कोई शिक्षक प्रबन्धक (निरीक्षक, पदाधिकारी, तकनीकी विशेषज्ञ, प्राचार्य/प्रधान व अन्य)

— कोई नवाचारी सामाग्री (सुलभ पहल)

या, कि शिक्षक अपने शिक्षणशास्त्रीय विचार बिन्दु पर बेहतर पहल कर ।

उक्त तमाम विचारणीय बिन्दु एकल रूप में कार्य नहीं कर पायेंगे और न ही प्रणाली को सुधार पायेंगे ।

उदाहरण के तौर पर :-

छात्र-शिक्षक के पहल बड़े स्तर पर अप्रभावी हो सकते हैं । वैसी स्थिति में प्रशासकीय, प्रबन्धकीय सहयोग से पहल करने की आवश्यकता आ पड़ती है । जब यह निर्णय हो जाता है तो आप इसे बिना समाज के सहयोग से बेहतर रूप में लागू नहीं कर सकते हैं । इस प्रकार से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा की गुणवत्ता निर्धारण एवं संधारण में संयुक्त रूप से पहल करने की जरूरत होती है ।

इस प्रकार से पहल करने वाले होंगे :-

- संबंधित सरकारें
- छात्र/शिक्षक व अभिभावक
- समुदाय
- तकनीकी साधन/संसाधन का दखल
- सभी हितकारी समूह (Stakeholders)

इनमें विशेषकर शिक्षक अपने शिक्षणशास्त्रीय विचार बिन्दुओं पर बेहतर पहल कर विद्यालयी शिक्षा के गुणवत्ता में वृद्धि हेतु पहल कर सकते हैं ।

15.3 गुणवत्ता शिक्षा पर पहल, क्यों? (Why Initiatives on Quality Education?)

यह अति महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षा जो गुण सम्पन्न चीज है उसमें हम गुणों को समाने की बात करें । ऐसा क्यों? इसे समझने के लिए हमें शिक्षा के परिणामों (Output) पर ध्यान देना आवश्यक होगा । आइये कुछ महत्त्वूपर्ण संभागों के परिणाम पर गौर करें ।

(a) **शिक्षा सबों के लिए/समावेशन के मुद्दे :** इस मुद्दे पर बात करें तो इस 21वीं सदी में आज हम प्रारंभिक स्तर पर 6 से 14 आयु वर्ग के सभी बच्चों को मात्र नामांकित करने में ही सफल रहे हैं । भारत के कुल 14.5 लाख प्रारंभिक विद्यालयों में ऐसे 19.67 करोड़ बच्चे नामांकित हैं । छीजन की स्थिति घटी है किन्तु अभी भी प्राथमिक स्तर पर 16% एवं मध्य विद्यालय स्तर पर 32% छीजन दर बरकरार है । हालांकि उपलब्ध आँकड़े सुधार के संकेत दे रहे हैं फिर भी वर्ष 2014 में 61 लाख बच्चे विद्यालय से पलायन किये पाए गए (स्रोत : PIB, GOI, 2016) । ऐसे बच्चों के समावेशन के उद्देश्य से ही गुणवत्ता शिक्षा हेतु पहल जरूरी हो जाता है।

(b) **शैक्षिक उपलब्धि में काफी कमी :** लाख प्रयासों के बावजूद छात्र/छात्राओं की उपलब्धि कम दिखती है। जरा गौर कीजिए : **NAS (National Achievement Survey) के अनुसार** - वर्ग 5 के बच्चों की उपलब्धि यह रही कि मात्र 36% बच्चे ही वैसे रहे जिन्होंने आधे से ज्यादा प्रश्नों को जो कि भाषा की समझ आधारित था, को सही-सही कर पाये ।

ASER, 2017 प्रतिवेदन (16.10.2018 को जारी) के अनुसार - हमारे माध्यमिक बच्चों की स्थिति चिंतनीय है । ये 14 से 18 आयु वर्ग के बच्चे (युवा) अपनी प्रारंभिक शिक्षण स्तर की पढ़ाई पश्चात् अभी माध्यमिक में अध्ययनरत हैं । ऐसे बच्चों का सर्वे रिपोर्ट बताता है - 25% बच्चे (युवा) अभी भी अपनी भाषा में एक सरल पाठ को धारा प्रवाह रूप से नहीं पढ़ सकते । आधे से ज्यादा ऐसे युवा तीन अंकों वाली संख्या का एक अंकीय संख्या से भाग देने में असमर्थ है ।

इन आयु वर्ग के युवाओं में से, जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा के 8 वर्ष पूरे कर लिए हैं, एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जिनमें अभी भी बुनियादी क्षमताएँ, जैसे - पढ़ना, लिखना एवं सरल गणित करने की कमी है ।

दैनिक जीवन की बुनियादी आवश्यकताएँ जैसे कि - वजन करना, माप करना, रूपये-पैसे गिनना, भुगतान की गणना करना, छूट की राशि निकालना, सामान खरीद का निर्णय लेना आदि कर पाना उन्हें नहीं आता।

क्या, इस प्रकार की शिक्षा हमें युवा आबादी वाले देश में 'डेमोग्राफिक डिविडेंड' (जनसांख्यिकीय लाभांश) का लाभ लेने देगा? अत: इन्हीं उक्त से छुटकारा पाने हेतु हमें 'गुणवत्ता शिक्षा' पर पहल करने की जरूरत है ।

(c) **अध्यापक शिक्षा की बदहाल स्थिति :** अध्यापक शिक्षा कई कारणों से अपने उद्देश्यों से भटक सा गया है । अध्यापक निर्माण की इस प्रक्रिया में सैद्धांतिक पाठ्यक्रम अपने व्यवहारिक पाठ्यक्रमों से ज्यादा प्राथकिता में है जो कि गलत है । इसका कुपरिणाम होता है कि शिक्षक प्रशिक्षु सिर्फ परीक्षा देकर उत्तीर्ण होने की चिंता करते हैं और यहीं पर शिक्षण कौशल का विकास अपूर्ण रह जाता है ।

अत: इससे छुटकारा पाने हेतु हमें इसके व्यावहारिक पहलूओं पर ज्यादा सोंचना पड़ेगा और गुणवत्ता शिक्षा में यह एक अत्यावश्यक पहल होगा ।

(d) **आधारभूत संरचना विकास :** अच्छी आधारभूत संरचना एवं बेहतर सुविधा से शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया सहज होती है और इस वजह से गुणात्मक विकास भी होता है । वर्त्तमान परिस्थिति में स्कूलों में कई कमियाँ दिखती है, जिसपर आवश्यक पहल अपेक्षित है ।

(e) समुदाय के प्रति जिम्मेवार शिक्षक के अभाव के कारण विशेष पहल जरूरी ।

(f) पढ़ाई को एवं परीक्षा प्रणाली को सहज बनाये जाने की आवश्यकता को लेकर विशेष पहल की जरूरत।

(g) जेण्डर विभेद के मुद्दे पर पहल करने की विशेष जरूरत ।

(h) शिक्षकों के क्षमता वर्धन हेतु कार्यक्रम चलाना ।

(i) आधुनिक तकनीक अपनाने के आभाव में भी हमारी शैक्षिक गुणवत्ता कम दिखती है । अतः आवश्यक तकनीक, नवाचार के प्रति काम कर गुणवत्ता संधारण की ओर पहल करने की जरूरत है ।

(j) **जवाबदेह शिक्षक के लिए पहल :** आमतौर पर गुणवत्ता संधारक के रूप में हमारे शिक्षक सही शैक्षणिक कार्य को अंजाम नहीं देते हैं । स्थानीय स्तर पर यदि शैक्षिक पर्यवेक्षण, प्रबन्धन, निरीक्षण आदि हो तो उनकी जवाबदेही बढ़ेगी और गुणवत्ता शिक्षा हेतु यह एक पहल होगा ।

(k) क्या पढ़ाया जाए? कैसे पढ़ाया जाए? ज्ञान से ज्यादा बोध पर यानि संप्रत्यय निर्माण (Concept form) पर शिक्षक कैसे पहल करें ताकि गुणवत्ता वृद्धि की ओर एक और पहल हो सके ।

इस प्रकार उक्त सारे कारणों से गुणवत्ता वृद्धि के लिए विभिन्न स्तरों पर पहल करने की जरूरत है ।

15.4 गुणवत्ता शिक्षा पर पहल, कैसे? (How to Initiate for Quality Education?)

1. गुणवत्ता शिक्षा हेतु सरकार की विकेन्द्रीकृत योजना : शिक्षा के विकेन्द्रीकरण से अभिप्राय शैक्षिक प्रशासन व प्रबन्धन में आम जन की भागीदारी द्वारा बेहतर परिणाम देना है । जनता की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था ही एक कारगर उपाय है ।

विकेन्द्रीकरण के आयाम :

- कार्यात्मक स्वायत्तता
- वित्तीय स्वायत्तता
- प्रशासनिक स्वायत्तता

यह गुणवत्ता संधारण में किस प्रकार से पहल करता है? मान लीजिए किसी शैक्षिक व्यवस्था में संसाधन को लेकर कुछ समस्या है । जैसे - स्कूल में अच्छे अतिरिक्त वर्ग कक्ष एवं शिक्षक बहाली को लेकर उत्पन्न समस्या । यदि वह केन्द्रीकृत होगा तो इसका हल उतना अच्छा नहीं होगा जितना कि स्थानीय स्तर पर लिये गए निर्णय से । ऐसे करने से योजना के क्रियान्वयन में अनावश्यक विलम्ब नहीं होगा । इसके साथ-साथ विकास कार्य के लिए उपलब्ध धन राशि का उपयोग स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा होगा। इससे दुरूपयोग रूकेगा एवं गुणवत्ता बढ़ेगी ।

1.1 **कार्यात्मक स्वायत्तता :** स्थानीय स्तर पर योजना निर्माण करना । जेसे - पंचायत स्तर पर, प्रखण्ड स्तर पर, विद्यालय समिति स्तर पर बेहतरी हेतु लिये गये निर्णय ।

यथा : पेयजल, शौचालय, चहारदीवारी निर्माण, बच्चों के लिए आधारभूत सुविधा यथा - खेल का मैदान,

पुस्तकें, नोट बुक आदि की उपलब्धता । माध्यमिक बच्चों हेतु परामर्श कक्षा एवं स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम शिविर लगाने आदि की कार्यात्मक स्वयात्तता से स्थानीय स्तर की समस्या का त्वरित निदान मिल सकेगा।

1.2 **वित्तीय स्वायत्तता :** स्थानीय प्राधिकार को वित्तीय स्वयात्तता देकर संस्थानों के आकस्मिक खर्चे, विकास कार्य, कोई स्कीम चलाने, प्रोत्साहन राशि प्रदान करने, स्वास्थ्य एवं जागरूकता अभियान चलाने जैसे कार्यों में वित्तीय जरूरतों को पूरा करने में स्थानीय प्रशासन स्तर पर वित्तीय स्वायत्तता देकर विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के तहत् विद्यालय की गुणवत्ता हेतु पहल किया जा सकता है ।

1.3 **प्रशासनिक स्वायत्तता :** स्थानीय प्राधिकार, स्थानीय प्रशासन को प्रशासनिक स्वायत्तता देने से शिक्षकों के अनुप स्थिति, छात्रों के अभिभावकों से संपर्क, ग्राम शिक्षा समिति, अभिभावक शिक्षक समिति, जिला शिक्षा समिति एवं राज्य के विभागीय प्रशासन से आपसी तालमेल आदि से पर्यवेक्षण, निरीक्षण व अनुवीक्षण जैसे कार्य प्रभावी होंगे जिससे गुणवत्ता उन्नयन में मदद मिलेगी ।

गुणवत्ता वृद्धि हेतु पहल किस प्रकार से हो सकेगा?

- स्थानीय स्तर पर पर्यवेक्षण कार्य
- PTA (अभिभावक-शिक्षक संघ) का दायित्व
- स्कूल भवन निर्माण में सहयोग
- ग्राम शिक्षा समिति, BRC/CRC के द्वारा कार्य कराना
- स्थानीय समस्याओं के त्वरित एवं ठोस हल निकालना
- साधन/संसाधन से युक्त करना
- स्थानीय बजट बनाना
- अनुशासनिक कार्रवाई करना
- खेल-कूद या सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन

संविधान का 73वाँ संशोधन - पंचायत को संवैधानिक दर्जा देता है । वहीं 74वाँ संशोधन (1992) प्रत्येक राज्य में तीन (3) प्रकार की संस्था व्यवस्था पंचायती राज, पंचायती समिति व जिला परिषद् का प्रावधान रखता है । आगे के 86वें संशोधन द्वारा 6-14 आयु वर्ग के बच्चों हेतु प्रारंभिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में निःशुल्क और अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराना अनिवार्य बना दिया गया है ।

ये सारे विशेष संशोधन हमें विकेन्द्रीकरण को बाध्य करते हैं एवं शिक्षा जो समवर्ती सूची के अन्तर्गत केन्द्र और राज्य सरकारों के महत्त्वपूर्ण दायित्वों के रूप में है, अपने-अपने स्तर से गुणवत्ता वर्धन हेतु आवश्यक पहल कर रहे हैं ।

1.4 **आवश्यक पहल (विकेन्द्रीकृत योजनान्तर्गत) :**

- वैकल्पिक स्कूल व्यवस्था (शिक्षा सबके लिए, के तहत)
- विशेष शिक्षा के प्रावधान (शारीरिक अक्षम बच्चों के आच्छादन हेतु)
- बालिका शिक्षा को बढ़ावा (उचित समावेशन अन्तर्गत)
- शिक्षा गुणवत्ता सुधार कार्यक्रम (विकेन्द्रीकृत व्यवस्था से लागू कराना)

- **संस्थागत सुधार हेतु पहल :** राज्यों को अपनी मौजूदा शैक्षिक पद्धति का मूल्यांकन अधिकार प्रदान किया गया है जिसके तहत शैक्षिक प्रशासन, स्कूलों के उपलब्धि स्तर, वित्तीय मामले, सामुदायिक स्वामित्व प्रदान करना, शिक्षकों की नियुक्ति जैसे मामले, शिक्षकों की तैनाती को तर्कसंगत बनाना, मॉनिटरिंग तथा मूल्यांकन, लड़कियों/अनुसूचित जाति/जनजाति तथा सुविधा वंचित वर्गों के लिए शिक्षा संबंधी मामलों को शामिल किया गया है ।
- **सामुदायिक स्वामित्व प्रदान करना :** सरकारें प्रभावी विकेन्द्रीकरण के जरिए स्कूल आधारित कार्यक्रमों में सामुदायिक स्वामित्व की पहल करती है । जैसे – माता समिति, ग्राम शिक्षा समिति, विद्यालय शिक्षा समिति के सदस्यों और पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों को लेकर कार्यक्रम बढ़ाये जाने से विद्यालय और समाज का अच्छा बंध (Bond) बनता है जो कि कई तरह से गुणवत्ता वृद्धि में सहायक होते हैं ।
- **संस्थागत क्षमता निर्माण :** SSA/RMSA, शैक्षिक संस्थाएँ, SCERT जैसी राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय संस्थाएँ अपनी विशेषज्ञ टोली के माध्यम से निर्णयों पर सहमति बनाने की पहल कर सकते हैं ।

  यथा : अपने स्तर से पाठ्यचर्या निर्माण, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण जेसे कार्यक्रम चलाना आदि ।

  गुणवत्ता में सुधार के लिए विशेषज्ञों के स्थायी सहयोग वाली प्रणाली विकसित करने की पहल पर काम होना जरूरी है । यह शुरू कर स्थानीय संस्थाओं ने बेहतर पहल की है ।
- शैक्षिक प्रशासन की मुख्य धारा में सुधार (स्थानीय तंत्र द्वारा) ।
- **पूर्ण पारदर्शिता युक्त सामुदायिक निरीक्षण :** शैक्षिक प्रबन्ध सूचना समिति (Educational Management Information System), माइक्रो योजना और सर्वेक्षण से समुदाय आधारित सूचना के साथ स्कूल स्तरीय आँकड़ों का बेहतर संबंध बनाने की पहल शुरू हुई है ।
- समुदाय के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित करने की पहल ।
- विकेन्द्रीकृत योजना के तहत् सिविल कार्य अधिकार :
  - गुणवत्ता संधारण हेतु स्कूली सुविधा में सुधार, BRC/CRC के निर्माण की पहल ।
  - आधारभूत संरचना विकास हेतु जिला इकाई का अधिकार ।
  - राशि व्ययन के लिए स्थानिक अधिकार प्रदान करना ।
- स्कूल भवन की देखभाल एवं मरम्मती की पहल एवं उसके तहत सामुदायिक सहयोग से आधारभूत जरूरतों को पूरा करना ।
- विद्यालय शिक्षा समिति/ग्राम शिक्षा समिति को अधिकार प्रदत्त बनाने की पहल :

  शिक्षा को सार्वजनीकरण करने की दिशा में अपने गाँव के स्कूल के विकास हेतु हर संभव कार्य संपन्न कराने की पहल ।

  जैसे – नामांकन कराने में सहयोग, बच्चों के छीजन रोकने में मददगार, विद्यालय प्रबन्धन में भागीदारी, विद्यालय समिति के निर्णयालोक में विद्यालय कोष का संचालन, विद्यालय विकास एवं शैक्षणिक माहौल बनाने में हर संभव वित्तीय एवं गैर-वित्तीय उपायों को संपादित कराना आदि ।

इस प्रकार से सरकार की विकेन्द्रीकृत योजनाएँ विद्यालय विकास में सहायक होती है एवं यही पहल गुणवत्ता से संधारण करती है ।

2. शिक्षक, शिक्षणशास्त्र एवं नवाचारी सामग्री के रूप में गुणवत्ता शिक्षा वर्धन के पहल : विद्यालयों में शिक्षा की गुणवत्ता के स्तर को सुधारने के लिए केन्द्र एवं राज्य दोनों सरकारें नवीन व्यापक दृष्टिकोण एवं रणनीतियों को बनाते हुए शिक्षा की गुणवत्ता वृद्धि के पहल कर रहे हैं । कुछ विशेष कार्य क्षेत्रों की बात करें तो शिक्षकों, शिक्षणशास्त्र अन्तर्गत कक्षा-कक्ष में अपनाई जाने वाली कार्यविधियों एवं नवाचारी शिक्षण सामाग्रियों का गुणवत्ता वर्धन में पहल विशेष अवलोकनीय है ।

2.1 **शिक्षक :** वर्त्तमान में सरकारी विद्यालयों में नियमित शिक्षकों में से 85% व्यावसायिक रूप से योग्यता सम्पन्न हैं । सरकार प्रशिक्षित शिक्षकों की बहाली उनके प्रशिक्षित होने की कोशिशें एवं शिक्षक शिक्षा/प्रशिक्षण के तमाम कोशिशें गुणवत्ता वृद्धि के लिए कर रही हैं ।

शिक्षकों की पर्याप्त संख्या गुणवत्ता शिक्षा की आवश्यक शर्त्तों में एक है । अच्छे शिक्षकों की उपलब्धता हेतु सरकार ने कई पहल किये हैं :-

- TET (शिक्षक अभिक्षमता परीक्षण) उत्तीर्णता के आधार पर शिक्षक बहाली ।
- अध्यापक शिक्षा संस्थानों को निर्देश देना एवं समय-समय पर पाठ्यक्रमों का पुनःनिर्माण करते हुए विनियम बनाना ।

  वर्त्तमान में सक्षम शिक्षक निर्माण हेतु 4 वर्षीय ITEP (Integrated Teacher Education Program/समेकित अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम 1 एवं 2) चलाने का निर्णय लिया गया है । इसमें ITEP-1 पूर्व प्राथमिक से प्रारंभिक तक के लिए जबकि ITEP-2 मध्यमिक से उच्च माध्यमिक तक के लिए चालाया जाने वाल नवीन पाठ्यचर्या है जिसमें स्नातक के साथ-साथ प्रारंभिक प्रशिक्षित एवं माध्यमिक प्रशिक्षित शिक्षक तैयार हो सकेंगे । ऐसा करने से शिक्षण पेशों में रूचि रखने वाले लोग शुरू से ही इसी पेशे के लिए समर्पित होंगे जिससे बेहतर गुणवत्ता संधारित हो सकेगा ।
- उचित छात्र-शिक्षक अनुपात हेतु किया गया पहल : पहले की तुलना में अब यह काफी संतुलित हो पाया है । यह आवश्यक पहल भी गुणवत्ता संधारण हेतु जरूरी है ।
- शिक्षक एंव प्रधान शिक्षक या प्राचार्य को समय-समय पर नये शैक्षिक उपकरणों से परिचित कराते हुए, उनका क्षमता वर्धन करना ।
- जैसे - ICT प्रशिक्षण उपलब्ध कराना, OER (खुला शैक्षिक संसाधन) व अन्य शैक्षिक संसाधनों से परिचित कराना, पाठ्यसामग्री के कठिन अधिगम बिन्दु को आसान बनाने की मिली-जुली पहल कर शिक्षा गुणवत्ता को बढ़ावा देना ।

2.2 **शिक्षण शास्त्रीय विचार :** गुणवत्ता के एक पहल में बच्चों की भागीदारी या उनकी उपस्थिति महत्त्वपूर्ण होती है । स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति सुनिश्चित करना ही पर्याप्त नहीं है । अगर बच्चे स्कूल आ रहे हैं तो यह भी सुनिश्चित होना चाहिए कि वे सीख रहे हैं । अगर एक बच्चा अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा स्कूलों में बिता रहा है तो उसका कुछ तो परिणाम होना चाहिए ।

- आखिर कक्षा कक्ष में क्या होना चाहिए?
- विधि/प्रविधि क्या हो?
- बच्चों में अवधारणात्मक बोध कैसे कराया जाए?
- मूल्यांकन प्रविधि क्या हो?

उक्त इस विचार-बिन्दु के तहत् मनोविज्ञान भी मान्यता देता है कि बच्चों के सीखने की रफ्तार में वैयक्तिक विभिन्नता पाई जाती है और हर बच्चा अपनी रफ्तार से चीजों को ग्रहण करता, समझता और सीखता है । लेकिन तमाम तर्कों के आगे बच्चों में परीक्षा का व्याप्त भय इस कदर होता है कि वे वास्तविक जानने-बूझने एवं पूछने में हिचकिचाते हैं एवं अंधी दौड़ में वे अपने को अलग महसूस करते हैं । यहाँ मूल्यांकन प्रणाली में पहल की आवश्यकता पद्धति की बजाय वर्ग कक्ष उपलब्धि आकलन एवं समग्र रूप से हरेक क्षेत्र के सतत् आकलन पर जोर ज्यादा दिया गया है ।

ऐसी पहल बच्चों में भय को खत्म करती है, जानने की लालसा बढ़ाती है एवं अवधारणा आधारित बोध होता है ।

जहाँ तक शिक्षण/प्रविधि की बात है, वही विधि या प्रविधि अच्छी होती है, जो समूह के समझ योग्य हो । यह परिस्थिति विशेष के अनुरूप होती है ।

2.3 नवाचारी सामग्री के प्रयोग की पहल : आज के इस युग में ऐसे कई आधुनिक सामग्री का प्रचलन बढ़ाने की जरूरत आ पड़ी है जिससे हमारी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सहज एवं बोधगम्य हो जाएगी ।

जैसे — ICT उपकरण एवं उसका बेहतर प्रयोग

— कम्प्यूटर का विशेष उपयोग

— ई० पठन सामग्री

— OER (खुला शैक्षिक संसाधन)

— दृश्य-श्रव्य सामग्री का बेहतर उपयोग

— एंड्रॉयड फोन का इस्तेमाल (शैक्षिक सामग्रियों को ढूँढ़ने में)

— डिजिटल बोर्ड/स्मार्ट बोर्ड का प्रचलन

— सोशल मीडिया द्वारा नये शिक्षण-अधिगम में सहयोग

इनके प्रयोग होने से जहाँ पठन-पाठन आसान होता है । वहीं विद्यार्थियों में अवधारणात्मक बोध में वृद्धि होती है ।

3. केन्द्र सरकार की 'समग्र शिक्षा' कार्यक्रम के रूप में पहल : स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाते हुए सरकार ने 'समग्र शिक्षा' नाम से नए कार्यक्रम की शुरूआत की है । सबको शिक्षा, अच्छी शिक्षा के लक्ष्य के साथ शुरू किये गए इस कार्यक्रम के तहत पहली बार प्री-स्कूल से 12वीं तक की शिक्षा को एकीकृत किया गया है । HRD मंत्री प्रकाश जावेडकर ने इसकी पहल की है । इसके तहत् SSA, RMSA और अध्यापक शिक्षा (TE) को मिलाकर नये कार्यक्रम की शुरूआत की गई है ।

स्कूली शिक्षा में सामाजिक और लैंगिक असमानता को दूर करना, नवीं से बारहवीं तक के छात्रों को व्यावसायिक प्रशिक्षण मुहैया कराना, शिक्षा में तकनीकी उपयोग बढ़ाना और खेल-कूद व शारीरिक शिक्षा को प्रोत्साहन 'समग्र शिक्षा' के महत्त्वपूर्ण अंग हैं । इस समग्र शिक्षा में अध्यापक शिक्षा, सेवारत शिक्षकों के प्रशिक्षण और छात्रों के सीखने के परिणाम पर भी सरकार का खासा जोर है । इस पहल से गुणवत्ता उन्नयन में मदद मिल सकेगी ।

4. अध्यापक शिक्षा में सुझाव नहीं सुधार की जरूरत के रूप में पहल : अध्यापक शिक्षा पर विभिन्न आयोगों ने पर्याप्त विचार प्रस्तुत किये हैं । कुछ सुझाव तो उनमें से ऐसे भी हैं जिन्हें कई दशकों से दुहराया जा रहा है पर वे आजतक क्रियान्वित नहीं किये जा सके हैं । अध्यापक शिक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण पक्ष की उपेक्षा हुई है, जो नहीं होनी चाहिए क्योंकि इसका संबंध मानव-मूल्यों एवं अच्छे अध्यापक-अध्यापिकाओं के निर्माण से है ।

यह अच्छी बात है कि आयोगों के सुझाव के आधार पर जहाँ इनके (अध्यापक-शिक्षा) असंतुलित प्रसार की बात है वह इस बीच समाप्त कर दी गई है और सेवारत प्रशिक्षित शिक्षकों को सतत् शिक्षा की व्यवस्था भी की जा रही है । हाँ, अध्यापक शिक्षा के स्तर में वांछित विकास नहीं किया जा सका है । इस बीच अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में नई समस्याएँ भी उठ खड़ी हुई हैं । जैसे - प्रायोगिक कार्यों को संपादित कराने की क्षमता, अभ्यर्थियों के चयन की समस्या, अध्यापक-शिक्षा संस्थाओं की दशा सुधारने की समस्या और प्रशिक्षणार्थियों के मूल्यांकन की समस्या । यदि देखा व समझा जाए तो अब अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में विशेष अधिवेशन व संगोष्ठी की आवश्यकता नहीं है । सुझावों को कार्यान्वित किया जाना ही नितान्त आवश्यक है व इन सब समस्याओं का सबसे कारगर उपाय है - ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा । यदि शिक्षा जगत के सभी व्यक्ति ईमानदार पहल करें तो सीमित साधनों से भी शिक्षा के उद्देश्यों को आवश्यक को अधिक से अधिक पाया जा सकता है । आवश्यक पहल कुछ इस तरह हैं :-

- प्रशिक्षण संस्थानों के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विधियों को नये करने की पहल, क्योंकि शिक्षण सिद्धांत एवं व्यवहारिक अध्यापन में कोई तालमेल नहीं है ।
- सैद्धांतिक ज्ञान की अधिकता को कम किये जाने की पहल ।
- शैक्षणिक सत्र का समय से शुरू कराया जाना ।
- व्यवहारिक पाठ्यक्रम का पर्यवेक्षण अच्छा से किया जाए एवं शिक्षण कौशलों पर जोर दिये जाने हेतु पहल ।
- अध्यापक बनने की रूचि वाले व्यक्तियों का ही पाठ्यक्रम प्रवेश । ऐसा करने के लिए पाठ्यक्रम अवधि को बढ़ाने के साथ-साथ स्कूली विषयों से जोड़े जाने हेतु पहल ।
- अध्यापक शिक्षा संस्थानों में होने वाले शोषण व परीक्षा के संपादन और मूल्यांकन की समस्या खत्म करने हेतु पहल ।

इस पहल से जहाँ अध्यापक शिक्षा संस्थानों की कमियों को दूर किया जा सकेगा वहीं एक अच्छे अध्यापक निर्माण का पहल भी हो सकेगा । ऐसा होने पर गुणवत्ता संधारण में मदद मिल सकेगा ।

4.1 सामुदायिक सहभागिता : प्रत्येक समुदाय अपनी प्रगति के लिए नई पीढ़ी को अच्छी से अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करता है । यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आज तक समुदाय ने अपनी प्रगति हेतु शिक्षा को अपने आदर्शों और उद्देश्यों के अनुरूप मोड़ा है । इसी कारण से स्कूल को समाज का लघु रूप भी कहा जाता है ।

एक समुदाय प्रत्यक्ष रूप से विद्यालयों में निम्न कार्यों के द्वारा सहयोग देते दिखते हैं :-

- विद्यालय निर्माण, मरम्मती, देख-रेख, सुरक्षा व साफ-सफाई की व्यवस्था ।
- छात्रों के नामांकन, उनके उपस्थिति संधारण में मदद करना ।

- कक्षा निरीक्षण एवं शिक्षण निष्पादन पर चर्चा एवं सहयोग ।
- जागरूकता अभियान चलाने में मदद करना ।
- धन, सामग्री एवं श्रम में शिक्षकों के साथ छात्रों की शैक्षिक प्रगति पर चर्चा करके ।
- आधारभूत संरचना में सुधार हेतु विद्यालय प्रधान से उपायों पर विचार साझा करना ।
- सुविधा वितरण यथा - पोशाक, MDM, पाठ्यपुस्तक वितरण आदि में सहयोग देना ।
- वित्तीय संसाधनों के उचित उपयोग का निरीक्षण करना ।
- शिक्षकों की स्थानीय निकाय द्वारा नियुक्ति एवं उसे सहयोगा देना ।
- शैक्षिक समस्याओं के निपटारे में मदद कर ।

इस प्रकार शिक्षा समुदाय के माँग/आकांक्षा व सहयोग पर ही आधारित होता है । यदि समुदाय इससे गायब हो जाए, तो कैसी होगी शिक्षा? समुदाय ही स्कूलों की स्थापना करते हैं; पाठ्यक्रम का निर्माण समुदाय की जरूरत के अनुरूप बनाया जाता है ।

अंत में हम यही कह सकते हैं कि गुणवत्ता शिक्षा को बढ़ावा हेतु सामुदायिक सहयोग के द्वारा पहल बहुत ही कारगर पहल है ।

5. **शिक्षकों की क्षमता वर्धन :** गुणवत्ता बढ़ाने हेतु कार्यरत शिक्षकों की क्षमता वर्धन हेतु पहल एकदम जरूरी होगा । शिक्षक क्षमतानुसार बेहतर उपलब्धि दे सकें इस हेतु उन्हें सक्षम बनाया जाना बेहद जरूरी पहल होगा । इस हेतु हम क्या-क्या कर सकते हैं?

- **शिक्षकों की जरूरी विकास विश्लेषण (DNA - Development Need Analysis) :** इसके तहत हमें शिक्षकों की आवश्यकता आधारित विकास के पहलूओं का अध्ययन करना जरूरी हो जाता है । इन्हें किस चीज की आवश्यकता है?

  जैसे — क्या, उन्हें विषय विशिष्ट जानकारी बढ़ाना है?
  — क्या, वे शिक्षण तकनीक में सुधार चाहते हैं?
  — क्या, उन्हें प्रबन्धकीय मुद्दे में परेशानी है?
  — क्या, उन्हें संप्रेषण कौशल के विकास की जरूरत है?
  — क्या, उनमें पाठ्यपुस्तक या मॉडयूल निर्माण हेतु सहायता की आवश्यकता है?
  — क्या, उन्हें पाठ्यक्रम निर्माण पर काम करने की जरूरत है?
  — क्या, वे शैक्षिक नवाचार चाहते हैं?
  — क्या, उन्हें आधुनिक तकनीक अनुप्रयोग की आवश्यकता है?

- शिक्षकों की आवश्यकता आधारित यह विश्लेषण उसकी क्षमता वृद्धि हेतु जरूरी होता है जो कि शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में काम आती है ।
- पाठ्यक्रम उन्मुखीकरण, रिफ्रेशर कोर्स, शिक्षण नवाचार आदि पर प्रशिक्षण के द्वारा सशक्त बनाया जाना ।

- कान्फ्रेंस, सेमिनार व अन्य शैक्षिक कार्यक्रमों में भागीदारी एवं ऐसे कार्यक्रम आयोजन की जिम्मेवारी सौंप कर पहल ।
- शैक्षिक शोध में बढ़ावा देकर ।
- क्रियाशील शोध के लिए पहल ।
- शिक्षण प्रकरणों में कठिन अधिगम बिन्दुओं को आसान करने की पहल ।
- शैक्षिक प्रशासन एवं प्रबन्धक की जिम्मेवारियाँ सौंपने हेतु पहल एवं संबंधित प्रशिक्षण की व्यवस्था के रूप में पहल करना ।
- अन्तर्विषयक मामलों पर काम कर विषय प्रकरणों को समृद्ध बनाना ।

उक्त सारे पहल एक सक्षम शिक्षक निर्माण में सहायक हैं और सक्षम शिक्षक ही गुणवत्ता संधारण एवं गुणवत्ता उन्नयन में सहायता कर सकते हैं ।

अंततः हम यही कह सकते हैं कि गुणवत्ता शिक्षा के आवश्यक पहल में जहाँ सरकार की विकेन्द्रीकृत नीति कारगर है वहीं अन्य पहलों में सामुदायिक सहभागिता, शिक्षक उन्नयन, शिक्षणशास्त्रीय बिन्दु पर विशेष पहल के साथ-साथ शैक्षिक नवाचार व तकनीक पहल सभी गुणवत्ता शिक्षा के उन्नयन में सहायक हैं ।

15.5 सारांश (Summary)

जब बात गुणवत्ता शिक्षा की हो तो गुणवत्ता बढ़ाने हेतु कुछ आवश्यक पहल की जरूरत हो जाती है । जब तक आवश्यक पहल न हो तब तक शिक्षा में गुणवत्ता वृद्धि लाने की बात बेमानी ही दिखती है । गुणवत्ता शिक्षा पर पहल इसलिए भी आवश्यक हो जाता है क्योंकि शैक्षिक उपलब्धि मे कमी दिखने लगती है । सबके लिए शिक्षा के उद्देश्य पूरे नहीं दिखते हैं, अध्यापक शिक्षा संस्थान अपने दायित्वयों को नहीं निभा रहा होता है ।

अब जब पहल की बात होती है तो यह महत्त्वपूर्ण होता है कि पहल किस स्तर पर हो? इस पहल के अन्तर्गत सरकार की विकेन्द्रीकृत योजना जिसके अन्तर्गत समुदाय सहभागिता को सुनिश्चित करना भी शामिल है । इसके बाद शिक्षणशास्त्रीय बिन्दु एवं नवाचार सामग्री के रूप में शिक्षा वर्धन के लिए पहल आवश्यक होता है । शिक्षक के क्षमता वर्धन हेतु पहल किया जाना भी गुणवत्ता संधारण का अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण पहल है । सभी तरह के पहल शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने में ही सहायक होते हैं ।

15.6 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. गुणवत्ता शिक्षा के वृद्धि हेतु आप कौन-कौन से पहल करना चाहेंगे? इस पहल के पीछे आपके उद्देश्य क्या होंगे? विस्तारपूर्वक समझायें ।
   What steps will you take for the development of quality education? What will be your objectives behind these steps? Explain in detail.
2. गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा पर पहल क्यों आवश्यक है?
   Why is initiative required on quality education?

3. गुणवत्ता शिक्षा वर्धन में सामुदायिक सहयोग किस प्रकार से भागीदार होंगे? विस्तारपूर्वक समझायें।
   How will community participate in enhancement of quality education? Explain in detail.
4. शिक्षकों के क्षमता वर्धन के रूप में पहल किया जाना शिक्षा की गुणवत्ता संधारण हेतु क्यों जरूरी हो जाता है?
   Why initiative in the form of capaicty building of teachers are necessary for quality improvement of education?
5. शिक्षा की गुणवत्ता वृद्धि लाने हेतु सरकार की विकेन्द्रीकृत योजना नीति किस प्रकार से पहल करती है? समझायें ।
   How do governments decentralized planning policy initiates to enhance the quality of education? Expalin.

15.7 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Dash, B.N (2010), A new approach to Teacher and Education in emerging Indian Society, Neelkamal Pub. Pvt. Ltd., New Delhi.
2. IGNOU (2000), Education in the Indian Societical Context, Es-334, Education & Society.
3. NCERT, Quality Teaching Indicators (Ch-9).
4. NUEPA (2014), Education for All, towards Quality and Equity in India.
5. कुमार, संजीव (2017), ज्ञानानुशासन एवं विषयों की समझ, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली ।

❑ ❑ ❑

इकाई : 16 विद्यालय की गुणवत्ता उत्थान में विद्यालय, शिक्षक एवं समुदाय की भूमिका
Role of School, Teacher and Community to Promote Quality Education in School

पाठ संरचना (Lesson Structure)

16.0 उद्देश्य (Objectives)

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

16.2 विद्यालय की अवधारणा (Concept of School)

16.3 विद्यालय में शिक्षक का स्थान (Place of Teacher in School)

16.4 विद्यालय के गुणवत्ता उत्थान में समुदाय (Community to Promote Quality Education in School)

16.5 विद्यालय : परिवर्त्तन का एक अभिकरण (School : Agent of Change)

16.6 सारांश (Summary)

16.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

16.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

16.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- विद्यालय की अवधारणा को समझ सकेंगे ।
- विद्यालय के अर्थ, महत्त्व तथा कार्यों को समझ सकेंगे ।
- विद्यालयी व्यवस्था के अंतर्गत शिक्षक के महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- विद्यालय किस प्रकार समाज के उत्थान में अपना योगदान देंगे, यह जान सकेंगे ।
- विद्यालय में शिक्षक का स्थान एवं योगदान को जान सकेंगे ।
- विद्यालय का समुदाय के उत्थान में योगदान को जान सकेंगे ।
- किस प्रकार विद्यालय समाज में परिवर्त्तन के रूप में अभिकरण की भूमिका निभाते हैं, जान सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

16.1 प्रस्तावना (Introduction)

मानव-सभ्यता का विकास प्राचीन काल में ही हो चुका था । प्रारंभिक दिनों में मानव-सभ्यता की आवश्यकताएँ तथा ज्ञान सीमित थीं । अत: ज्ञान परिवार तथा बड़े-बूढ़ों से जानकारी द्वारा प्राप्त होती थी । धीरे-धीरे यह प्रक्रिया जटिल होती गई । सम्पूर्ण ज्ञान परिवार तथा अन्य औपचारिक साधनों द्वारा देना कठिन हो गया । इस परिस्थिति में और शिक्षा देने के लिए एक औपचारिक प्रक्रिया की आवश्यकता महसूस की जाने लगी । जहाँ उन्हें विधिवत रूप से भाषा, भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, शरीर-रचना आदि विषयों की शिक्षा विद्वत जनों द्वारा दी जा सके । इस प्रकार, समाज तथा व्यक्ति की जरूरतों को पूरा करने के लिए विद्यालय नामक संस्था ने जन्म लिया ।

प्रस्तुत पाठ में शिक्षार्थीगण विद्यालय का योगदान को जानेंगे; विद्यालय का अर्थ क्या होता है? क्यों विद्यालयी शिक्षा बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है, जानेगें । वे यह भी जानेगें कि समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति विद्यालय किस प्रकार करता है? विद्यालयी शिक्षा में शिक्षक की भूमिका सर्वोपरी होती है । अत: शिक्षक का विद्यालय-सांस्कृति में क्या स्थान है तथा समुदाय के जरूरतों को विद्यालय किस प्रकार पूर्ति करता है । विद्यालय का कार्य न सिर्फ समाज की जरूरतों की पूर्ति करना है, बल्कि समाज में व्याप्त बुराईयों को भी दूर करना है । अर्थात् समाज में सद्गुणों का संचार भी करना विद्यालय का कार्य है । समाज में परिवर्त्तन लाना भी विद्यालय का कार्य है । इन सभी बातों की विस्तृत जानकारी इस पाठ में दी जा रही है ।

16.2 विद्यालय की अवधारणा (Concept of School)

विद्यालय नामक शिक्षा के औपचारिक संस्था का गठन प्राचीन काल में ही हो चुका था । इसका कार्य परंपरागत रूप से ज्ञान देने हेतु ही किया जाता रहा है । वास्तव में, समाज के इस संस्था का निर्माण ही व्यक्ति तथा समाज की जरूरतों की पूर्ति हेतु किया गया है । यहाँ समाज के कर्णधारों को शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती है । इन बातों को समझने के लिए हमें विद्यालय का अर्थ जानना होगा :-

16.2.1 विद्यालय का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of School)

विद्यालय शब्द को अंग्रेजी भाषा में स्कूल (School) कहते हैं । स्कूल शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द Skhole से हुई है, जिसका अर्थ 'अवकाश' (Leisure) होता है । प्राचीन यूनान में अवकाश के समय ही बच्चों को ज्ञान प्रदान करने का कार्य किया जाता था । इस 'अवकाश' काल में ही बच्चों के समुचित विकास के लिए शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक आदि ज्ञान दिया जाता था, जिससे उनका समुचित विकास हो सके । उस युग में अवकाश काल को ही 'आत्म विकास' का समय समझा जाता था । 'आत्म विकास' के लिए अभ्यास 'अवकाश' नामक निश्चित स्थान पर किया जाता था । शनैं-शनैं अवकाश शब्द का अर्थ ही 'आत्म विकास' व 'शिक्षा' हो गया । कालंतर में, ये अवकाशालय ऐसे स्थान बन गए, जहाँ पर शिक्षक किसी निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित पाठ्यक्रम को निश्चित समय में समाप्त करने लगे और धीरे-धीरे वर्त्तमान विद्यालय का स्वरूप अस्तित्व में आया, जिसकी चार दीवारी में बालकों को शिक्षा प्रदान की जाने लगी । 'अवकाश' (Leisure) के विषय में **ए०एफ० लीच** ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं – "वाद-विवाद या वार्ता

के स्थान जहाँ एथेन्स के युवक अपने अवकाश के समय को खेल-कूद व्यायाम और युद्ध के प्रशिक्षण में बिताते थे, धीरे-धीरे दर्शन तथा उच्च कक्षाओं के स्कूलों में बदल गए । एकेडेमी के सुन्दर उद्योगों में व्यतीत किए जाने वाले अवकाश के माध्यम से स्कूलों का विकास हुआ ।" (The discussion forms or talking shops where the youth of Athens spent their leisure time in sports and exercise, in training for war, gradually crystallised into school of philosophy and the higher arts. In the leisure spent in the trim gardens of the academy, school developed.— **A.F. Leach**)

विद्यालय के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ अन्य परिभाषाओं को भी देखेगें । **जॉन डीवी** ने बताया कि "स्कूल एक ऐसा विशिष्ट वातावरण है, जहाँ बालक के वांछित विकास की दृष्टि से, उसे विशिष्ट क्रियाओं तथा व्यवसाओं की शिक्षा दी जाती है ।" (According to **John Dewey**, "School is a special environment, where a certain quality of life and certain types of activities and occupations are provided with the object of securing the child's development along desirable lines.") इसी प्रकार, **जे0एम0 रॉस** का कथन है कि "स्कूल वे संस्थाएँ हैं, जिनको सभ्य मानव ने इस दृष्टि में स्थापित किया है कि समाज में सुव्यवस्थित तथा योग्य सदस्यता के लिए बालकों की तैयारी में सहायता मिलें ।" (**J.S. Ross** said that, "School are institutions devised by civilized man for the purpose of aiding in the preparation of the young for well adjusted and efficient membership of society.")

उपरोक्त बातें इस तरफ हमारा ध्यान केंद्रित करती है कि विद्यालय का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है । अत: अब हम विद्यालय के महत्त्व पर चर्चा करेंगे ।

16.2.2 विद्यालय का महत्त्व (Importance of School)

जिस प्रकार से विद्यालय का मनाव-जाति के जीवन में अविर्भाव हुआ, इससे हम सभी समझ चुके हैं कि मानव सभ्यता के विकास, संरक्षण तथा संवर्द्धन में इसक बहुत बड़ा योगदान है । वर्त्तमान काल में, ज्ञान का विकास इतना अधिक हो गया है कि इस विशाल सांस्कृतिक विरासत तथा ज्ञान का शिक्षा देना परिवार तथा अन्य अनौपचारिक साधनों द्वारा संभव नहीं है । अत: अब विद्यालय मानव जीवन में अपरिहर्य हो गया है, जो समाज तथा व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । वास्तव में, संस्कृति की सुरक्षा, विकास तथा इसके प्रसार करने के लिए विद्यालय से अच्छा कोई और साधन नहीं है । परिवार के बाद विद्यालय ही वह स्थान है, जहाँ बालक मानवीय गुण यथा प्रेम, दया, सहनशीलता, सहानुभूति, अनुशासन, सहयोग आदि को अपने सगे-संबंधियों से बढ़कर वृहत् दायरा में अनुभव करने लगते हैं । इससे उनका दृष्टिकोण विशाल हो जाता है, जिससे उनका बाह्य समाज से सम्पर्क स्थापित हो जाता है । विद्यालय में एक निश्चित योजना के अनुसार शिक्षा का कार्य किया जाता है । ऐसे वातावरण में रहते हुए बच्चे का शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं व्यावसायिक सभी प्रकार का विकास होना संभव है । विद्यालय में बच्चे के व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास होता है । विद्यालय में रहते हुए बालकों में सामाजिकता, शिष्टाचार, सहानुभूति, निष्पक्षता तथा सहयोग आदि वांछनीय गुणों, आदतों तथा रूचियों का विकास स्वत: ही हो जाता है । इसके अलावा, उनमें एक-दूसरे के सांस्कृतिक गुणों का भी विकास हो जाता है । अत: विद्यालय में बालकों में बहुमुखी संस्कृतिक विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है । यह राज्य के आदर्शों तथा विचारों को प्रसार करने का भी महत्त्वूपर्ण साधन है । जनतंत्रीय भावना हो या फासिस्टवादी तथा

साम्यवादी सभी प्रकार की विचारों को विद्यालय के माध्यम से लोगों तक पहुँचाया गया है । विद्यालय सामुदायिक भावना को प्रोत्साहित करने के साथ बच्चों में सामाजिक गुणों का भी विकास करता है । विद्यालय बच्चों में नागरिक गुणों का भी समावेश करता है तथा समुदाय की तरफ बच्चों की जो जिम्मेदारियाँ हैं, उनसे भली-भाँति अवगत हो जाते हैं तथा उनके निर्वाहन की समझदारी उनमें विकसित होता है । अत: विद्यालय शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण साधन रहा है ।

अब, हम यह देखेंगे कि विद्यालय के कितने रूप हैं, जो हमारे वातावरण में मौजूद हैं, तो पाते हैं कि परम्परागत एवं प्रगतिशील विद्यालय समाज में अपना योगदान दे रहे हैं ।

16.2.3 परम्परागत एवं प्रगतिशील विद्यालय (Traditional and Progressive School)

जब हम विद्यालय की बात करते हैं तो पाते हैं कि वर्त्तमान समाज में विद्यालय के संबंध में धारणाओं में बदलाव आ रहा है । अब प्राचीन विद्यालीय स्वरूप के साथ-साथ नवीन स्वरूप का भी अविर्भाव हुआ है, जो समाज की जरूरतों को पूरा करने वाला है । परम्परागत विद्यालय का जन्म आदि काल में ही हो चुका था, जब परिवार बालक के शिक्षा-दीक्षा में असमर्थ महसूस करने लगा । इस समय से परम्परागत विद्यालय अस्तित्व में आए; जहाँ शिक्षक तथा शिक्षार्थी शिक्षण कार्य के लिए एकत्र होने लगे तथा गुरू के सान्निध में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने लगे । इन विद्यालयों में अध्यापक सर्वेसर्वा होता था तथा विद्यार्थियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित होता था । इस प्रकार के विद्यालयों को परम्परागत विद्यालय कहा जाता है । इस प्रकार के विद्यालयों की दिनचर्या बड़ी कठोर तथा शिक्षण प्रक्रिया नीरस तथा निर्जीव हो गई । यह अधिकांश बच्चों में शिक्षा के प्रति रूचि जगाने में असफल होने लगी । तब, बच्चों की रूचि का ध्यान रखते हुए शिक्षा में बहुत से प्रयोग होने लगे और इस प्रकार प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म हुआ । इन प्रगतिशील विद्यालयों में छात्र-केन्द्रित शिक्षा का जन्म हुआ । यह विद्यालय के ऊबाऊ वातावरण को छात्रों के अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया । इन प्रगतिशील विद्यालयों में बच्चों की व्यक्तिगत विभिन्नता की अवहेलना करके ज्ञान को बलपूर्वक ठूँसने का प्रयास को रोका गया । बल्कि नए-नए शैक्षिक प्रयोगों द्वारा नवीन एवं प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म हुआ । इस प्रकार प्रगतिशील विद्यालयों का विकास परम्परागत विद्यालयों के विद्यार्थी विरोधी प्रवृत्ति के कारण हुआ ।

इन प्रगतिशील विद्यालयों ने बालक के व्यक्तित्व को महत्त्व दिया गया । उनकी रूचियों, आवश्यकताओं तथा क्षमताओं का ध्यान रखा जाने लगा । उनकी जन्मजात शक्तियों तथा योग्यताओं के विकास पर बल दिया जाने लगा । इन विद्यालयों के समृद्ध, सक्रिय तथा उल्लासपूर्ण वातावरण में बच्चों का चहुमुखी विकास संभव होने लगा । प्रगतिशील विद्यालय का वातावरण सरलीकृत (Simplified), शुद्ध (Purified) तथा संतुलित (Balanced) होने के कारण बच्चें विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से सामाजिक अनुभव प्राप्त करने लगे । इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान सार्थक, पक्का तथा दृढ़ होता है । इस तरह का ज्ञान व्यावहारिक हुआ करता है । यह पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवन उपयोगी, लाभप्रद, रचनात्मक तथा व्यवहारिक होता है । प्रगतिशील विद्यालयों ने बच्चों में सामाजिक गुणों तथा सामुदायिक जीवन पर भी बल दिया गया है ।

अब अतिआधुनिक काल में प्रगतिशील विद्यालय भी दो रूपों में बट गए हैं । कुछ प्रगतिशील विद्यालय में परम्परागत विद्यालयों की तरह शिक्षक तथा विद्यार्थियां के समन्वय द्वारा शिक्षण कार्य सम्पन्न कराया जाता है, तो कुछ अतिप्रगतिशील विद्यालयों में विद्यार्थियों को स्वाधिगम सामग्रियों के माध्यम से पाठ्यक्रम दिया जाता है तथा परामर्श-कक्षाओं एवं सॉफ्टवेयर (Software) के उपयोग द्वारा शिक्षण-कार्य सम्पन्न कराया जाता है तथा

विद्यार्थियों के माँग पर परीक्षाओं की व्यवस्था करवाई जाती है । ऐसे प्रगतिशील विद्यालय शिक्षा के निरौपचारिक माध्यम (Non-formal agencies) के अंतर्गत आते हैं । अब तक, हमने विद्यालयों के परम्परागत एवं प्रगतिशील विद्यालयों की जानकारी प्राप्त की । अब, हम विद्यालय के कार्यों को जानेगे ।

16.2.4 विद्यालय के कार्य (Functions of School)

यदि हम विद्यालय के कार्यों को जानना चाहेगें, तो हम देख चुके हैं कि ज्ञान का संवर्द्धन, संरक्षण का यह स्थान है, जहाँ किसी विषय पर अबतक उपलब्ध जानकारियों से विद्यार्थी को अवगत कराया जाता है । **ब्रुबेकर (Brubacher)** के अनुसार, विद्यालय के तीन कार्य हैं - (1) संरक्षण कार्य (2) प्रगतिशील कार्य तथा (3) निष्पक्ष कार्य । **थॉमसन (Thomson)** के अनुसार, विद्यालय के पाँच कार्य हैं - (1) मानसिक प्रशिक्षण (2) चारित्रिक प्रशिक्षण (3) सामुदायिक जीवन का प्रशिक्षण (4) राष्ट्रीय गौरव एवं देश-प्रेम का प्रशिक्षण तथा (5) स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का प्रशिक्षण । हम विद्यालय के कार्यों को औपचारिक तथा अनौपचारिक दो भागों में बाँट सकते हैं ।

विद्यालय के औपचारिक कार्य के अंतर्गत विद्यार्थियों का मानसिक विकास आता है । विद्यार्थियों के सही एवं संतुलित मानसिक विकास के लिए, उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने-समझने तर्था कार्य करने का मौका मिलना चाहिए, तभी उनकी विचार-शक्ति का सफलतापूर्वक निर्माण हो सकेगा । इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय विद्यार्थियों के समक्ष ऐसा वातावरण प्रस्तुत करें, जिससे विद्यार्थियों में जिज्ञासा एवं उत्सुकता उत्पन्न हो तथा वह अपनी आवश्यकताओं, रूचियों तथा योग्यताओं के अनुसार कार्य कर सकें । इससे विद्यार्थियों का मस्तिष्क संतुलित एवं गतिशील बनेगा, जो उसे प्रत्येक परिस्थितियों में आवश्यक एवं सही निर्णय लेने में मददगार साबित होगा । विद्यालय बच्चों को व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा भी देता है, जिससे आगे चलकर वे समाज तथा अन्य व्यक्तियों पर भार न बने तथा अपनी जीविका की समस्या को स्वयं ही सुलझा सकें । भारत के संदर्भ में यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है । यह विद्यार्थियों में मानवीय अनुभवों का पुनर्गठन तथा पुनर्रचना करने का भी कार्य करता है । यह छात्रों एवं छात्राओं में नागरिक गुणों एवं चरित्र का भी विकास करता है । इन सब के अलावा यह संस्कृति की सुरक्षा, सुधार एवं हस्तांतरण में भी अपना अभूतपूर्व योगदान देता है ।

अब हम विद्यालय के अनौपचारिक कार्य पर दृष्टि डालेगें तो पाएगें कि यह विद्यार्थियों के शारीरिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास में भी अहम भूमिका निभाता है । यह बच्चों में व्यक्तिगत स्वच्छता की भावना विकसित करता है । यह बच्चों को शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति सचेत करता है । इसके लिए विद्यालय में विभिन्न शारीरिक प्रशिक्षण, यथा योग, व्यायाम, कराटे, ताइकफांडों आदि प्रशिक्षण कोर्स चलवाए जाते हैं । विद्यार्थियों में सामाजिक भावना का विकास करवाने का भी दायित्व विद्यालय का ही है । इसके लिए विद्यालय को चाहिए कि छात्र संगठनों (Student Unions), समाज सेवा कैंप (Social Service Camps), सामाजिक उत्सव (Social Functions) तथा अभिभावक-शिक्षक संघ (Parent-Teacher Association) आदि की व्यवस्था करके ऐसा सामाजिक वातावरण प्रस्तुत करें, जो छात्रों में सामूहिक प्रवृत्ति तथा सामाजिक दृष्टिकोण उत्पन्न कर सकें तथा उनमें सामाजिक चेतना, सहानुभूति, सामाजिक सेवा, सहनशीलता तथा अनुशासन आदि सामाजिक गुणों का विकास हो जाये । इसके अलावा बच्चों में संवेगात्मक विकास करना भी विद्यालय के कार्यों में आता है और इसके लिए विद्यालय का वातावरण कलात्मक होना चाहिए । इसके लिए विद्यालय में प्रकृति निरीक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए यथा उद्यान, फूलों की क्यारियाँ आदि । समय-समय पर यात्रा, देशाटन, संगीत सम्मेलनों,

नाटकों, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं, प्रदर्शनियों आदि पाठ्य-सहगामी क्रियाओं द्वारा विद्यार्थियों में संवेगात्मक विकास में सहयोग मिलता है तथा उनमें सौंदर्य अनुभूति की भावना जागृत होती है अर्थात् विद्यार्थियों में सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् की भावना का विकास होता है ।

इस प्रकार हमने विद्यालय के कार्यों को जाना । अब, विद्यालय में शिक्षक के स्थान का अध्ययन करेंगे ।

16.3 विद्यालय में शिक्षक का स्थान (Place of Teacher in School)

विद्यालय में शिक्षक का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है या कहा जाए कि विद्यालय के संचालन का सूत्रधार वही होता है । उसका व्यवसाय उसे समाज में विशेष स्थिति प्रदान करती है । वह अपने विद्यार्थियों की अपेक्षाओं को उन्हें कौशल का ज्ञान देकर पूरा करता है और उनके अभिभावकों को उन अपेक्षाओं की जानकारी तथा याद दिलाकर दोनों को समाज की जरूरतों से जोड़ता है । शिक्षक स्वयं भी समाज का एक मुख्य अंग होने के साथ-साथ अन्य सदस्यों की भाँति सामाजिक तथा निजी जीवन व्यतीत करता है तथा बहुत सारी सामाजिक भूमिकाएँ निभाता है । अतः विद्यालय में शिक्षक की भूमिकाएँ निम्न होती है :-

(i) **शिक्षक - विषय विशेषज्ञ के रूप में :** शिक्षक परम्परागत रूप से इस भूमिका में है । उनसे यह आशा की जाती है कि वह अपने विषय में विशेषज्ञ हो, परंतु उनसे सदैव विनम्र होने की उम्मीद की जाती है कि शायद उनके विद्यार्थी उक्त विषय में उनसे अधिक होशियार हो, परन्तु इसे सत्य का सामना करने के लिए तथा इसे सहर्ष स्वीकार करने के लिए तैयार रहें । साथ ही अपनी गलतियों को भी सहज रूप में लेने को तैयार रहें ।

(ii) **शिक्षक - चरित्र प्रशिक्षक के रूप में :** शिक्षक के चरित्र का छाप विद्यार्थियों पर पड़ता है । अतः शिक्षक को उच्च मूल्यों वाला होना चाहिए, ताकि विद्यालय का अनुशासन बना रहे । अनुशासन बनाए रखने के लिए व्यवस्था के साथ-साथ शिक्षक का व्यक्तिगत गुण अधिक प्रभावी होता है और उसका उद्देश्य विद्यार्थियों में स्वशासन विकसित करने का सार्मथ्य प्रदान करता है । अतः कहा जा सकता है कि शिक्षक की भूमिका इस संदर्भ में पथप्रदर्शक तथा परामर्शदाता की हो जाती है । कई विद्यार्थियों को विद्यालय के वातावरण में समायोजन करने में कठिनाई आती है, ऐसे में शिक्षक अपने परामर्श तथा उपबोधन (Guidance and Counselling) द्वारा विद्यार्थियों की समस्याओं का समाधान करते हैं तथा विद्यालयी संस्कृति से समायोजन (adjustment) में उनकी मदद करते हैं ।

(iii) **शिक्षक - विद्यालय के कर्मचारी वर्ग के एक सदस्य के रूप में :** विद्यालय और सामान्य शिक्षा-व्यवस्था दोनों में शिक्षा-व्यवस्था के प्रचलित पदसोपान क्रम का एक सदस्य है । प्रत्येक विद्यालय में सत्ता-व्यवस्था की एक सर्वमान्य औपचारिक वरिष्ठता-संरचना होती है । मुख्याध्यापक से लेकर निचले स्तर पर वरिष्ठता के विभिन्न स्तर होते हैं । शिक्षक को अपने वरिष्ठता-क्रम के अनुसार उचित कार्य करना चाहिए । विभिन्न वरिष्ठ अध्यापकों के बीच पारस्परिक सामाजिक संबंध अलग-अलग विद्यालयों में भिन्न होता है । इस बात का ख्याल रखते हुए किए गए आचरण विद्यार्थियों के मन पर सकारात्मक प्रभाव डालता है ।

16.3.1 प्राचीन कालीन विद्यालय में शिक्षक का स्थान (Place of Teacher in Ancient Schooling System)

प्राचीन कालीन विद्यालय आदर्शवादी व्यवस्था पर आधारित था, जिसमें शिक्षक को बहुत-ही गौरवपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । इस काल में शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक तथा विद्यार्थी ये दो पक्ष ही महत्त्वपूर्ण थे। शिक्षक आत्म-ज्ञान, आत्म क्रियाशील तथा आध्यात्मिक गुणों का भण्डार होते थे । वह अपने आदर्शमय जीवन से बालक को प्रभावित करते थे । वे उनका पथ-प्रदर्शन भी करते थे । इस काल के अधिकांश शिक्षक विद्यार्थियों की सहायता सहानुभूतिपूर्वक करते थे तथा उनका उचित मार्गदर्शन करते थे, जिससे बच्चे पूर्णरूपेण मानसिक तथा आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त हो सके । इस काल में शिक्षक प्राकृतिक वातावरण में ज्यादातर शिक्षण कार्य सम्पन्न करता था, जिससे विद्यार्थियों में प्रकृति के प्रति अनुराग तथा समर्पण भाव का विकास होता गया, परन्तु शिक्षा संबंधी सारे कार्यों का निष्पादन शिक्षक द्वारा होता था । अत: शिक्षक को समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, क्योंकि शिक्षा अध्यापक केन्द्रित होती थी ।

16.3.2 आधुनिक कालीन विद्यालय में शिक्षक का स्थान (Place of Teacher in Modern Schooling System)

आधुनिक काल में विद्यालय में शिक्षक का स्थान वहीं रहा अर्थात् शिक्षा-व्यवस्था अब भी शिक्षक के हाथों ही रहा तथा उसका सूत्रधार शिक्षक ही बना रहा, परन्तु अब शिक्षा अध्यापक-केन्द्रित न होकर बाल केन्द्रित होने लगी, अब शिक्षक की भूमिका पथ-प्रदर्शक एवं सलाहकार के रूप में होने लगी । अब वे परामर्श एवं निर्देशन द्वारा बालक के मार्ग की बाधाओं को दूर कर उनका मार्ग प्रशस्त कर सकें । वर्त्तमान कालीन शिक्षक विद्यालय में जनतांत्रिक वातावरण उत्पन्न करने लगे, जिससे विद्यार्थीगण अपनी क्षमता, रूचि एवं योग्यतानुसार सीख सकें । शिक्षक से आशा की जाती है कि वे बच्चों को सहानुभूति एवं प्रेमपूर्वक उनकी रूचियों का विकास करें । वर्त्तमान शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक बच्चों को ज्ञान देने के साथ-साथ बच्चों को नवीन ज्ञान की खोज के लिए प्रेरित करें तथा उक्त कार्य में अध्यापक सक्रिय भूमिका निभाएँ । अब अध्यापक ज्ञान देने की अपेक्षा स्वयं करके सीखलने पर बल देने लगे हैं ।

16.4 विद्यालय के गुणवत्ता उत्थान में समुदाय (Community to Promote Quality Education in School)

जो समाज स्वयं में बदलाव लाना चाहता तथा अपने समाज में वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते हैं तो इस कार्य में शिक्षा अथवा विद्यालय एक प्रमुख साधन के रूप में कार्य करता है । शिक्षा समुदाय के लिए आवश्यक गुणों, कौशलों तथा व्यवसायों का आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करती है । वास्तव में विद्यालय सामाजिक परिवर्त्तन और आधुनिकीकरण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है । समुदाय में व्यापत आधुनिक उद्योगों, व्यापार, शिक्षण और शोध संस्थानों तथा अन्य संस्थाओं में विभिन्न प्रकार की विशिष्ट नौकरियों के लिए आवश्यक दक्षताओं को शिक्षार्थियों में युक्त करता है । विद्यालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों में मूल्यों अैर अभिवृत्तियों में बदलाव लाए । अलग-अलग देश अपने राजनैतिक, सामाजिक जरूरतों के मुताबिक करता है । अमेरिका अपने समाज के विकास के लिए प्रयोजनात्मक शिक्षण-व्यवस्था का निर्माण किया । जबकि भारत में आजादी के बाद देश को लोकतांत्रिक राज्य घोषित किया गया तथा लोक कल्याण संबंधी कार्यों तथा देश की आवश्यकता के अनुसार देश के विद्यालयों में बदलाव लाया जा रहा है । विकासशील देशों के नेताओं और योजना निर्माताओं ने अपने लोगों को शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रावधान किए हैं । भारत में पिछले 70 वर्षों में राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं के तहत हमारे शैक्षिक योजनाकारों ने सभी स्तरों पर तथा देश के सभी क्षेत्रों तक शैक्षिक सुविधाएँ पहुँचाने का गहन प्रयास किया है । विद्यालय भारतीय समाज

की माँग के अनुरूप कार्य करने का प्रयास कर रहे हैं । वही समुदाय के उत्थान के लिए आवश्यक है कि विद्यालयों को समुचित सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाए । भारतीय समाज में हमें अपने विद्यालय को सशक्त बनाना होगा । लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोगों की व्यक्तिगत जरूरतों, उनके हितों की सुरक्षा, व्यक्ति के उत्तम संरक्षण तथा अपने कार्यों को सुव्यवस्थित तरीके से सम्पन्न करने के लिए समाज का गठन हुआ तथा इसका सही तरीके से संपादन में विद्यालय का योगदान महत्त्वपूर्ण है ।

विद्यालय का कार्य विभिनन विषय क्षेत्रों से संबंधित अधिगम के संज्ञानात्मक और गैर-संज्ञानात्मक क्षेत्रों की सूचना प्रदान करना है । ज्ञान तथा बोध हेतु निर्धारित विषय-क्षेत्रों में अधिगम के अनिवार्य विषयों को सम्मिलित किया गया है, जिसे संज्ञानात्मक क्षेत्र कहा जात है । वैसे ही गैर-संज्ञानात्मक क्षेत्र बच्चों के विभिन्न पक्षों यथा कला बोध, व्यक्तित्व, रचनात्मक पक्ष आदि का विकास करते हैं ।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में सर्वप्रथम आवश्यकता विद्यालयों में लोकतांत्रिक तरीके से शिक्षण देना है, जिससे बच्चों में लोकतांत्रिक नागरिक तथा सामाजिक गुणों का विकास हो सकें । इनमें लोकतांत्रिक सिद्धांतों और आदर्शों को पालन करने की आवश्यकता है । विद्यालयों में विभिन्न कार्यकलापों के द्वारा स्व-शासन, नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता तथा मताधिकार आदि की शिक्षा दी जाए । नेतृत्व के गुण और मानव जाति के प्रति सहानुभूति की भावना पर ध्यान देने की जरूरत है । इस प्रकार के संगठन बच्चों को स्नेहमय एवं सहयोगी वातावरण प्रदान करते हैं । विद्यालय बच्चों को समाज के सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे से परिचित कराता है । यह छात्रों में सहयोग तथा सहनुभूति की भावना विकसित करें तथा सामाजिक सहयोग के सिद्धांतों के आधार पर समाज को प्रतिबिंबित करें । विद्यालयों में युवा-संसद के गठन द्वारा राजनैतिक व्यवस्था की जानकारी दी जाए ।

विद्यालय को समाज का लघुरूप कहा जाता है । अत: विद्यालय में हमें समाज के प्रारूप की विस्तृत जानकारी उपलब्ध करानी चाहिए क्योंकि विद्यालय को विद्यादान का मंदिर तथा सूचनाओं का केंद्र माना जाता है ।

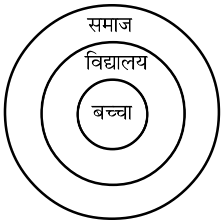

चित्र 18.1 **: समाज में विद्यालय तथा बच्चा का स्थान**

अत: विद्यालय समुदाय के उत्थान में अपनी महती भूमिका का निर्वहन करते हैं ।

16.5 विद्यालय : परिवर्त्तन का अभिकरण (School : Agent of Change)

हम सभी जानते हैं कि आधुनिक विज्ञान तथा प्रविधियों (Techniques) के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों के परिणास्वरूप हमारे समाज में बहुत सारे परिवर्त्तन हो रहे हैं । जिसका स्पष्ट असर हमारे समाज में दिखता है । विद्यालय समाज में हो रहे इन बदलावों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करेन में अपनी सकारात्मक भूमिका निभाता है । विद्यालय इन अनुसंधानों का ज्ञान कराती है तथा इनके द्वारा होने वाले लाभों पर प्रकाश डालती हुई जन साधारण को इनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है । इन्हीं प्रयोगों से जन-साधारण के विचारों, आदर्शों, मूल्यों तथा लक्ष्यों में परिवर्त्तन हो जाता है । इस प्रकार परिवर्त्तनों का प्रचार करके शिक्षा सामाजिक परिवर्त्तन लाती रहती है । समाज में हुए व्यापक परिवर्त्तनों के अनुसार विद्यालय भी अपने स्वरूप में

परिवर्त्तन करते हैं और फिर वे समाज में आने वाले परिवर्त्तनों के लिए कारक में मुख्य भूमिका निभाता है । विशेष रूप से, भारत के संदर्भ में, समाज का स्वरूप बहुमुखी होने के कारण विद्यालय परिवर्त्तन कारक की भूमिका निभाते हैं । भारतीय सांस्कृतिक विविधता और लोकतांत्रिक, सामाजिक ढाँचा को आदर्शों का अनुकरणीय बनाने में विद्यालय की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । विद्यालय के प्रयासों में बच्चों के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास भी आता है ताकि विद्यार्थी अच्छे नागरिक बन सकें । विद्यालय को अपने छात्रों के माध्यम से समाज को तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच के लिए मानसिक रूप से तैयार करने के योग्य होना चाहिए । ताकि परंपरा और आधुनिकता के एकीकरण से राष्ट्र का सम्पूर्ण विकास योग्य हो सके । विद्यालय को ऐसे समुदाय के निर्माण का कार्य करना है जो मानवीय मूल्य पर आधारित सकारात्मक सामाजिक परिवर्त्तनों को स्वीकार करें और उन्हें अपनाए । विद्यालय एक शिक्षण संस्था है । उसे सामज का आदर्श चित्रण प्रस्तुत करना चाहिए, जिसके द्वारा हमारी संस्कृति सुरक्षित तथा संरक्षित रहे और मानव-सभ्यता में रचनात्मक सामाजिक परिवर्त्तन हो । साथ-साथ मानव सभ्यता में रचनात्मक तथा विनाशकारी ताकतों के बीच अंतर कर सकें । जब शिक्षा के द्वारा समाज में इस विभेदक शक्ति का विकास होगा, तभी सभ्यता की प्रगति एवं उन्नति संभव होगी । अतः विद्यालय का उत्तरदायित्व काफी बड़ा है ।

16.6 सारांश (Summary)

इस पाठ के अंतर्गत आपने विद्यालय की अवधारणा को जाना कि विद्यालय अथवा स्कूल (School) का जन्म किस प्रकार हुआ? हमने जाना कि स्कूल शब्द का अर्थ अवकाश हुआ करता था, जिस अवकाश के समय को बच्चों को ज्ञान देने के लिए चुना गया था । वहीं कलांतर में व्यस्थित रूप में विद्यालय बन गया । हमने मानव-जीवन में विद्यालय के महत्त्व को जाना । इसके परंपरागत एवं प्रगतिशील स्वरूप को भी हमने जाना । विद्यालय के कार्यों का मुख्य संचालक शिक्षक होता है । अतः विद्यालय में शिक्षक के स्थान की भी व्याख्या की गई है । हमने पाठ के अंतर्गत प्राचीन काल में विद्यालय तथा समाज में शिक्षक के स्थान तथा कार्यों को जाना । आधुनिक काल में शिक्षक का कार्य शिक्षण के साथ-साथ किस प्रकार दोस्त, निर्देशक तथा पथ-प्रदर्शक का भी बन गया । शिक्षक राष्ट्र-निर्माता भी होता है क्योंकि उसके दिए गए ज्ञान का प्रकाश समाज को सही दिशा दिखाता है । यही समाज को सही दिशा प्रदान करता है । इस प्रकार, विद्यालय समुदाय के उत्थान में अपना अहम योगदान देता है । अलग-अलग समाज अथवा समुदाय की आवश्यकताएँ भिन्न होती हैं । उन आवश्यकताओं के अनुसार हम अपने विद्यालय का निर्माण करते हैं तथा अपने समुदाय में आवश्यक परिवर्त्तन करते हैं । कहा जा सकता है कि विद्यालय समुदाय परिवर्त्तन में एक सशक्त अभिकरण का कार्य करता है । अतः आशा है कि यह पाठ आपके लिए उपयोगी साबित होगा ।

16.7 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. विद्यालय से आप क्या समझते हैं? इसके महत्त्व एवं कार्यों पर प्रकाश डालिए ।

   What do you mean by Education? Throw light on its importance and functions.

2. परम्परागत एवं प्रगतिशील विद्यालयों में अंतर बताएँ ।

   Explain the difference between Traditional and Progressive School.

3. विद्यालय में शिक्षक के स्थान की व्याख्या कीजिए ।

   Explain the place of teacher in the school.

4. विद्यालय तथा समाज में अन्योन्याश्रम संबंध है । विवेचना कीजिए ।

   School and Society are inter-related. Discuss.

16.8 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. एन०आर० स्वरूप सक्सेना, 2005 : शिक्षा के दार्शनिक एवं सामजशास्त्रीय सिद्धांत, सूर्या पब्लिकेशंस, मेरठ ।
2. पाठक एवं त्यागी ।

❒ ❒ ❒

इकाई : 17 माध्यमिक विद्यालय के स्तर (Secondary School Stage)

<u>पाठ संरचना (Lesson Structure)</u>

17.0 उद्देश्य (Objectives)

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

17.2 माध्यमिक शिक्षा का अर्थ (Meaning of Secondary Education)

17.3 विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा (Various types of Professional Education)

17.4 बहुउद्देशीय विद्यालय (Multi-purpose Schools)

17.5 माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप (Nature of Secondary Education)

17.6 माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा के साथ सम्बन्ध (Its linkages with Primary and Higher Secondary stages of Education)

17.7 सारांश (Summary)

17.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

17.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

17.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- ❖ माध्यमिक शिक्षा के अर्थ को समझ सकेंगे ।
- ❖ माध्यमिक शिक्षा के महत्त्व को समझ सकेंगे ।
- ❖ माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप को समझ सकेंगे ।
- ❖ माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा के साथ संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

17.1 प्रस्तावना (Introduction)

माध्यमिक शिक्षा के स्तर नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में विस्तृत

जानकारी हेतु माध्यमिक शिक्षा क्या है? इसका अर्थ, इसका महत्त्व, इसका स्वरूप क्या है? विस्तार से चर्चा की गई है । यही नहीं इस पाठ में माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा से सम्बन्ध को भी विस्तारपूर्वक उद्धृत किया गया है । इस अध्ययन में यह भी बतलाया गया है कि माध्यमिक शिक्षा के फलस्वरूप ही छात्र उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा में प्रवेश ले सकता है । मनुष्य जीवन शिक्षा के द्वारा अपनी योग्यता अनुसार लक्ष्य को प्राप्त करता है । व्यक्ति जीवनपर्यन्त शिक्षा के आधार पर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। चूंकि व्यक्ति के विकास में माध्यमिक शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व है । अत: इस इकाई में इन्हीं बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

17.2 माध्यमिक शिक्षा का अर्थ (Meaning of Secondary Education)

माध्यमिक शब्द का अर्थ है – मध्य की । माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य की शिक्षा है । अंग्रेजी में इसके लिए सेकेण्डरी शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका अर्थ है – दूसरे स्तर की । पहले स्तर की प्राथमिक और उसके बाद दूसरे स्तर की यह सेकेण्डरी शिक्षा । आज किसी भी देश में माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच की कड़ी होती है । अपने में पूर्ण इकाई होती है और बच्चों के निर्माण की शिक्षा होती है । परन्तु यह शिक्षा बच्चों की किस आयु तक अर्थात् किस कक्षा से किस कक्षा तक चले और इसकी क्या पाठ्यचर्या हो, इस विषय में भिन्न-भिन्न देशों के भिन्न-भिन्न निर्णय हैं ।

हमारे देश में प्राचीन और मध्यकाल में शिक्षा केवल दो स्तरों में विभाजित रही – प्राथमिक और उच्च । इस देश में माध्यमिक शिक्षा का श्री गणेश तो आधुनिक युग में ईसाई मिशनरियों ने किया । सर्वप्रथम तो उन्होंने यहाँ प्राथमिक विद्यालय खोले, उसके बाद उन्होंने यहाँ प्राथमिक शिक्षा उत्तीर्ण बच्चों के लिए अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की । दूसरी तरफ ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अपने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा के लिए माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की । परन्तु यह माध्यमिक शिक्षा आज की माध्यमिक शिक्षा से भिन्न थी, भारत में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप निश्चित करने में सबसे बड़ी भूमिका वुड के घोषणा पत्र, 1854 की रही । उसमें माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य और पाठ्यक्रम निश्चित किए गए । 1882 में ब्रिटेन सरकार ने भारतीय शिक्षा आयोग का गठन किया । इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को दो वर्गों में विभाजित करने का सुझाव दिया – (अ) साहित्यिक और (ब) व्यावसायिक । परन्तु उस समय देश की परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थी कि अंग्रेजों के शासन काल में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप साहित्यिक ही रहा ।

15 अगस्त, 1947 को हमारा देश स्वतंत्र हुआ । 1952 में केन्द्रीय सरकार ने माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया । इस आयोग ने माध्यमिक स्तर पर विविध पाठ्यक्रम (Diversified Courses) चलाने का सुझाव दिया । इसके बाद कोठारी आयोग (1964-66) ने माध्यमिक स्तर पर अनेक पाठ्यक्रम चलाने की सिफारिश की । राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में पूरे देश के लिए 10+2+3 शिक्षा संरचना की घोषणा की गई । परन्तु तब इसे लागू नहीं किया जा सका । राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में इस संरचना को लागू करने पर बल दिया गया । आज हमारे देश में प्रथम 8 वर्षीय शिक्षा (कक्षा 1 से कक्षा 8 तक) प्राथमिक के अंतर्गत आती है और कक्षा 9 से कक्षा 12 तक की शिक्षा माध्यमिक शिक्षा के अंतर्गत आती है । आज प्राय: सभी प्रान्तों में प्रथम 10 वर्षीय पाठ्यक्रम सब बच्चों के लिए समान है और +2 पर वर्गीकरण है ।

माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक व उच्च शिक्षा के मध्य स्थित होने के कारण अधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है :

(i) माध्यमिक शिक्षा सामान्य शिक्षा की परिसमारित है । यह बालक की किशोरावस्था से सम्बन्धित होने तथा

भावी युवा शक्ति के नेतृत्व का प्रथम प्रशिक्षण केन्द्र होने के कारण राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, तकनीकी तथा सांस्कृतिक क्षमता को सर्वाधिक प्रभावित करती है ।

(ii) माध्यमिक शिक्षा - प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा स्तरों की गुणवत्ता को निर्धारित करती है । प्राथमिक शिक्षा के शिक्षक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त होते हैं । उनकी गुणवत्ता प्राथमिक शिक्षा को प्रभावित करती है। इसी प्रकार उच्च शिक्षा में प्रवेशार्थी माध्यमिक शिक्षा प्राप्त होते हैं । जिनकी गुणवत्ता उच्च शिक्षा को प्रभावित करती हैं ।

(iii) माध्यमिक शिक्षा रोजगार तथा जीवनयापन के क्षेत्र में प्रवेश का द्वार खोलती है । अधिकांश व्यक्ति माध्यमिक शिक्षा के बाद किसी न किसी व्यवसाय को अपना लेते हैं ।

उपरोक्त तीन कारणों से माध्यमिक शिक्षा को सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का आधार स्तंभ कहा जाता है । अत: माध्यमिक शिक्षा का स्तर उच्च होना आवश्यक है क्योंकि इसी से देश की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता बनती है ।

शिक्षा का उत्पादन से सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ माध्यमिक शिक्षा को व्यवसाय प्रधान बनाना है । इसके लिये कृषि तथा तकनीकी ज्ञान की भी विद्यालय स्तर पर आवश्यकता है । पाठ्यक्रम की विविधता तथा इसके प्रयोगात्मक स्वरूप की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है । सर्वप्रथम हंटर आयोग, 1882 ने सैकंडरी स्तर पर पाठ्यक्रम के विविधिकरण की ओर संकेत किया था । उसका कहना था कि इस स्तर पर छात्र की अपनी रूचि, रूझान आदि के अनुसार विषय चयन करने की स्वतंत्रता दी जाये जिससे वह उस क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करके जीवन में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सके । किन्तु ब्रिटिश काल में इस क्षेत्र में प्राय: लापरवाही बरती गई और विशेष प्रगति नहीं हुई । कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, 1917 के अनुसार अधिकतर छात्र साहित्यिक वर्ग की शिक्षा ग्रहण करते हैं ।

कोठारी आयोग ने सेकेंडरी स्तर की शिक्षा के व्यावसायीकरण पर विशेष बल दिया है । इसके लिये आयोग ने अमेरिका के अनुरूप कृषि, तकनीकी, इंजीनियरिंग, चिकित्सा तथा अध्यापक प्रशिक्षण के क्षेत्र में शिक्षा योजना को बढ़ावा देने पर विशेष रूप से सिफारिश की है । प्रगति के इस युग में माध्यमिक स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण नितांत आवश्यक है ।

17.3 विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा (Various Types of Professional Education)

माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न स्वरूप इस प्रकार हैं -

1. **इंजीनियरिंग (Engineering) :** स्वतंत्रता प्राप्त से पूर्व देश में इंजीनियरिंग कॉलेजों की संख्या बहुत कम थी । 1951 के पश्चात् इनकी संख्या में विशेष वृद्धि हुई है । अनेक डिप्लोमा, इंजीनियरिंग डिग्री तथा टैक्नोलॉजी व पौलीटैक्निक कॉलेजों की स्थापना की गई है । उत्तर प्रदेश में तकनीकी शिक्षा बोर्ड की स्थापना तथा रूड़की इंजीनियरिंग कॉलेज को विश्वविद्यालय स्तर प्रदान किया गया है । पंचवर्षीय योजना के प्रारूप में अन्य राज्यों में भी इंजिनियरिंग कॉलेजों तथा बोर्डों की स्थापना की गई है । खड़गपुर, बम्बई, कानपुर, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास आदि स्थानों पर तकनीकी संस्थान (IIT) स्थापित किये गये हैं । इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय इंजीनियरिंग कॉलेज तथा पौलीटैक्निक स्कूलों की भी स्थापना की गई है। इन्हें सरकार से मान्यता प्राप्त हैं । इस क्षेत्र में विभिन्न स्तर का प्रशिक्षण निम्नलिखित है :-

(i) **शिल्पियो का प्रशिक्षण (Operatives) :** इस श्रेणी में निम्न स्तर के कुशल व अर्धकुशल व्यक्ति सम्मिलित हैं । इन्हें प्रथम श्रेणी के निरीक्षक भी कहा जाता है । विभिन्न उद्योगों में इनकी बहुत आवश्यकता होती है । इन्हें आरंभ में अस्थाई रूप से भरती किया जाता है किन्तु धीरे-धीरे अनुभव से वे अच्छे मिस्त्रियों में बदल जाते हैं । जूनियर तकनीकी स्कूलों में इस स्तर के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था है ।

(ii) **डिप्लोमा स्तर का प्रशिक्षण (Diploma Courses) :** इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था तकनीकी स्कूलों में की गई है । प्रशिक्षण पूरा होने पर छात्रों को डिप्लोमा प्रदान किया जाता है । यह दूसरे स्तर का प्रशिक्षण है । इसकी प्राप्ति पर उन छात्रों की नियुक्ति निरीक्षक तथा फोरमैन के पद पर की जाती है ।

(iii) **इंजीनियरिंग डिग्री स्तर (Engineering Degree Stage) :** यह स्नातक स्तर का प्रशिक्षण है। इसका कोर्स प्राय: तीन वर्ष का होता है । उच्चतर माध्यमिक कक्षाएँ पास करने पर छात्र इस स्तर का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं । कोर्स पूरा होने पर सिविल, इलैक्ट्रिकल अथवा मैकेनिकल इंजीनियरिंग की डिग्री दी जाती है । आरंभ में इस प्रकार छात्रों की नियुक्ति सहायक इंजीनियर के पद पर होती है, बाद में पदोन्नति होती रहती है ।

(iv) **शोध-कार्य (Research Work) :** यह प्रशिक्षण का स्नाताकोत्तर स्तर हैं । इसके द्वारा डिजाईन, शोध-कार्य व उच्च श्रेणी के इंजीनियरिंग कार्य सम्पन्न होते हैं । प्रशिक्षण के पश्चात् उनकी नियुक्ति व्यवस्थापक अथवा प्रबन्धक के स्थान पर की जाती है । वे बड़े इंजीनियरिंग के कार्यों की देखभाल करते हैं । इस विकास के फलस्वरूप देश में ओवरसियर, मेकैनिकल व इलैक्ट्रिकल इंजीनियरों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई हैं ।

2. **चिकित्सा (Medical) :** स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व चिकित्सा के क्षेत्र में पूरे देश में केवल 25 मेडिकल कॉलेज थे । ये कॉलेज एम.बी.बी.एस की डिग्री की व्यवस्था करते हैं । इनके अतिरिक्त अनुसंधान व शोध-कार्यों को बढ़ावा देने के लिये अखिल भारतीय स्तर के कॉलेजों की भी स्थापना विदेशी सहायता से की गई है । कुछ स्थानों पर होम्योपैथिक, आयुर्वेदिक तथा हकीम व यूनानी चिकित्सा के प्रशिक्षण की व्यवस्था है । पंचवर्षीय योजनाओं में चिकित्सा-प्रशिक्षण केन्द्रों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है । कम्पाउण्डरों, नर्सों तथा मिडवाइफ आदि के प्रशिक्षण की ओर भी ध्यान दिया गया है । विकास-योजनाओं के अंतर्गत स्वास्थ्य निरीक्षकों (Health Visitors) के प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध है । आज देश में मेडिकल कॉलेजों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है । अब इंजीनियरिंग की अपेक्षा अधिक संख्या में छात्र इस ओर आकर्षित हो रहे हैं । डॉक्टरों के वेतन-स्तर में भी विशेष वृद्धि हुई है । किन्तु अभी ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है । अत: विकास की आवश्यकता है ।

3. **पशु-चिकित्सा प्रशिक्षण (Veterinary Training) :** 1951 के पश्चात् पंचवर्षीय योजनाओं के प्रारूप में पशु-चिकित्सा के प्रशिक्षण की ओर ध्यान दिया गया है । इसके लिए अनेक प्रशिक्षण कॉलेजों व प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई है । इनमें तीन वर्ष के डिप्लोमा कोर्स की व्यवस्था है । उत्तर प्रदेश में कृषि विश्वविद्यालय, पंतनगर में इसके प्रशिक्षण के अतिरिक्त शोध-कार्य का भी उचित प्रबन्ध है ।

4. **वाणिज्य सम्बन्धी प्रशिक्षण (Commercial Training) :** वाणिज्य विषय के उच्च-स्तरीय कॉलेजों की संख्या स्वतंत्रता से पूर्व लगभग 20 थी । पंचवर्षीय योजनाओं के फलस्वरूप यह संख्या बढ़ी है । आजकल स्कूल स्तर पर बहुउद्देशीय विद्यालय भी इस कार्य की पूर्ति करते हैं । अनेक हाई-स्कूल व इण्टर कॉलेजों में भी वाणिज्य, टंकण (Type) व लेखा आदि की व्यवस्था हैं। लेखा-जोखा के लिए चार्टर्ड एकाउन्टैन्ट आदि के प्रशिक्षण को भी महत्त्व दिया जाता है । इसमें उच्च-स्तर के प्रशिक्षण की भी व्यवस्था

है । स्टैनोग्राफर, एकाउन्टैन्ट, के.पी.ओ. का प्रशिक्षण व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा दिया जाता है । इसके अतिरिक्त लेखा-जोखा सम्बन्धी परीक्षायें सरकारी विभाग करते हैं, जिन्हें पास करने पर पदोन्नति होती हैं।

5. **कृषि (Agriculture) :** भारत कृषि प्रधान देश है । आरंभ में इसकी दशा बहुत पिछड़ी हुई थी । अब परिस्थिति में निरंतर सुधार हो रहा है । इसके लिए कृषि स्कूल व कॉलेजों की संख्या में भी वृद्धि हुई है । विकास के क्रम में कृषि को बढ़ावा देने के लिए अनेक नवीन योजनायें देश में चल रही हैं । स्नातकोत्तर स्तर के कॉलेजों में कृषि - अनुसंधान तथा शोध-कार्यों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है । कई नये कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई है । उत्तर प्रदेश में पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है । अखिल भारतीय स्तर पर भी कृषि अनुसंधान की उचित व्यवस्था है । उचित निर्देशन के लिए सरकार ने आदर्श कृषि फॉर्मों की स्थापना की है । इनमें उत्तम बीज, खाद व यंत्रों के प्रयोग की व्यवस्था है । इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है ।

6. **कानून (Law) :** देश में कानून-शिक्षा की भी उचित व्यवस्था है । अधिकतर कानून-संस्थायें विश्वविद्यालयों से मान्यता प्राप्त हैं । कुछ सथानों पर इस क्षेत्र में विशिष्टीकरण का भी प्रबन्ध है । स्नातक स्तर की शिक्षा अवधि 2 से 3 वर्ष कर दी गई है । इसमें बार कौंसिल परीक्षा अनिवार्य हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् कानून-शिक्षा में विशेष प्रगति हुई है । कुछ कॉलेजों में स्नातकोत्तर कक्षायें भी आरंभ की गई हैं । अब स्त्रियाँ भी कानून की शिक्षा प्राप्त करने लगी हैं और उच्च पदों पर कार्य कर रही हैं ।

7. **अध्यापक प्रशिक्षण (Teacher's Training) :** ब्रिटिश काल में अध्यापक प्रशिक्षण कार्य सरकार द्वारा सम्पन्न किया जाता था । इन विद्यालयों में प्रवेश पाना कठिन था । अब विश्वविद्यालयों तथा मान्यता प्राप्त कॉलेजों में अनेक शिक्षा-विभागों की स्थापना की गई है । इनका कार्य सेकेंडरी स्तर के अध्यापक तैयार करना हैं । प्राथमिक स्तर के प्रशिक्षण का कार्य अब भी सरकार द्वारा सम्पन्न होता है । स्वतंत्रता के पश्चात् इस क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई है । केन्द्रीय स्तर पर अखिल भारतीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं । इसके अन्तर्गत चार क्षेत्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना की गई है । इसके अतिरिक्त अध्यापक शिक्षा क्षेत्र में अनेक अनुसंधान व शोध-कार्य चल रहे हैं । अन्तर्सेवा प्रसार योजना तथा ग्रीष्म शिक्षा संस्थाओं की भी उचित व्यवस्था हैं ।

   साथ ही, प्राथमिक स्तर पर छात्रों को हस्तकला तथा क्राफ्ट के माध्यम से शिक्षा देने की व्यवस्था बेसिक शिक्षा-क्रम में की गई है । अतः इस स्तर पर हम छात्रों को कातना व बुनना, कागज व गत्ते का काम, लकड़ी, चमड़ा, कृषि तथा मिट्टी के खिलौने बनाने आदि की शिक्षा देते हैं । यह व्यवसायिक शिक्षा ही हैं । छात्र-जीवन में प्रवेश करने पर इन हस्तकलाओं द्वारा अपनी जीविकोपार्जन कर सकते हैं और इन्हें व्यवसाय के रूप में अपना सकते हैं ।

   सेकेण्डरी स्तर पर बहुउद्देशीय विद्यालयों का कार्यक्रम इस स्तर की व्यावसयिक शिक्षा का कार्य करता है। उनमें चुने गये विषयों के आधार पर छात्र अपना व्यवसाय चुन सकते हैं । इसके अतिरिक्त साहित्यिक, वाणिज्य, कृषि व विज्ञान आदि विषय भी छात्रों को नौकरी प्राप्ति में सहायता करते हैं ।

17.4 बहुउद्देशीय विद्यालय (Multi-Purpose Schools)

सेकण्डरी स्तर पर छात्रों की रूचि, प्रवृत्ति, रूझान, मनोवृत्ति तथा क्षमताओं के अनुरूप बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना की गई है । सर्वप्रथम हंटर आयोग, 1882 ने इस ओर संकेत किया । किन्तु इस क्षेत्र में विशेष

प्रगति संभव नहीं हुई । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1948 में सरकार द्वारा नियुक्त ताराचन्द कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को एक मार्गी के स्थान पर बहुमार्गी बनाने पर जोरदार सिफारिश की और सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया । मुदालियर आयोग, 1952 ने भी इसकी पुष्टि की और कहा कि "एक बहुउद्देशीय विद्यालय का कार्य छात्रों को उनकी रूचि तथा योग्यता के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करना है । इन विद्यालयों को प्रयत्न करना चाहिए कि वे छात्रों को इस प्रकार का अवसर प्रदान करें कि वे अपने प्रवृत्ति, स्वभाव, रूझान तथा प्रवृत्ति के अनुसार अपना विकास कर सके ।"

A multi purpose school seeks to provide varied types of courses for students with diverse aim, interest and abilities. It endeavours to provide for each individual pupil suitable opportunity to me and develop his natural aptitude and inclination in the special course of studies chosen by him.

इसके फलस्वरूप बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना के लिये भारत सरकार ने 1956 में लगभग 5 करोड़ रूपये इस कार्य के लिए निर्धारित किया और देश में 500 बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना की एक वृहद् योजना तैयार की और उसे कार्यान्वित किया गया । कुछ माध्यमिक स्कूलों को भी बहुउद्देशीय रूप देने पर धन व्यय किया गया । बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :-

1. बहुउद्देशीय स्कूलों का प्रमुख उद्देश्य छात्रों को उनकी रूचि, क्षमता, योग्यता, प्रवृत्ति, स्वभाव तथा मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर शिक्षा देना है ।
2. इस व्यवस्था द्वारा छात्रों को ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता मिलेगी ।
3. ये स्कूल चयन-गृह के रूप में कार्य करेंगे । जहाँ छात्र अपनी शक्ति, क्षमता तथा रूझान के अनुसार एक प्रकार के शिक्षा-क्रम से दूसरे में आ जा सकेंगे ।
4. उनके द्वारा छात्रों की योग्यता का विकास संभव होगा और वे अपने-अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त कर सकेंगे ।
5. शिल्प अथवा हस्तकला की शिक्षा का व्यवसाय के रूप में सदुपयोग इन स्कूलों द्वारा संभव होगा ।
6. ये विद्यालय छात्रों में सामूहिक जीवन व सहयोग की भावना को उन्नत करेंगे और उनमें सामाजिक जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न होगा ।
7. अध्यापक तथा अभिभावक के दृष्टिकोण में भी इस क्रम से परिवर्तन संभव होगा । वे छात्रों के प्रति स्वस्थ्य दृष्टिकोण अपना सकेंगे और उनकी उन्नति तथा विकास के लिये प्रयत्नशील रहेंगे ।
8. बहुउद्देशीय स्कूलों द्वारा छात्रों में सामाजिक एकता को बढ़ावा मिलेगा ।
9. अनेक वैकल्पिक विषयों की सुविधा से स्कूली शिक्षा में विविधता को प्रोत्साहन मिलेगा ।
10. इस शिक्षा-क्रम से वर्ग-भेद दूर होंगे और छात्रों में समानता की भावना जागृत होगी ।

17.5 माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप (Nature of Secondary Education)

भारत में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप एक-सा नहीं है । माध्यमिक शिक्षा आयोग ने सर्वेक्षणकाल में देश में माध्यमिक शिक्षा के इन रूपों को देखा था :-

(1) **हायर एलीमेण्ट्री अथवा मिडिल स्कूल** - कुछ राज्यों में मिडिल स्कूलों को हायर एलीमेण्ट्री, वर्नाक्यूलर

मिडिल स्कूल आदि के नाम से जाना जाता है । प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् इन विद्यालयों में कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के शिक्षण की व्यवस्था है ।

(2) **माध्यमिक विद्यालय** - माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के दो भाग प्रचलित हैं - (1) जूनियर स्तर (2) हायर स्तर । कहीं-कहीं पर सीनियर बेसिक स्कूल भी इसी के अंतर्गत आते हैं । इनमें से 3 से 4 वर्ष की शिक्षा की व्यवस्था है । हाईस्कूल, माध्यमिक स्तर का उच्च स्तर है । कुछ जगहों पर इस अवस्था का कार्यकाल 3 वर्ष से ऊपर होता है ।

(3) **हायर सेकेण्डरी स्कूल** - हायर सेकेण्डरी स्कूल आधुनिकता प्रकार के विद्यालय होते हैं । इनमें तीन से चार वर्ष लेकर की गई हैं ।

(4) **हायर एजुकेशन** - कुछ राज्यों में प्रीयूनीवर्सिटी तथा डिग्री का पहला वर्ष भी माध्यमिक शिक्षा के अन्तर्गत आता है ।

(5) **इण्टरमीडिएट कॉलेज** - सैडलर कमिशन की सिफारिशों के परिणामस्वरूप इण्टरमीडिएट कॉलेजों की स्थापना एवं बोर्ड ऑफ सेकेण्डरी एण्ड इण्टरमीडिएट एजुकेशन का गठन हुआ । इनमें दो वर्ष का पाठ्यक्रम होता है । कक्षा 11 तथा 12 के अन्तर्गत विभिन्न पाठ्यक्रमों के शिक्षण की व्यवस्था इनमें है ।

(6) **व्यावसायिक कॉलेज** - माध्यमिक स्तर पर अनेक व्यावसायिक कॉलेज हैं । इनमें इंजीनियरिंग, टेक्नॉलोजी, मेडिसीन, वेटेनरी, एग्रीकल्चर एवं कॉमर्स के पाठ्यक्रम हैं । इनमें कहीं पर हाईस्कूल के बाद और कहीं पर इण्टरमीडिएट के बाद प्रवेश की व्यवस्था है ।

(7) **टेकनीकल संस्थान** - इस स्तर पर अनेक टेकनीकल संस्थान भी हैं । इनमें व्यावसायिक एवं पॉलीटेकनीक संस्थान भी हैं । अनेक ऐसे संस्थान हैं, जिनमें 12 वर्ष की आयु के बालकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था है ।

(8) **पॉलीटेकनीक** - अनेक राज्यों में विभिन्न व्यवसायों के लिए विभिन्न अवधियों के प्रशिक्षण के लिए पॉलीटेकनीक संस्थान का गठन किया है । इनमें मिडिल तथा हाईस्कूल के समक्ष योग्यता वाले छात्रों को प्रवेश दिया जाता है । इनमें टेक्नॉलोजी, आर्ट एण्ड क्राफ्ट, सेक्रेटेश्यिल प्रैक्टिस, डोमेस्टिक साइंस, होमक्राफ्ट एवं सामान्य ज्ञान का प्रशिक्षण दिया जाता है ।

17.6 माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा के साथ सम्बन्ध (Its Linkages with Primary and Higher Secondary Stages of Education)

माध्यमिक शिक्षा दुनिया के सभी देशों में प्राथमिक और उच्च शिक्षा के बीच की वह कड़ी होती है जो एक ओर जहाँ थोड़े-से विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार करती है । वहीं दूसरी ओर अधिकांश विद्यार्थियों के लिए वह एक टर्मिनस का कार्य करती है । जहाँ से वे अपनी शिक्षा समाप्त कर जीविकोपार्जन हेतु रोजगार व नौकरी की ओर अग्रसर होते हैं । जहाँ उन्हें व्यावहारिक कार्यजगत् की चुनौतियों का समाना करना पड़ता है । अत: कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कड़ी का गुणवत्तापूर्ण और सशक्त होना नितान्त आवश्यक है ताकि वह अपनी दोहरी भूमिका का भली-भाँति निर्वहन कर सके । दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वर्त्तमान संदर्भ में जब कि पूरी दूनिया में उदारीकरण, वैज्ञानिक व प्रौद्योगिकी प्रगति तथा जीवन की गुणवत्ता को सुधारने और गरीबी कम करने के प्रयास जोरों पर है । माध्यमिक शिक्षा की सफलता

इस बात पर निर्भर करती है कि हम उससे कहाँ तक और किस प्रकार सामान्य और व्यावसायिक विषयों को आवश्यकतानुसार समावेशित कर सकते हैं ।

माध्यमिक शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा तथा उच्चतर शिक्षा के बीच सेतु का कार्य करती है और यह 14-18 वर्ष के बीच के किशोरों को उच्चतर शिक्षा में प्रवेश के योग्य बनाती हैं । 14 से 18 वर्ष की आयु समूह (माध्यमिक तथा माध्यमिक स्तर की शिक्षा) में बच्चों की जनसंख्या राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे संस्थान के 1996-97 के सर्वेक्षण में 9 मिलियन के लगभग थी । परन्तु प्रवेश सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर केवल 2.7 मिलियन बच्चे ही माध्यमिक स्कूलों में जा रहे थे । इसका अर्थ था कि जनसंख्या का दो तिहाई हिस्सा माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के सीमा से बाहर हैं ।

हमारे देश में फिलहाल स्कूली शिक्षा की 10+2 प्रणाली लागू है जिसके तहत माध्यमिक शिक्षा दो चरणों में विभाजित हैं । आयु वर्ग 14-16 के बच्चे माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करते हैं । जहाँ का पाठ्यक्रम सभी बच्चों के लिए एक समान है और 16-18 आयु वर्ग के विद्यार्थी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में जहाँ विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम (Diversified Curriculum) की व्यवस्था है, अपनी शिक्षा पूरी करते हैं । कहने की आवश्यकता नहीं कि मात्र आठ वर्षीय शिक्षा बच्चे को एक योग्य सक्षम व उत्पादक नागरिक के रूप में तेयार करने में समर्थ नहीं हो सकती । अत: आवश्यक है कि कम-से-कम माध्यमिक स्तर तक की सुनियोजित गुणवत्तापरक एवं नि:शुल्क शिक्षा देश के प्रत्येक नागरिक को अनिवार्य रूप में प्रदान की जाये और अत: चूंकि प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए हाल में किये गये प्रयासों के कारण माध्यमिक शिक्षा के विस्तार की माँग बल पकड़ रही है तथा प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण हमारे लिए एक आदेश बन चुका है और दिनांक 4 अगस्त, 2009 को भारतीय संसद द्वारा पारित नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक 2008 ने दिनांक 1 अप्रैल, 2010 से कानून का रूप ले लिया है । अत: हमारे लिए इस बात का पूरा-पूरा औचित्य बनता है कि हमारा अगला लक्ष्य माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की प्राप्ति होना चाहिए जिसे दुनिया के अनेक विकसित और कतिपय विकासशील देशों ने प्राप्त कर लिया है ।

विगत सरकारी प्रयास एवं भावी दृष्टि माध्यमिक शिक्षा के उपर्युक्त महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए ही हमारी राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में तथा संशोधित प्रोग्राम ऑफ ऐक्शन (POA), 1992 में कहा गया कि :-

"The Revised Policy formulations take note of the increased demand for Secondary education and go beyond NPE, 1986 by calling for a Planned exapansion of Secondary education facilities an over the country. Secondary they call for higher participation of girls, SCs and STs, particularly in Science, Vocational and Commerce streams."

आगे चलकर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने भी अपनी बैठक दिनांक 14-15 जुलाई, 2005 में माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की आवश्यकता के प्रति अपनी सहमति बताई । सन् 2007 में तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर अपने सम्बोधन में अन्य बातों के अलावा माध्यमिक शिक्षा के बारे में कहा -

"We are setting out a goal of universalizing Secondary education. This is clearly the next step after universalizing elementary education while the goal is loudable much word needs to be done before we are in a positionh to launch the scheme for universalization of access for Secondary education. Its details need to be quickly spelt out and discussed

with states so that we are fully ready to launch it from 2008-09, we must not understimate the complexity of this taks as the principles for universalizing elementary education cannot be easily transferred to secondary education. The Physical, Financial, Pedagogical and Human resource needs are quite different. Special attention would need to be paid to districts with SC/ST/OBC/Minority Concentration. The recommendations of the Sachar Committee need to be seriously considered while planning for this programme.

इसी क्रम में यह जानना भी रोचक होगा कि योजना आयोग के अभिलेख 'Tenth Plan Mid-Term Appraisal' में भी सर्वशिक्षा अभियान के तहत बच्चों के स्कूल में पूर्णरूपेण अथवा लगभग पूर्णरूपेण टिके रहने की स्थिति में माध्यमिक शिक्षा के व्यापक विस्तार हेतु सर्वशिक्षा अभियान की ही भाँति माध्यमिक शिक्षा के लिए भी एक नये मिशन की स्थापना पर विचार किये जाने की संस्तुति की गई है ।

जहाँ तक माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिकरण के सम्बन्ध में सरकार की भावी दृष्टि की बात है, "Frame work for implementation of Rashtriya Madhyamik shiksha Abhiyan" शीर्षक भारत सरकार के दस्तावेज में कहा गया है कि - "The vision for Secondary education is to make good quality education available, accessible and affordable to all young persons in age group of 14-18 years."

इस सपने को साकार करने हेतु संदर्भगत पत्रक में निम्नलिखित लक्ष्यों की सम्प्राप्ति हेतु प्रतिबद्धता दर्शाई गई है -

(1) किसी भी आबादी से 5 किलोमीटर की दूरी पर माध्यमिक विद्यालय तथा 7-10 किलोमीटर की दूरी पर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उपलब्धा कराना ।

(2) सन् 2017 तक माध्यमिक शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच तथा सन् 2020 तक सार्वभौमिक धारण सुनिश्चित करना ।

(3) समाज में आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्गों, शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ों, लड़कियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विकलांग बच्चों और अन्य पार्श्ववर्ती समूहों जैसे - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े अल्पसंख्यकों (EBM) को विशेष संदर्भ में माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच का प्रावधान करना ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे देश के लिए जो अभी तक 6-14 आयु वर्ग (कक्षा 1-8) तक के सभी बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य बाल-शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के अन्तर्गत पूरी तरह आच्दादित नहीं कर सका है । माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के उपर्युक्त सपेन प्रतिबद्धताओं व चुनौतियों को पूरा करना आसान नहीं है । फिर भी, यदि हमें वर्त्तमान वैश्वीकरण और प्रतिस्पर्द्धा के दौर में दुनिया के अन्य विकासशील और अग्रणी राष्ट्रों के साथ अपने व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों की रक्षा हेतु कदम मिलना है तो हमें इन चुनौतियों का सामना करने के लिए समुचित प्रतिबद्धता साबित करनी ही होगी ।

17.7 सारांश (Summary)

माध्यमिक शब्द का अर्थ है - मध्य की । यह प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा की शिक्षा है । माध्यशमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा दोनों को जोड़ने का कार्य करती हैं । माध्यमिक शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया

है, जो सामाजिक संदर्भ में संचालित एवं सम्पन्न होती है । शिक्षा जीवन-पर्यन्त चलने वालीर प्रक्रिया हैं । जिसका माध्यमिक शिक्षा, महत्त्वपूर्ण कड़ी हैं । माध्यमिक शिक्षा तकनीकी शिक्षा के लिए मार्ग प्रदर्शित करती हैं । इस अध्ययन में बताया गया है कि माध्यमिक शिक्षा के फलस्वरूप व्यक्ति उच्च शिक्षा में नामांकन लेता है । माध्यमिक शिक्षा व्यक्ति को व्यावसायिक क्षेत्र में प्रवेश के लिए मुख्य द्वार का काम करती है । माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा के अंत से शुरू होता है और उच्च शिक्षा के प्रारंभ तक चलते रहता है । माध्यमिक शिक्षा व्यक्ति को अपने भावी जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का आधार हैं ।

17.8 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. माध्यमिक शिक्षा से क्या समझते हैं? विभिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा की व्याख्या करें ।

   What do you mean by Secondary Education? Discuss about various types of Professional Education.

2. माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के साथ संबंध की विवेचना करें ।

   Describe the linkage of Secondary education from Primary education and Higher education.

17.9 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. मदान, पूनम एवं पाण्डेय रामशक्ल (2017) : समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
2. लाल, रमनबिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2013) : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा के आधार ओर उसका विकास, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ ।
3. सुखिया, एस.पी. एवं त्यागी, गुरसरन दास (2012) : विद्यालय प्रशासन, संगठन एंव स्वास्थ्य शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
4. भटनागर, सुरेश (2009) : आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ ।

❐ ❐ ❐

इकाई : 18 माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Secondary Education)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

18.0 उद्देश्य (Objectives)

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

18.2 माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Secondary Education)

18.3 सारांश (Summary)

18.4 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

18.5 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

18.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य को सूचीबद्ध कर सकेंगे ।
- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य की व्याख्या कर सकेंगे ।
- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने में समस्याएँ को पहचान करेगें ।
- माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य के समस्या के निदान के लिए सुझाव देंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

माध्यमिक शिक्षा के स्तर नामक इस इकाई में विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हेतु माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य को सूचीबद्ध, इसकी व्याख्या, इसका समस्या, इसका निदान क्या है, की इसमें विस्तार से चर्चा की गई है । यही नहीं इस पाठ में नागरिकता के विकास को भी एक मुख्य उद्देश्य के रूप में रखा गया है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति सभ्य नागरिक की श्रेणी में आ सकता है । मनुष्य जीवन विकास की सतत् प्रक्रिया है । इसमें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया है । चूंकि व्यक्ति के विकास में शिक्षा का बहुत अधिक महत्त्व है । अतः इस इकाई में इनके उद्देश्यों पर विस्तार से चर्चा की गई है ।

18.2 माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य (Objective of Secondary Education)

हमारे देश में अंग्रेजी शासनकाल में माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी पढ़े-लिखे बाबू तैयार करना

था । स्वतंत्र होने के बाद हमारी केन्द्रीय सरकार ने 1952 में डॉ० लक्ष्मण स्वामी भुदालियर की अध्यक्षता में 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' का गठन किया । इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के चार उद्देश्य निश्चित किए :-

(1) लोकतांत्रिक नागरिकता का विकास ।

(2) व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ।

(3) व्यावसायिक कुशलता का विकास ।

(4) नेतृत्व शक्ति का विकास ।

बस तब से अबतक माध्यमिक शिक्षा के इन्हीं उद्देश्यों को भाषायी अंतर से स्पष्ट किया जाता रहा है । एन.सी.ई.आर.टी. ने 2000 में जो विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा प्रस्तुत की है । उसमें प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा के उद्देश्यों की एक लम्बी सूची (20-25 उद्देश्य) प्रस्तुत की हैं और उच्च माध्यमिक शिक्षा (+2) के सामान्य एवं व्यावसायिक वर्ग के लिए अलग-अलग उद्देश्य निश्चित किए हैं । इस सूची के आधार पर हम माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं -

(1) बच्चों को अपने स्वास्थ्य की देखभाल करने एवं उसमें विकस करने में प्रशिक्षित करना ।

(2) बच्चों को विभिन्न विषयों का ज्ञान कराना, उन्हें सोचने, विचारने और निर्णय लेने में दक्ष करना ।

(3) बच्चों का समाजीकरण करना, उन्हें आवश्यक सामाजिक परिवर्तन करने हेतु तैयार करना ।

(4) बच्चों को देश-विदेश की विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान कराना और उनमें सांस्कृतिक सहिष्णुता का विकास करना ।

(5) बच्चों में सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास करना और उन्हें तद्नुकूल आचारण की ओर प्रवृत्त करना । उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना ।

(6) बच्चों को उनकी रूचि, योग्यता एवं आवश्यकतानुसार किसी शारीरिक श्रम कार्य को बेझिझक करने की ओर प्रवृत्त करना ।

(7) बच्चों को लोकतंत्र शासन-प्रणाली के सिद्धांतों का ज्ञान कराना और उन्हें लोकतंत्रीय जीवन शैली में प्रशिक्षित करना ।

(8) बच्चों को राष्ट्रीय लक्ष्यों-पर्यावरण संरक्षण एवं जनसंख्या नियंत्रण के लिए जागरूक करना और उनमें वैज्ञानिक प्रवृत्ति, राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव का विकास करना ।

(9) बच्चों को संसार के मुख्य धर्मों का सामान्य ज्ञान कराना और उनमें धार्मिक सहिष्णुता का विकास करना।

उच्च माध्यमिक शिक्षा (+2) के उद्देश्य :-

+2 दो वर्गों में विभाजित है - एकादमिक और व्यावसायिक । एन.सी.ई.आर.टी. ने इनके अलग-अलग उद्देश्य निश्चित किए हैं । +2 पर एकादमिक शिक्षा का मूल उद्देश्य है - छात्रों को उच्च शिक्षा के लिए तैयार करना और व्यावसायिक शिक्षा का मूल उद्देश्य है - छात्रों में किसी व्यवसाय अथवा उत्पादन से सम्बन्धित ज्ञान एवं कौशल का विकास करना ।

उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त **कोठारी आयोग** ने भी निम्नलिखित उद्देश्यों का सुझाव दिया है –

1. **शिक्षा द्वारा उत्पादन में वृद्धि करना :** कोठारी अयोग ने राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा को उत्पादन परक बनाने पर बल दिया और इसके लिए निम्नलिखित सुझाव दिए :-
   - विज्ञान शिक्षा को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य किया जाए और इस शिक्षा का उपयोग उत्पादन कार्यों में किया जाए ।
   - कार्यानुभव (Work Experience) को विद्यालयी शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाए ।
   - माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायपरक बनाया जाए ।
   - उच्च शिक्षा में कृषि विज्ञान और तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाए ।
   - विश्वविद्यालयों में विज्ञान एवं तकनकी के क्षेत्र में शोध-कार्य को विकसित किया जाए ।
2. **शिक्षा द्वारा सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करना :** इस उद्देश्य अथवा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए :-
   - सामान्य स्कूलों (Common School) की स्थापना की जाए, जिनमें शिक्षा सबके लिए समान रूप से सुलभ हो और अच्छी शिक्षा आर्थिक आधार पर नहीं, योग्यता के आधार पर सुलभ हो ।
   - शिक्षा के सभी स्तरों पर समाज सेवा एवं राष्ट्र सेवा कार्य अनिवार्य हो ।
   - सभी संघीय भाषाओं क विकास किया जाए और राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किया जाए । विद्यालयों में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन हो जिनसे बच्चों में सामाजिक समानता और राष्ट्रीय एकता का विकास हो ।
3. **शिक्षा द्वारा लोकतंत्रीय मूल्यों का विकास करना :** कोठारी आयोग की दृष्टि में शिक्षा लोकतंत्र की रीढ़ की हड्डी है । शिक्षा के अभाव में लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता । उसने देश के नागरिकों में लोकतंत्रीय मूल्यों के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए :-
   - 6 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए ।
   - सभी बच्चों को बिना किसी भेदभाव के शिक्षा के समान अवसर दिए जाएँ ।
   - माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का समुचित विकास किया जाए और इन स्तरों पर युवकों को कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाए ।
   - विद्यालयों में ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिनसे बच्चों में लोकतंत्रीय मूल्यों में आस्था उत्पन्न हो और वे तदनुकूल व्यवहार करें ।
   - प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था की जाए ।
4. **शिक्षा द्वारा राष्ट्र का अधुनिकीकरण करना :** राष्ट्र के आधुनिकीकरण से आयोग का तात्पर्य विज्ञान एवं तकनीकी के प्रयोग से देश का आर्थिक विकास करने और जन साधारण के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने से हैं। इसके लिए उसने निम्नलिखित सुझाव दिए :-
   - 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए ।
   - जन साधारण के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाया जाए ।
   - उच्च स्तर पर विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की उचित व्यवस्था की जाए ।

- छात्रों में स्वतंत्र चिंतन और निर्णय लेने की शक्ति का विकास किया जाए ।

5. **शिक्षा द्वारा सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना :** इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिए :-

- सभी शिक्षण संस्थाओं में सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए ।
- प्राथमिक स्तर पर इन मूल्यों की शिक्षा रोचक कहानियों के माध्यम से दी जाए ।
- माध्यमिक स्तर पर शिक्षक-शिक्षार्थी विचार-विमर्श करें और अपने लिए मूल्यों का चयन करें ।
- विश्वविद्यालय स्तर पर मूल्यों का सुदृढ़ीकरण किया जाए ।

नई शिक्षा संरचना 10+2+3 के मूल उद्देश्य

सम्पूर्ण देश में नई शिक्षा संरचना 10+2+3 को लागू करने के मूल उद्देश्य निम्न हैं :-

- सम्पूर्ण देश में शिक्षा के स्तर में समानता लाना जिससे एक क्षेत्र के छात्र दूसरे क्षेत्र की शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पा सकें ।
- प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा सामाजिक एकता, राजनैतिक एकता और राष्ट्रीय एकता का विकास करना ।
- प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों को क्षेत्र विशेष का नहीं, राष्ट्र का नागरिक बनाना ।
- प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों के मानवीय एवं वैज्ञानिक दोनो पक्षों का विकास करना जिससे एक ओर संस्कृत का संरक्षण हा ेऔर दूसरी और देश का आधुनिकीकरण हो ।
- प्रथम 10 वर्षीय आधारभूत राष्ट्रीय पाठ्यचर्या द्वारा बच्चों में श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना ।
- +2 पर बहुसंख्यक सामान्य छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा देकर उन्हें अपनी जीविका कमाने योग्य बनाना और मेधावी छात्रों को सामान्य शिक्षा देकर विश्वविद्यालयों शिक्षा के लिए तैयार करना ।
- +3 की विशिष्ट शिक्षा द्वारा राष्ट्र के लिए विशेषज्ञ तैयार करना, जिससे राष्ट्र को विशिष्ट मानव संसाधन की पूर्ति हो, राष्ट्र का बहुमुखी विकास हो ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 के अनुसार

नवोदय विद्यालयों के उद्देश्य :-

- सबसे अच्छे बच्चों को सबसे अच्छ्भ शिक्षा उपलब्ध कराना ।
- देश के उपेक्षित क्षेत्र (ग्रामीण) और उपेक्षित वर्ग (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) के प्रतिभावान बच्चों को आगे बढ़ने के अवसर प्रदान करना ।
- राष्ट्रीय लक्ष्य - समाजवाद और धर्म निरपेक्षता की प्राप्ति करना और राष्ट्रीय एकता का विकास करना ।
- देश की प्रतिभाओं का विकास करना और उनके द्वारा राष्ट्र का विकास करना ।

- अन्य विद्यालयों के लिए आदर्श उपस्थित करना ।

रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार विश्वभारती के उद्देश्य :

- मानव जीवन व प्रकृति के मध्य सामंजस्य स्थापित करना ।
- सत्य पर आधारित ज्ञान ।
- मानव कल्याण ।
- प्रभु की महत्ता की स्वीकृति ।
- पूर्वी व पश्चिमी सभ्यता के सुखद व लाभकारी पहलुओं में सामंजस्य ।
- भारतीय सभ्यता व संस्कृति का बोध कराना ।
- विश्व-बन्धुत्व का भाव ।
- विश्वभारती को शिक्षा के वैश्विक केन्द्र के रूप में अध्ययन हेतु उपलब्ध कराना ।
- शिक्षार्थी अपने शिक्षक के उच्च आदर्शों का पालन करें ।
- शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास हो तथा वह अनुशासन में रह कर स्वावलम्बी बन सकें ।

गुरूकुल प्रणाली के उद्देश्य :

- बालक का सर्वांगीण विकास ।
- नैतिक विकास तथा चरित्र निर्माण ।
- वैदिक धर्म व प्राचीन हिन्दू संस्कृति में आस्था तथा विश्वास ।
- राष्ट्रीयता की भावना तथा रोजगारपरक शिक्षा हेतु छात्रों को तैयार करना ।
- गुरू-शिष्य सम्बन्ध को दृढ़ करना ।
- भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, ज्ञान विज्ञान से छात्रों को अवगत कराना ।

वनस्थली विद्यापीठ के उद्देश्य :

- बालिकाओं के सर्वोत्तम विकास व उन्नति के लिये गृह शिल्प, प्रबन्ध, गृह व्यवस्था, ललित कला, उद्योगों का शिक्षण तथा शारीरिक व्यायाम की शिक्षा प्रदान करना ।
- बालिकाओं में नैतिक गुणों व उच्च आदर्शों का निर्माण करना । जैसे - उन्हें भारतीय मूल्यों व आदर्शों के अनुपालन, निडरता, सादगी, साहस तथा वीरता की प्रवृत्ति उत्पन्न करने हेतु प्रेरित करना ।
- बालिकाओं में निडरता का भाव उत्पन्न किया जाए तथा उन्हें स्त्रीत्व के गुणों सहित स्वतंत्रता प्रदान की जाए तथा भारतीयता, राष्ट्रीयता व प्रजातांत्रिक भावना का विकास किया जाए ।
- छात्रावास व्यवस्था, सामुदायिक विकास योजना द्वारा छात्राओं में सहयोग, सहकारिता तथा स्वावलम्बन के गुणों का विकास किया जाए ।

- छात्रों में व्यवाहारिकता की भावना की उत्पत्ति के लिये व्यावहारिक व स्वतंत्र कार्यक्रमों का संचालन तथा व्यवहारिक मूल्यांकन किया जाए ।
- बालिकाओं के अभिभावकों एवं संरक्षकों के मध्य मेल-मिलाप हेतु गोष्ठियाँ व मंत्रणाएँ हों, ताकि वे विद्यापीठ की योजनाओं में रूचि लेकर सहयोग कर सकें ।
- पीठ में आधुनिक विज्ञान के साथ ही प्राचीन वैदिक धर्म की शिक्षा व ज्ञान भी प्रदान किया जाए।
- पाठ्यक्रम इस प्रकार का हो जो बालिकाओं का सर्वांगीण विकास कर सकें ।

श्री अरविन्द घोष के अनुसार अरविन्द आश्रम के उद्देश्य :

अरविन्द घोष की स्थापना का उद्देश्य आध्यात्मिकता और भौतिकतावाद में सामंजस्य स्थापित करना था । किन्तु बालक के सर्वांगण विकास हेतु श्री अरविन्द के आश्रम के निम्नलिखित उद्देश्य थे :-

- **शारीरिक स्वास्थ्य व समृद्धि :** बालक के सम्पूर्ण विकास में सबसे प्रमुख रूप से शरीर की विशिष्ट भूमिका होती हैं । शरीर के स्वरूप रहने से मन और आत्मा भी स्वस्थ रहती है । अतः बालक को शारीरिक विकास का सर्वप्रथम प्रयास करना चाहिए ।
- **चारित्रिक गुणों व नैतिक गुणों का विकास :** नैतिकता के तीन आधार मानव प्रगति, स्वभाव व भावना, चरित्र निर्माण में सहायक हैं । अतः शिक्षा द्वारा बालक में इन्हीं को विकसित करके व्यक्ति में चारित्रिक व नैतिक गुणों का गठन करना चाहिए ।
- **इन्द्रिय प्रशिक्षण व अनुशासन :** व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को समायोजित करने का श्रेय ज्ञन्द्रियों को ही जाता है । क्योंकि प्रशिक्षित इन्द्रियों व ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से वास्तविक रूप से व्यक्ति अपने मन पर विजय प्राप्त कर अत्यन्त अनुशासित व उच्च जीवनचर्या का पालन करता है ।
- **आध्यात्मिक व आत्मिक शुद्धि व विकास :** यदि बालक में ऐसी शक्ति उत्पन्न कर दी जाए कि वह उस दैवी अंश की शक्ति का अनुसरण करके आचरण करने लगे । अन्तर्बोध की प्राप्ति करके परमात्मा का बोध कर लें, तो वह पूर्णता को प्राप्त कर सकता है । अतः शिक्षा द्वारा ऐसे प्रयास करने चाहिए।

जामिया मिलिया इस्लामिया के उद्देश्य :

यह पूर्णतया राष्ट्रवादी मुस्लिम संस्था है । जिसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं :-

- यह संस्था मुसलमानों में व्यापक और विस्तृत वैज्ञानिक राष्ट्रवादी विचारों को उत्पन्न करने हेतु मुस्लिम संस्कृति व धर्म का आधुनिक राष्ट्रवादी दृष्टि से विकास करती है ।
- इस संस्था में शिशु शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयों शिक्षा तक, उत्तम प्रकार की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था होती हैं ।
- यह संस्था छात्रों में राष्ट्रीयता व आदर्श नागरिक बनने हेतु उच्च मूल्यों की शिक्षा प्रदान करती है।

18.3 सारांश (Summary)

माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य हैं व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास । सर्वांगीण विकास का अर्थ है व्यक्ति का

हर क्षेत्र में सामंजस्य स्थापित करने की कला का विकास । माध्यमिक शिक्षा मध्य की शिक्षा है जो प्राथमिक शिक्षाा और उच्च शिक्षा के मध्य की कड़ी है । व्यक्ति माध्यमिक विद्यालय में ऐसे उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं । जिससे व्यक्ति को अपने भविष्य की ओर उन्मुख होने में आसानी होती है । माध्यमिक शिक्षा की शुरूआत प्राथमिक शिक्षा के बाद होती है । इसमें बहुत सारे उद्देश्य होते हैं जिसे प्राप्त कर वह समस्या समाधान की नयी विधि सीख जाता है । जिसका प्रयोग वह भविष्य में उसी तरह की मिलती–जुलती समस्याओं के समाधान में कर सकता है ।

18.4 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य लिखिये ।

   Write down the objectives of Secondary Education.

2. विभिन्न आयोगों के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों की विवेचना करें ।

   Describe the aims of Secondary education according to various commision.

18.5 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. मदान, पूनम एवं पाण्डेय रामशक्ल (2017) : समसामयिक भारत और शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
2. लाल, रमनबिहारी एवं पलोड़, सुनीता (2013) : उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा के आधार ओर उसका विकास, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ ।
3. सुखिया, एस.पी. एवं त्यागी, गुरसरन दास (2012) : विद्यालय प्रशासन, संगठन एंव स्वास्थ्य शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा ।
4. भटनागर, सुरेश (2009) : आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ ।

❑ ❑ ❑

इकाई : 19 माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण : इसकी स्थिति (Universalisation of Secondary Education : Its Status)

पाठ-संरचना (Lesson Structure)

19.0 उद्देश्य (Objectives)

19.1 परिचय (Introduction)

19.2 शिक्षा सबके लिए (Education for All)

19.3 भारत में माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण : एक दृष्टि (Universalisation of Secondary Education in India- Vision)

19.4 माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की समस्याएँ (Problems in the Universalisation of Secondary Education)

19.5 माध्यमिक शिक्षा का मात्रात्मक प्रसार (Quantitative Expansion of Secondary Education)

19.6 माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में समता मूलक परिप्रेक्ष्य (Equity Perspective in Universalisation of Secondary Education)

19.7 माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक संघारण की समस्या (Problems of quality Consolidation in Secondary Education)

19.8 माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यचर्या एवं मूल्यांकन की समस्या एवं इनका समाधान (Curricular and Evaluation Problems and its Solution in Secondary Education)

19.9 माध्यमिक शिक्षा में निजीकरा एव व्यवसायीकरण के मुद्दे (Issue Related to Privatisation and Vocationalisation in Secondary Education)

19.10 सारांश (Summary)

19.11 अभ्यास के प्रश्न (Question for Exercise)

19.12 प्रस्तावित पाठ (Suggested Reading)

19.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त छात्राध्यापकः

- शिक्षा सबके लिए/शिक्षा के सार्वजनीकरण की अवधाारणा से अवगत हो सकेंगे।
- प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से अवगत होने के साथ ही माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के औचित्य को समझ सकेंगे।
- माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण अन्तर्गत इनके संख्यात्मक प्रसार, गुणात्मक संघारण एवं समता के मुद्दे पर गंभीरता से विमर्श कर सकेंगे।
- माध्यमिक शिक्षा अन्तर्गत 'निजीकरण' एवं 'व्यावसायीकरण' के मुद्‌दे पर आलोचनात्मक विश्लेषण कर सकेंगे।
- माध्यमिक शिक्षा स्तर पर की समस्याओं से अवगत होंगे।
- माध्यमिक स्तर पर के पाठ्‌यचर्यात्मक सुधार, परीक्षा सुधार पर समझ बना पायेंगे एवं इस हेतु सुधारात्मक कार्य कर सकेंगे।
- समग्र रूप से माध्यमिक शिक्षा द्वारा 'जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Divident) हासिल करने के प्रति सचेत होंगे।

उपर्युक्त उद्देश्यों से अवगत कराना ही इस इकाई का उद्‌देश्य हैं।

19.1 परिचय (Introduction)

प्रस्तुत इस इकाई में सर्वप्रथम हम 'शिक्षा सबके लिए' पर विचार रखते हुए 'शिक्षा के सर्वव्यापीकरण' पर प्रकाश डालें। इसके अन्तर्गत प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण से माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण को जोड़ते हुए इसकी पृष्ठभूमि एवं वर्तमान स्थिति पर विमर्श करेंगे। इसी क्रम में वर्तमान में माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के प्रयासों का ब्योरा प्रस्तुत किया जाएगा। वर्ष 2009 से राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) के प्रयासों को रखने की कोशिश होगी। इसके आगे माध्यमिक शिक्षा के मात्रात्मक प्रसार, गुणवत्ता संधारण एवं समता परिप्रेक्ष्यों की भी चर्चा होगी। इसी के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा के निजीकरण एवं व्यवसायीकरण पर भी विमर्श होगा और सबसे अन्त में माध्यमिक शिक्षा के लिए पाठ्‌यचर्या स्तर, शिक्षा शास्त्रीय स्तर एवं परीक्षा व मूल्यांकन स्तर पर के विशेष अपेक्षित सुधारों पर खास रक्षा रखा जाएगा।

19.2 शिक्षा सबके लिए (Education for All)

अब तक हमलोग इस बात से बखूबी अवगत हैं कि किस प्रकार से शिक्षा मानव के संपूर्ण विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के माध्यम से ही समाज में मानवीय मूल्यों, मानव संसाधनों की गुणवत्ता और सांस्कृतिक विविधता के प्रति सम्मान संभव है। **'सबके लिए शिक्षा'** (शिक्षा का सार्वभौमीकरण) अभियान एक ऐसी उत्कृष्ट परम्परा का विकास करना है जो पारंपरिक संस्कृतियों के सर्वश्रेष्ठ मूल्यों को बनाये रखती हो, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के लाभदायक पक्ष का उपयोग करती हो और मानवता, मित्रता, सहभागिता एवं राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा देती हो।

शिक्षा मानव जीवन के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। 'सा विद्या या विमुक्तये' यानि शिक्षा हमें अज्ञान एवं दमन

से मुक्ति प्रदान करती है। महात्मा गाँधी के शब्दों में 'शिक्षा चेतना के विकास और समाज के पुनर्गठन का बुनियादी साधन है' शिक्षा बिना जीवन निरर्थक है। शिक्षा से ही मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास होता है। शिक्षा व्यक्ति की उन्नति एवं राष्ट्र के उत्थान की पहली शर्त है।

यह शिक्षा ही है जो समाज के सभी वर्गो के जीवन स्तर को सुधारने का बहु-आयामी साधन है। शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता और विकास हेतू एक प्रेरक शक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए। जब हम शिक्षा के सार्वजनीकरण/सार्वभौमीकरण या सर्वव्यापीकरण (Universalisation) की बात करते हैं तो इसके साथ सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए व्यक्तियों को आगे बढ़ने से रोकने वाले अवरोधों (रूकावटें) को दूर किये जा सकने वाले उपायों पर गंभीरता पूर्वक विचार करना शुरू करते हैं। यदि हमें सच्चे मन से भारत में मौजूदा गरीबी और गरीबी से उत्पन्न समस्याओं पर काबू करना है, असमानता, अंधविश्वास, प्रदूषण, बढ़ती बेरोजगारी व जनसंख्या नियन्त्रण, वैश्विक स्तर पर पारस्परिक सौहार्द समझ को विकसित करना हो तो सामान्य से सामान्य व्यक्ति को शिक्षित करना होगा। इस हेतु शिक्षा के सार्वजनीकरण (universalilsation) की जरूरत होगी। ऐसा करने पर शिक्षा सबसें के लिए अनिवार्य होगी।

19.3 भारत में माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण : एक दृष्टि (Universalisation of Secondary Education in India – Vision)

193.1 पृष्ठभूमि (Background)

हम सभी इस बात से अवगत हैं कि भारतीय शिक्षा पद्धति में 10+2+3 की व्यवस्था लागू है। शुरूआती 10 वर्षो की शिक्षा मे प्रारंभिक एवं माध्यमिक (वर्ग 1 से 8 एवं 9 से 10वीं) शिक्षा प्रदान की जाती है। आगे 2 वर्षो की उच्च माध्यमिक एवं फिर उच्च शिक्षा में प्रवेश की शिक्षायी व्यवस्था कायम है। इस प्रकार से देखें तो माध्यमिक शिक्षा स्तर प्रारभिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा के बीच एक कड़ी का काम करता है। बीच की यह कड़ी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि यह युवाओं का बेहतर भविष्य, बेहतर जीवन स्तर एवं बेहतर राष्ट्र निर्माण को सुनिश्चित करता है। माध्यमिक शिक्षा का यह मध्य स्तर विभिन्न ज्ञान अनुक्षेत्रों, कौशलों एवं मौलिक दक्षताओं का विकास करा पाने में सक्षम होता है। आइये इस महत्त्वपूर्ण शिक्षा अवस्था (माध्यमिक) के औचित्य को समझने का एक और प्रयास करें–

हम एक फलदायी पेड़ के विकास घटनाक्रम को उसके बीजारोपण से लेकर फल लगने तक के अवस्था से समझें। पेड़ में बेहतर फल तभी लगेंगे जब मजबूत जड़ हो एवं इसी जड़ से बने फलदार पेड़ को उसके तने से शाखा तक का खूब अच्छे से पोषण व विकास हुआ हो। शिक्षा जगत में प्राथमिक शिक्षा की अवस्था बीजारोपण एवं उसके अंकुरण व स्थिरीकरण से है। प्रारंभिक शिक्षा (वर्ग 1 से 8 के 6 से 14 आयु वर्ग) की अवस्था शिक्षा की मजबूत जड़ बनाने का एक प्रयास है या यूँ कहें एक फलदायी पेड़ को मजबूती से खड़ा करने का एक प्रयास है। आगे हम यह सोचे कि क्या इतना ही विकास काफी है ? इसके जवाब में आप यही सोचेंगे कि फल प्राप्ति हेतु बीच की अवस्था में पेड़ की देख भाल व उसे पौष्टिकता प्रदान करना उतना ही अपरिहार्य है जितना कि जड़, अन्यथा अच्छे फल की उम्मीद छोड़ देनी चाहिए। ठीक इसी तरह उच्च शिक्षा तभी लाभकारी हो पायेगी जब प्रारंभिक शिक्षा/बुनियादी शिक्षा बहुत अच्छी हो एवं मध्य की माध्यमिक शिक्षा गुणवत्ता आधारित एवं उचित देख-रेख के साथ ज्ञान एवं कौशल के साथ जीवनोपयोगी बनाया गया हो। अतः, माध्यमिक शिक्षा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एक कड़ी हैं।

उक्त बातों के मद्देनजर जहाँ शिक्षा सबों के लिए जरूरी एक साधन व साध्य समझा गया वहीं यह भी सोचा जाने लगा कि यह सबों के लिए कैसे उपलब्ध हो सके ? इस तरह से हम शिक्षा के सार्वजनीकरण की

बात सोचने लगे जिसका अभिप्राय रहा– शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना एवं उसका व्यापक प्रसार। **इण्टरनेश्नल डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन** में शिक्षा के सार्वजनीकरण को परिभाषित करते हुए कहा गया है– ''शिक्षा के सार्वभौमिकरण या सार्वजनीकरण से आशय उस शिक्षा प्रणाली से है जिसमें सभी की प्रजाति, रंग, धर्म, लिंग या योग्यता की भिन्नताओं के बावजूद शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराया जाना।'' ("Universalization of Education is a System in Which Extending Opportunities to All Regardless of Race, Colour, Cread, Sex or Ability.")

अब यह जानने की जरूरत है कि 'शिक्षा का सार्वजनीकरण' क्या एक विचार एवं उस विचार पर सहमति मात्र है ? बिल्कुल नहीं। ऐसा नहीं है कि सैद्धांतिक सहमति आधार मात्र पर हम इसे पूरे भारत में लागू कर लेंगे। हमें कहाँ से शुरू करना होगा ? कैसे करना होगा ? कब-तक करना होगा ? संवैधानिक प्रतिबद्धता हो या नहीं ? आदि, पर गहन चिन्तन करते हुए क्रियान्वयन योजना बनाने की जरूरत होगी।

प्राथमिक व प्रारंभिक स्तर के सर्वव्यापी शिक्षा हेतु यह चिंता संविधान निर्माताओं ने भी महसूस की थी एवं भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में शिक्षा की उपयोगिता एवं अनिवार्यता को स्वीकार। नीति निर्देशक तत्वों के अन्तर्गत 45वें अनुच्छेद में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है– ''राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्षो की अवधि में चौदह वर्ष तक के सभी बालकों को नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देने का उपबन्ध करने का प्रयास करेगा।'' इस तरह से नीति निर्देशक तत्वों में अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का प्रावधान किया गया किन्तु कई दशकों तक इसे मूल अधिकार के रूप में सुस्थापित नहीं किया जा सका। 2002 ई० में 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा 21वें अनुच्छेद में 21-A जोड़कर शिक्षा को मूल अधिकार के रूप में मान्यता दी गई। 2009 ई० में यह 'अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009' के रूप में भारतीय संसद के द्वारा पारित हुआ एवं 1 ली अप्रील 2010 से पूरे देश में लागू है। शुरूआती स्तर पर यह वर्ग 1 से 8वीं तक के 6 से 14 आयु वर्ग के देश के तमाम बच्चे/बच्चियों, पर एक साथ लागू हुआ एवं इस प्रकार से प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के ठोस प्रयास में सर्वव्यापी पहुँच (Universal Access), सर्वव्यापी ठहराव (Universal Retention in Schools) एवं गुणवत्ता आधारित शिक्षण (Quality Based Education) की संवैधानिक प्रतिबद्धता परिलक्षित हुई। इस पहली सीढ़ी चढ़ने के बाद आगे कई सीढ़ियों को चढ़ना अभी बाकी ही है।

19.3.2 माध्यमिक स्तर की शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु विचारणीय (Reflection on the Universalisation of Secondary Education)

- क्या, एक अच्छा फल का पेड़ लगा देने मात्र के आधार पर ही पेड़ से अच्छे फल की उम्मीद की जाए ?

  (यदि पेड़ के बढ़ने से उसके फलने तक की सेवा को छोड़ दिया जाए)

  (A) क्या, प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण मात्र से ही माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में जागरूकता आ जायेगी ?

  (B) युवा देश भारत के जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic Dividend) हेतु माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण किस तरह से जरूरी होगा ?

  (C) अब-तक माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु राष्ट्रीय स्तर पर क्या-क्या प्रयास किये जा रहे है? (प्रसार, पहुँच, गुणवत्ता संधारण)

19.3.2 (A) उक्त विचारणीय मुद्दों के सन्दर्भ में अपेक्षित चर्चा इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट कराती है कि आज के समय में माध्यमिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देते हुए इसके सार्वजनीकरण के हरेक प्रयास

किये जाने की जरूरत है। आज लोगों की इच्छा जिस तरह के सामाजिक-आर्थिक रूप से समृद्ध बनने की है साथ ही प्रजातांत्रिक मूल्यों के विकास के तहत् जिस समदर्शी भाव के अमल पर पहल की शुरूआत हुई है, वैसे ही हमारी चुनौतियाँ भी बड़ी है। सामाजिक रूप से पिछड़े व हाशिये पर आये समाज की एक आबादी जो अनुसूचित जाति व जनजाति रूप में व पिछड़े वर्ग, भाषायी अल्पसंख्यक या धार्मिक अल्पसंख्यक व छात्रों की तुलना में छात्राओं ने इस उदीयमान समाज में माध्यमिक शिक्षा के पहुँच, सहभागिता व गुणवत्ता संधारण के प्रति अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करना चाही है।

इनके अतिरिक्त 1 अप्रैल 2010 से प्रभावी प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के पश्चात् इस आठ (8) वर्षो के दौरान कक्षा 8वीं उत्तीर्ण की 95% तक भी हो, तो माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की अपेक्षित जरूरतों पर ध्यान डालना स्वभाविक सा है।

ऐसा भी नहीं है कि माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु आज पहली बार अभी से ही बात शुरू होगी बल्कि इस मुद्दे पर सितम्बर 2004 में ही CABE (Centrla Advisory Board of Education) शिक्षा हेतु केन्द्रीय सलाहकार समिति) की एक उपसमिति गठित की गई, जिसे माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण पर एक ब्लूप्रिण्ट (Blueprint) तैयर करने की जिम्मेवारी सौंपी गई। समिति ने जून 2005 ई० में अपनी रिर्पोट सौंपी जिसकी मुख्य अनुशंसाएँ निम्न रहीं–

- माध्यमिक शिक्षा अन्तर्गत विद्यालयीकरण के कुछ मानक जो कि राष्ट्रीय एवं राज्यीय मानक अनुरूप साझा रूप से तैयार होंगे। इसमें कुछ मानक का निर्धारण राज्य विशेष तौर पर वहाँ की स्थिति अनुरूप तय कर सकेंगी। इस तरह से एक निर्देशक सिद्धान्त तय होना चाहिए जो कि माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापी पहुँच, समता और सामाजिक न्याय, औचित्य एवं विकास के साथ ढ़ाँचागत एवं पाठ्यचर्या मुद्दे पर विमर्श करें।
- प्रत्येक राज्य को माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु भावी योजना व क्रियान्वयन पर विचार करना चाहिए।
- प्रारंभिक शिक्षा एवं माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण हेतु वित्तीय आवश्यकताओं/जरूरतों पर ध्यान दिया जाना।

निर्देशक सिद्धान्त (Guiding Principle) – 2004 में प्रस्तावित विचारानुरूप सबों के लिए माध्यमिक शिक्षा की संप्राप्ति हेतु 2015 ई० तक 16 वर्ष आयु वर्ग के सभी बालक/बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा संप्राप्ति का लक्ष्य रक्षा गया था जबकि 18 वर्ष तक के सभी बालक-बालिकाओं को 2020 ई० तक उच्च माध्यमिक शिक्षा हेतु लक्षित किया गया था।

समिति ने माध्यमिक शिक्षा हेतु जो अवधाराणात्मक अभिकल्प (Conceptual Design) तैयार किया उसके चार (4) प्रमुख सिद्धान्त रखे–

- सर्वव्यापी पहुँच (Universal Access)
- समता एवं सामाजिक न्याय (Equality and Social Justice)
- औचित्य एवं विकास (Relevance and Development)
- ढ़ाँचागत एवं पाठ्चर्यात्मक पहलू (Structural and Curricular Aspects)

सर्वव्यापी पहुँच– यहाँ सर्वव्यापी पहुँच का अभिप्राय सभी तरह के शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक परिवेश के समस्त छात्र-छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा तक पहुँच बनाने से है। जैसे- एक शारीरिक रूप

से स्वस्थ एवं दिव्यांग की पहुँच में भी माध्यमिक शिक्षा होती हो। दूसरी ओर सामान्य, पिछड़े, दलित, अभिवंचित, शहरी-ग्रामीण छात्र-छात्राओं के साथ अमीर एवं गरीब सबों के लिए माध्यमिक शिक्षायी व्यवस्था पहुँच बनाती हो। इसका एक मतलब यह भी होता है कि सर्वव्यापी पहुँच इस प्रकार का हो कि छात्र/छात्राओं द्वारा विद्यालयी दबाव या असुविधा या अनुपलब्धता की वजह से छीजन (Drop Out) न हो सके।

समता एवं सामाजिक न्याय– संविधान में वर्णित समता एवं सामाजिक न्याय की बातें हमें माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की ओर ले जाती है। मजेदार बात यह भी है कि माध्यमिक शिक्षा में हम समता एवं सामाजिक न्याय का ध्यान रखें एवं माध्यमिक शिक्षा के द्वारा हम समता एवं सामाजिक न्याय अनुपालन भी सुनिश्चित करा पायें।

माध्यमिक स्तर पर कम से कम 6 ऐसे आयाम है जिनके बहाने हम समता एवं सामाजिक न्याय पर पहल कर सकते हैं अथवा करा सकते हैं। ये 6 हैं–

- लिंग भिन्नता
- आर्थिक विषमता
- सामाजिक (भिन्न स्तर) स्तरिकरण
- सांस्कृतिक विविधता का सम्मान
- शारीरिक/मानसिक अक्षमता
- ग्रामीण-शहरी विभेद

औचित्य एवं विकास– माध्यमिक शिक्षा की सर्वव्यापकता तभी सिद्ध होगी तब इसका भविष्य के विकास में सहयोग हो। यह तब-तक औचित्यपूर्ण नहीं होगा जब-तक कि हम छात्र-छात्राओं की क्षमताओं का बेहतर उपयोग न करा पायेंगे और सामाजिक-सांस्कृतिक उत्पादक कार्य एवं जरूरत अनुरूप सहयोग नहीं ले पायें।

इस हेतु भिन्न बातों का ध्यान देना होगा–

- प्रजातान्त्रिक, समान, अधिकार सम्पन्न, समान धर्मनिरपेक्ष नागरिक निर्माण की प्रक्रिया में तत्पर।
- ज्ञान का व्यवहार में उपयोग न कि सिर्फ सूचना संग्रहण।
- अन्तर्विषयक उपागम को बढ़ावा देना।
- मूल विषय दक्षता (Subject Competencies) से परिचित होने के साथ-साथ उचित कौशलों का विकास
- तकनीक ज्ञान का समावेश व नये युग के अनुरूप ज्ञान स्थानान्तरण (Transfer of Knowledge)

इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा एक अच्छे नागरिक निर्माण के साथ-साथ जीवनोपयोगी कौशल विकास का माध्यम बन सकें।

ढ़ाँचगत एवं पाठ्यचर्यात्मक पहलू– 2 वर्ष के माध्यमिक ढ़ाँचे में पाठ्यचर्या में वर्णित अधिगम अनुभवों के अनुरूप हमारे पाठ्यक्रम को उचित संगठन नहीं दिखता है। हमारा पाठ्यक्रम एकमार्गीय है, जिसके कारण छात्रों को अपनी रूचि के विषयों को चयन करने का अवसर नहीं मिल पाता हैं। नतीजा यह होता है कि पाठ्यक्रम अव्यवहारिक तथा अवास्तविक होता जा रहा है। वर्तमान ढ़ाँच में दी जा रही शिक्षा व्यवहारिक ज्ञान का विकास नहीं करता है। पाठ्यक्रम में औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों का अभाव है।

माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में हमें इन विशिष्ट पहलूओं का ध्यान रखना होगा ताकि छात्र-छात्राओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जा सके साथ ही उनकी क्षमताओं का बेहतर उपयोग किया जा सके।

उक्त पूरी विवरणी CABE (2005) की अनुशंसा रूप में थी। अतः यह कह देना कि सिर्फ प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण तक ही हमारी सोच थम सी गई हैं, यह गलत होगा। हम आज से दशकों पहले माध्यमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण हेतु चिंतित रहे हैं एवं संवेदनशील भी। ऐसा इसलिए क्योंकि हम जानते हैं कि माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता राष्ट्र की आर्थिक उन्नति, सामाजिक सशक्तिकरण वैश्विक प्रगति के साथ साझीदार बनने हेतु जरूरी है। अतः इसके सर्वव्यापीकरण हेतु कोई सन्देह नहीं होना चाहिए। हाँ इतना जरूरी है कि माध्यमिक शिक्षा के संख्यात्मक प्रसार एवं गुणात्मक संधारण में कई अड़चनें आई है फिर भी इस दिशा मे हमारे प्रयास जारी रहे हैं।

19.3.2 (B) 'जनसांख्यिकीय लाभांश' हेतु माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण (Universaliztion of Secondary Education for 'Demographic-Divident')

भारत को आज युवा आबादी वाला देश कहा जाने लगा है। युवा वर्ग देश का भविष्य होने के साथ-साथ हमारे देश के विकास का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। भारत में युवाओं की संख्या अन्य देशों से अधिक है। भारत की लगभग 65% आबादी की आयु 35 वर्ष से कम की है।

दूसरी खूबी यह है कि इस आबादी रूपी संसाधन में युवा (15–35 वर्ष) एवं **'कार्यशील आबादी'** (15–64 **वर्ष**) की हिस्सेदारी लगातार विस्तार ले रही हैं। देश में आज कार्यशील आबादी समूह का प्रतिशत 63.4% रहा है जो 2001 ई० की जनगणना में करीब 60% था। इतना ही नहीं **'निर्भर जनसंख्या'** जिसमें 0 से 14 वर्ष के बच्चे एवं 65 से 100 वर्ष की बुजुर्ग होते हैं, इनकी निर्भरता अनुपात घटकर 0.55 रह गया है।

तो इस प्रकार से–

- निर्भर जनसंख्या में कमी आने
- कार्यशील जनसंख्या में वृद्धि होने
- माध्य आयु में 2011 में 2001 ई० की तुलना में वृद्धि होने (2001 ई० में 22 वर्ष, 2011 ई० में 24 वर्ष)

जैसी एक लाभदायक जनसांख्यिकीय स्थिति बनी है जिससे अगले कई दशकों में प्रचुर आर्थिक लाभ मिलने की उम्मीद है। ऐसा अनुमान है कि 2025 तक भारत की जनसंख्या 1.4 अरब की होगी। इस दौरान जो जनसंख्या पिरामिड होगा उनमें 15–64 आयु वर्ग (कार्यशील आबादी) का सर्वाधिक विस्तार होगा एवं भारत के लिए यह लाभ लेने की बहुत अच्छी स्थिति बन पड़ी है। ऐसे में देश के सामने कौशल विकास की बड़ी चुनौती है। अगले दशक तक हर साल करीब 1.2 करोड़ लोग देश की श्रम शक्ति में शामिल होंगे। इसके विपरीत देश की कुल प्रशिक्षण क्षमता 43 लाख है। लिहाजा इस कमी को दूर करने में व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को माध्यमिक शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाये जाने की अत्यन्त ही जरूरत है। अगर हम ऐसा नहीं कर पायेंगे तो संसाधन का महत्तम दोहन व उपयोग नहीं कर सकेंगे जो राष्ट्रहित में नहीं होगा।

अतः, माध्यमिक शिक्षा को न केवल सर्वव्यापीकरण की जरूरत है बल्कि पाठ्यचर्यात्मक संशोधन कर कुशल व हुनरमन्द हाथों की संख्या को बढ़ाना है। युवा आबादी यदि कौशल युक्त होंगे तो हमारे देश के युवाओं की माँग देश-विदेश में होगी जिससे आर्थिक विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास भी हो पायेगा। पूरी समीक्षा इस बात की ओर इशारा करती है कि 15 वर्ष से ऊपर की जनसंख्या को शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन और

अर्थव्यवस्था से लाभ लेने के लिए कुशल श्रमिक/नागरिक के रूप प्रस्तुत करने की जरूरत है। मुख्यतः इसके 4 लाभ दिखते हैं–

- **बचत**
- **श्रमिक पूर्ति**
- **मानव पूँजी का विकास–** जनसंख्या नियंत्रण के साथ प्रति बालक शिक्षा पर ज्यादा खर्च, स्वास्थ्य पर ज्यादा ध्यान और संसाधन की ज्यादा उपलब्धता के रूप में।
- **आर्थिक उन्नति–** निर्भरता अनुपात के कमने से प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का बढ़ना।

अतः, माध्यमिक शिक्षा और इसके आगे उच्च माध्यमिक शिक्षा के द्वारा अधिक से अधिक कुशल हाथ (Skill Hand) की तैयारी होनी चाहिए।

19.3.2 (C) माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में 'राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA)' की भूमिका (Role of RMSA in the Universalisation of Secondary Education)

इस योजना को मार्च 2009 में लागू किया गया है जिसका मुख्य लाभ माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा के पहुँच को बढ़ाना तथा इसके गुणवत्ता में सुधार करना।

लाखों बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए सरकार द्वारा स्थापित राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) काफी हद तक सफल रहा है एवं इसने पूरे देश में माध्यमिक शिक्षा के आधारभूत ढ़ाचे को शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता उत्पन्न कर दी है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने यह बात गौर से देखी है तथा अब यह 11वीं योजना के दौरान 20,120 करोड़ रूपये के कुल व्यय पर राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) नामक एक माध्यमिक शिक्षा योजना लागू करने पर विचार कर रही है।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अनुसार 'सर्व शिक्षा अभियान' सफलता पूर्वक लागू होने से बड़ी संख्या में छात्र उच्च प्राथमिक कक्षाओं में उत्तीर्ण हो रहे हैं तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए जबरदस्त मांग उत्पन्न कर रहे हैं।'

दृष्टि

माध्यमिक शिक्षा की दृष्टि है 14–18 वर्ष आयु समूह के सभी युवाओं को अच्छी गुणवत्ता की शिक्षा सुलभ तथा वहन योग्य तरीके से उपलब्ध कराना। इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए, निम्नलिखित को हासिल किया जाता हैं।

- किसी भी अधिवास क्षेत्र के लिए निर्धारित दूरी पर माध्यमिक विद्यालय की सुविधा उपलब्ध कराना, जो कि माध्यमिक विद्यालय के लिए 5 किलोमीटर तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर पर 10 किलोमीटर के अंदर हो,
- 2017 तक सभी को माध्यमिक शिक्षा की सुलभता सुनिश्चित करना (100% GER) एवं
- 2020 तक सभी बच्चों को स्कूल में बनाये रखना
- समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के विशेष सन्दर्भ में, शैक्षिक रूप से पिछड़ों, लड़कियों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे असमर्थ बच्चों एव अन्य पिछड़े वर्गो जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित

जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े अल्पसंख्यकों (EBM) को माध्यमिक शिक्षा सुगमता पूर्वक ढंग से उपलब्ध कराना।

लक्ष्य एवं उद्देश्य

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण (यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ सेकंडरी एजुकेशन (USE) की चुनौती का सामना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की परिकल्पना में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में मार्गदर्शक तत्व हैं: कहीं से भी पहुंच, सामाजिक न्याय के लिए बराबरी, प्रासंगिकता, विकास, पाठ्यक्रम एवं ढांचागत पहलू। माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण अभियान बराबरी की ओर बढ़ने का मौका देता है। आम स्कूल की परिकल्पना प्रोत्साहित की जाएगी। यदि प्रणाली में ये मूल्य स्थापित किए जाते हैं, तो अनुदान रहित निजी विद्यालयों सहित सभी प्रकार के विद्यालय भी समाज के निचले वर्ग के बच्चों एव गरीबी रेखा से नीचे (BPL) के परिवारों के बच्चों की उचित अवसर देना सुनिश्चित कर माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण (USE) के लिए योगदान देंगे।

मुख्य उद्देश्य

- ये सुनिश्चित करना कि सभी माध्यमिक विद्यालयों से भौतिक सुविधाएं, कर्मचारी हो तथा स्थानीय सरकार/निकायों एवं शासकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों के मामले में कम से कम सुझाए गए मानकों के अनुसार, एवं अन्य विद्यालयों के मामले में उचित नियामक तंत्र के अनुसार कार्य हो,
- नियमों के अनुसार सभी युवाओं को माध्यमिक विद्यालय स्तर की शिक्षा सुगम बनाना-नजदीक स्थिति करके (जैसे कि माध्यमिक विद्यालय 5 किलोमीटर के भीतर एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालय 7–10 किलोमीटर के भीतर/दक्ष एवं सुरक्षित परिवहन की व्यवस्था/आवासीय सुविधाएं, स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार, मुक्त विद्यालय/स्कूलिंग पद्धति सहित। लेकिन पहाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में, इन नियमों में कुछ ढील दी जा सकती है। ऐसे क्षेत्रों में आवासीय विद्यालय स्थापित किए जाने को तरजीह दी जा सकती है।
- यह सुनिश्चित करना है कि कोई भी बालक लिंग, सामाजिक-आर्थिक, असमर्थता या अन्य रूकावटो की वजह से गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा से वंचित न रहे,
- माध्यमिक शिक्षा का स्तर सुधारना, जिसके परिणामस्वरूप बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सीख बढ़े,
- यह सुनिश्चित करना कि माध्यमिक शिक्षा ले रहे सभी छात्रों को अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा मिले,
- उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति, अन्य बातों के साथ-साथ, साझा विद्यालय प्रणाली (कॉमन स्कूल सिस्टम) की दिशा में महती प्रगति को भी दर्शाएगी।

द्वितीय चरण के लिए तरीका एवं रणनीति (तत्कालीन)

संख्या, विश्वसनीयता एवं गुणवत्ता की चुनौती का सामना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण (USE) के सन्दर्भ में, अतिरिक्त विद्यालयों, अतिरिक्त कक्षों, शिक्षकों एवं अन्य सुविधाओं के रूप में बड़े पैमाने पर लागत आएगी। साथ ही साथ, इसमें आकलन/शैक्षिक आवश्यक्ताओं के प्रावधान, भौतिक ढाँचे, मानव संसाधन, अकादमिक जानकारी एवं कार्यक्रम लागू करने की प्रभावी निगरानी की भी आवश्यकता है। शुरू

में यह योजना कक्षा 10 के लिए होगी। तत्पश्चात् जहां तक हो सके लागू करने के दो वर्षो के भीतर, उच्चतर माध्यमिक स्तर को भी लिया जाएगा। माध्यमिक शिक्षा तक सभी की पहुँच बनाने एवं उसकी गुणवत्ता में सुधार के लिए रणनीति इस तरह है।

पहुँच

देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्कूली शिक्षा में बड़ी असमानता है। निजी तथा सरकारी विद्यालयों के बीच असमानताएँ हैं। गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के लिए एकसमान पहुँच प्रदान करने के लिए, यह स्वाभाविक है कि राष्ट्रीय स्तर पर विशेष रूप से डिजाइन किए गए विस्तृत नियम विकसित किए जाएं तथा प्रत्यक राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश के लिए प्रावधान किए जाए न सिर्फ राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश की भौगोलिक, सामाजिक-आर्थिक, भाषागत एवं सांख्यिकीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए बल्कि जहाँ जरूरी हो, स्थानीय जगह के अनुसार भी। माध्यमिक विद्यालयों से नियम सामान्य तौर पर केन्द्रीय विद्यालयों के तुल्य होने चाहिए। ढांचागत सुविधाओं एवं सीखने के संसाधनों का विकास निम्नलिखित तरीकों से किया जाएगा।

- मौजुदा विद्यालयों में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की शिफ्टों का विस्तार/रणनीति,
- सूक्ष्म नियोजन के आधार पर सभी आवश्यक ढाँचागत सुविधाओं एवं शिक्षको सहित उच्च प्राथमिक विद्यालयों का उन्नयन। प्राथमिक विद्यालयों के उन्नयन के समय आश्रम विद्यालयों को प्राथमिकता दी जाएगी।
- आवश्यकता के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों का उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में उन्नयन,
- स्कूल मैचिंग प्रक्रिया द्वारा अब तक अछूते हरे क्षेत्रों में नए माध्यमिक विद्यालय/उच्चतर माध्यमिक विद्यालय खोलना। इन सभी इमारतों में वर्षा-जल संचय प्रणाली अनिवार्य रूप से होगी तथा उसे दिव्यांगों के लिए मित्रवत् बनाया,
- वर्षा-जल संचय प्रणालियां मौजूदा विद्यालयों में भी लगाई जाएगी,
- मौजूदा स्कूलों की इमारतों को भी दिव्यांगों के लिए मित्रवत् बनाया जाएगा।
- नए विद्यालयों को भी सार्वजनिक-निजी भागीदारी के आधार पर स्थापित किया जाएगा।

गुणवत्ता

- आवश्यक ढाँचागत सुविधाएं, जैसे श्यामपट्ट, कुर्सियाँ, पुस्तकालय, विज्ञान एवं गणित की प्रयोगशालाएँ कम्प्यूटर प्रयोगशाला, शौचालय आदि की सुविधाएं उपलब्ध कराना,
- अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति तथा शिक्षकों का कार्य के दौरान प्रशिक्षण,
- कक्षा 8 उत्तीर्ण कर रहे छात्रों को सीखने की क्षमता में वृद्धि के लिए सेतु-पाठ्यक्रम,
- राष्ट्रीय पाठ्यक्रम संरचना (National Curriculum Framework, NCF, 2005) के मानकों की उपेक्षा के अनुसार पाठ्यक्रम का पुनरावलोकन,
- ग्रामीण तथा दुर्गम पहाड़ी इलाकों में शिक्षकों के लिए आवासीय सुविधा,
- महिला शिक्षकों को आवासीय सुविधा के लिए प्राथमिकता दी जाएगी।

न्याय

- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदायों के छात्रों के लिए मुफ्त भोजन/आवास की सुविधाएँ,
- लड़कियों के लिए छात्रावास/आवासीय विद्यालय, नकद प्रोत्साहन, स्कूल ड्रेस, पुस्तकें व अलग शौचालय की सुविधाएँ,
- मेघा सूची में आए/जरूरतमंद छात्रों को माध्यमिक स्तर पर छात्रवृत्ति प्रदान करना,
- सभी गतिविधियों की विशिष्टता होगी संयुक्त शिक्षा। सभी विद्यालयों में विभिन्न क्षमताओं के बच्चों के लिए सभी सुविधाएँ प्रदान करने के प्रयास किए जाएंगे,
- मुक्त एवं दूरस्थ सीखने की जरूरतों के फैलाव की आवश्यकता विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो पूर्णकालिक माध्यमिक शिक्षा हासिल नहीं कर सकते तथा आमने-समने बैठकर निर्देशों के लिए पूरक सुविधा/सुविधाओं में वृद्धि। यह प्रणाली विद्यालय के बाहर छात्रों की शिक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

संस्थागत सुधार एवं स्त्रोत संस्थाओं का सशक्तिकरण

केन्द्रीय सहायता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक राज्य में आवश्यक प्रशासनिक सुधार पूर्व-शर्त होगी। इन संस्थागत सुधारों में शामिल हैं–

- विद्यालय प्रशासन में सुधार-प्रबन्ध तथा जवाबदेहियों के विकन्द्रीकरण द्वारा विद्यालयों के प्रदर्शन में सुधार,
- शिक्षकों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षत, वेतन एवं कैरियर विकास की न्यायोचित नीति आत्मसात करना,
- शैक्षणिक प्रशासन में आधुनिकीकरण/ई-शासन एवं जिम्मेदारी बांटना/विकेन्द्रीकरण करना
- सभी स्तरों पर माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में आवश्यक व्यावसायिक एवं अकादमिक जानकारी का प्रावधान,
- कोषों के त्वरित प्रवाह एवं उनके अधिकतम उपयोग के लिए वित्तीय प्रक्रियाओं का सरलीकरण,
- विभिन्न स्तरों का स्त्रोत संस्थाओं का आवश्यक सशक्तीकरण, उदाहरण के लिए :–
  - राष्ट्रीय स्तर पर-राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (RIEs सहित), राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यालय (NUEPA) एवं राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयों शिक्षा संस्थान (NIOS)
  - राज्य स्तर पर-राजकीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (SCERT), राज्य के मुक्त विद्यालय, राजकीय शैक्षिक प्रबंधन और प्रशिक्षण संस्थान (State Institute of Educational Management and Training, SIEMAT) आदि एवं
  - विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग, विज्ञान/मानविकी शिक्षा क्षेत्र की प्रसिद्ध संस्थाएँ एवं केन्द्र प्रायोजित शिक्षकों की शिक्षा योजना, शिक्षक शिक्षा कॉलेज/शिक्षा में उन्नत अध्ययन की संस्थाएं।

पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी

नियोजन प्रक्रिया लागू करने तथा उसपर निगरानी रखने एवं सतत् विकास के लिए पंचायती राज एवं नगर निगम, समुदाय, शिक्षकों, अभिभावकों एवं अन्य हिस्सेदारों की माध्यमिक शिक्षा में विद्यालय प्रबंध समितियों एवं पालक-शिक्षक संघो जैसे व्यवस्थाओं के माध्यम से भागीदारी।

वित्तीय प्रबन्धन

सामान्य रूप से वित्तीय प्रबंधन का संबंध, किसी परियोजना के लिए खरीद, आवंटन और वित्तीय संसाधनों के नियंत्रण से है। गैर-लाभकारी सामाजिक कार्यक्रमों के तहत वित्तीय प्रबंधन के उद्देश्य निम्नलिखित है :

- कार्यक्रम के अंतर्गत निधियों की नियमित और पर्याप्त रूप में सुनिश्चित करना।
- अधिकतम और पर्याप्त रूप से निधियों का उपयोग करना जिससे कार्यक्रम अपने पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होते हैं।
- सभी नियोजित कार्यकलपों के लिए बजट और बजट कैलेंडर तैयार करना।
- परियोजना के लिए उपलब्ध निधियों/संसाधनों के दुरूपयोग से बचना।
- कार्यक्रम के कार्यान्वयन के दौरान निर्णयकर्त्ताओं को सुधारात्मक कदम उठाने में सक्षम करना।

RMSA वित्तीय प्रबंधन के तत्व

आरएमएसए कार्यक्रम के तहत वित्तीय प्रबंधन में निम्नलिखित मुख्य घटक शामिल हैं :

- **परियोजना के लिए बजटः** बजट तैयारी में विशिष्ट कार्यो और लक्ष्यों को चिन्हित करना और इन कार्यकलापों को वित्तीय शब्दावली में 'आरएमएसए के लिए बजट' के रूप में अभिव्यक्त करना शामिल हैं।
- **वित्तीय योजनाः** वित्तीय योजना में योजना निधि प्रवाह, प्रापण योजना, कार्मिक (स्टाफिंग), स्टाफ की क्षमता निर्माण, बजट कैलेंडर आदि तैयार करना सम्मिलित हैं।
- वित्तीय परिषद और निगरानी, वित्तीय प्रधान का यह दायित्व है कि वह निधियों के उपयोग की निगरानी करें और वह परियोजना के कार्यान्वयन के लिए निर्धारित नियमों और विनियमों सुनिश्चत अनुपालन का करे। नियंत्रण और निगरानी के लिए सार्विधिक लेखा-परीक्षा, आंतरिक लेखा-परीक्षा, प्रपण-समीक्षा, वित्तीय एमआईएस आदि को वित्तीय साधनों के रूप में प्रयोग किया जाए।

(स्त्रोत : मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार)

19.4 माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की समस्याएँ (Problems in the Universalisation of Secondary Education)

जहाँ तक एक ओर माध्यमिक शिक्षा का सर्वव्यापीकरण अनिवार्य है, वहीं इस ओर काम करने में भारत जैसे देश में कई समस्यों भी सामने आ रही हैं। आइये कुछ मुख्य समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया जाए–

(i) **मात्रात्मक प्रसार (Quantitative Expansion) की समस्या–** यह समस्या चुनौती के रूप में है जिसकी वजह है–

- प्रारंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण पश्चात् माध्यमिक छात्रों की संख्या में पूर्व की अपेक्षा सालों-साल वृद्धि होना।
- क्षेत्रवार, माध्यमिक विद्यालयों की असमान वितरण स्थिति।
- मूलभूत आवश्यकताओं, यथा-बिजली, पेयजल, शौचालय, अतिरिक्त वर्ग कक्ष, प्रयोगशाला, पुस्ताकालय आदि की कमी को दूर करना।
- वित्तीय उपलब्धता में दिक्कतें।

(ii) **समता आधारित शिक्षायी व्यवस्था उपलब्ध कराने की समस्या–** सबों को समता सिद्धान्त अनुरूप माध्यमिक शिक्षा की उपलब्धता एक कड़ी चुनौती पेश कर रही है। कुछ वर्ग विशेषकर– ● स्त्रियाँ ● अनुसूचित जाति/जनजाति ● पहली पीढ़ी के छात्र ● आर्थिक दृष्ट से पिछड़े वर्ग ● धार्मिक/भाषायी अल्पसंख्यक के वर्गीय असमानता की वजह से सामाजिक खाई बड़ी हो रही है। माध्यमिक शिक्षा के कल पर इस खाई को पाटना एक बड़ी समस्या है।

(iii) **गुणात्मक विकास संबंधी चुनौतियाँ–** आज की माध्यमिक शिक्षा जटिल पाठ्यक्रम में उलझी व सैद्धांतिक पक्षों पर जोर देने वाली शिक्षा व्यवस्था के समर्थन में खड़ी है । जबकि जरूरत है इनके व्यवहारिक उपयोगों पर काम करने की। ऐसा किस प्रकार से हो सकेगा कि हमारी शिक्षा जीवनोपयोगी हो, इस पर सोंचा जाना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा अन्तर्गत गुणवत्ता संधारण एक बड़ी चुनौती के रूप मे हमारे सामने हैं।

(iv) शिक्षा का निजीकरण एवं शिक्षा का व्यावसायिकरण ये दो ऐसे मुद्दे हैं जो माध्यमिक शिक्षा के लिए एक अन्य चुनौती हैं।

क्या, ये हमारे मददगार होंगे ?

इनका राष्ट्र निर्माण में योगदान होगा ?

यदि यह समय की जरूरत है और अभी तक हम इस बारे में कुछ नहीं सोंच पाए हैं, तो यह एक बड़ी समस्या हैं।

(v) माध्यमिक स्तर पर

– पाठ्यचर्या सुधार किया जाना (जरूरत अनुरूप अद्यतन करना)।

– शिक्षण शास्त्रीय बदलाव (नवाचारी बनाना)।

– परीक्षा सुधार (मूल्यांकन पर जो)।

इन सबों पर गहनता से विमर्श कर लागू करने की समस्या भी मौजूद हैं।

इन सब के अलावे भी माध्यमिक शिक्षा के कई ऐसे विचार योग्य मुद्दे हैं जो उसे 2020 तक के लक्ष्य प्राप्ति में अड़चन के रूप में मौजूद हैं–

(a) व्यवस्था का नियन्त्रण, निरीक्षण, अनुवीक्षण एवं समय-समय पर मूल्यांकन।

(b) वर्ग IX एवं X में चिन्ताजनक छात्र उपस्थिति ।

(c) अभिवंचित छात्र/छात्राओं को माध्यमिक शिक्षा पूर्ण कराना ।

(d) स्कूल की उपलब्धता एवं उचित दूरी का ख्याल ।

(e) उचित अनुपात में छात्र शिक्षक की उपलब्धता ।

(f) ट्यूशन लेने का प्रचलन बढ़ना। यहाँ तक कि निजी विद्यालयों के छात्रों द्वारा भी ट्यूशन पर अतिरिक्त खर्च करना ।

(g) निजी विद्यालयों की भागीदारी बढ़ने से बनी नई स्थिति पर विचार ।

19.5 माध्यमिक शिक्षा का मात्रात्मक प्रसार (Qunatitative Expansion of Secondary Education)

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत में माध्यमिक शिक्षा की संस्थाओं तथा पंजीकृत छात्रों की संख्या में असाधारण वृद्धि हुई। इसके साथ-ही-साथ माध्यमिक शिक्षा के व्यय में वृद्धि हुई। विगत वर्षो के शैक्षिक विकास के आँकड़ों का विश्लेषणात्मक सर्वेक्षण भी इस तथ्य को स्पष्ट करता है।

(1) **माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि –** सन् 1946-47 में भारत में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या केवल 3.659 थी। इसमें 3,073 बालकों के लिए तथा 586 बालिकाओं के लिए स्थान था। भारत में 1950-51 में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 7,146 हो गई। 1999-2000 में यह बढ़कर 1,16,820 हो गई। 2004 में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 1,01,777 तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 50,272 थी। दसवीं योजना के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में और भी अधिक वृद्धि का प्रयास किया जा रहा है। इस लिए नए विद्यालय खोलने, विद्यालयों की क्षमता का विस्तार करने, विद्यालयों में दो पाली की व्यवस्था करने, सरकारी सहायता के बिना प्राइवेट विद्यालयो को खोलने, मुक्त विद्यालयों को विस्तार तथा दूरस्थ शिक्षा-प्रणाली के विविधीकरण के कार्यक्रमों को अपनाने का प्रयास किया जा रहा है। किन्तु इस दिशा में किये जा रहे उपर्युक्त प्रयासों के बावजूद भी अनेक समस्यायें बराबर उदित होती रहती हैं। जहाँ तक संख्यात्मक विकास का प्रश्न है, छात्रो की संख्या के अनुपात में विद्यालय की संख्या में वृद्धि करना अत्यन्त दुष्कर, किन्तु महत्वपूर्ण कार्य हैं।

(2) **शिक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि–** पिछले पाँच दशकों में माध्यमिक शिक्षा के पंजीकृत छात्र-छात्राओं की संख्या में चमत्कारिक वृद्धि हुई। सन् 1949 में नौ, दस और ग्यारह कक्षाओं में कुल नामांकन 10.50 लाख था। सन् 1950-58 में 14 से 17 तक के वय-समूह में 10.80 लाख तक कुल जनसंख्या के 5.2 प्रतिशत 1955-56 में 18.60 लाख या 9.4 प्रतिशत, 1960-61 में 31.40 लाख अथवा 11.30 प्रतिशत छात्र माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और 1965-66 में 50.24 लाख या 17.8 प्रतिशत की बढ़ोतरी की आशा की गई थी। सन् 1970-71 में छात्रों की संख्या 63 लाख, यानि कि 19 प्रतिशत जिसमें से 29 प्रतिशत बालक तथा 9 प्रतिशत बालिकाएँ थीं। सन् 1980-81 में छात्रों की संख्या 95 लाख हो गई।

आगे के वर्षो में मात्रात्मक प्रसार की स्थिति को और जानने हेतु हमें कुछ आँकड़े पर गौर करना होगा।

प्रस्तुत आकड़ा भारत सरकार के मानव संसाधन विकास के Education Statistics at a Glance (2016) से लिया गया है।

वर्ष	मान्यता प्राप्त माध्यमिक संस्थान (ix–x)	मान्यता प्राप्त उच्च माध्यमिक संस्थान (xi–xii)	कुल माध्यमिक	माध्यमिक (ix–x) में नामांकित	माध्यमिक शिक्षक संख्या	GER (ix–x)		
						पु०	म०	कु०
2000–01	87,700	38,400	1,26,100	190 लाख	7,56,000	—	—	—
2005–06	1,06,000	53,600	1,59,600	250 लाख	10,32,000	57.6	46.2	52.2
2006–07	1,12,200	57,400	1,69,600	259 लाख	10,75,000	58.6	47.4	53.5
2007–08	1,13,800	59,200	1,73,000	282 लाख	09,52,000	62.6	53.2	58.2
2008–09	1,22,100	64,229	1,86,329	295 लाख	10,24,000	64.8	55.5	60.4
2009–10	1,22,200	71,700	1,93,900	307 लाख	11,45,000	66.7	58.7	62.9
2010–11	1,31,200	72,046	2,03,246	318 लाख	12,62,000	69.2	60.9	65.2

माध्यमिक/उच्च माध्यमिक स्तर पर प्रति 100 छात्र पर छात्राओं की स्थिति

वर्ष	माध्यमिक स्तर (IX-X)	उच्च माध्यमिक स्तर (XI-XII)
2000–01	63	62
2005–06	73	72
2006–07	73	74
2007–08	77	76
2008–09	79	77
2009–10	82	80
2010–11	82	79
2011–12	84	81

CABE के एक अनुमान के अनुसार–

वर्ष 2019–20 तक माध्यमिक नामांकित छात्र/छात्राओं की संख्या का अनुमान लगभग 7 करोड़ की होगी। इतना ही नहीं 2020 तक की अवधि में लगभग 4 लाख अतिरिक्त वर्ग कक्ष की जरूरत होगी एवं करीब 4 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की भी आवश्यकता होगी। इसी प्रकार वर्ष 2019–20 तक शिक्षा पर कुल अनुमानित व्यय 7550900 लाख रूपये यानि 75509 करोड़ रूपये अतिरिक्त व्यय की संभावना है।

शिक्षा पर लोक व्यय

वर्ष	शिक्षा पर कुल व्यय शिक्षा विभाग + अन्य विभाग	GDP%
1951–52	64.46 करोड़	0.64
1960–61	239.46 करोड़	1.48
1970–71	892.36 करोड़	2.11
1980–81	3884.2 करोड़	2.98
1990–91	19615.85 करोड़	3.84
2000–01	82486.48 करोड़	4.14
2005–06	113228.71 करोड़	3.34
2007–08	137383.99 करोड़	3.48
2008–09	189068.84 करोड़	3.56
2009–10	241256.02 करोड़	3.95
2010–11	293478.23 करोड़	4.05
2011–12	333930.38 करोड़	3.82
2012–13	408421.71 करोड़	4.10
2013–14	465142.80 करोड़	4.13

2009 से आगे RMSA द्वारा मात्रात्मक प्रयास एवं गुणात्मक संधारण पर वृहत् रूप से कार्य किये जा रहे हैं। माध्यमिक शिक्षा के प्रसार हेतु इनके प्रयास को इस आँकड़े से समझा जा सकता है–

(RMSA स्त्रोत)

वर्ष	कुल माध्यमिक विद्यालय	माध्यमिक विद्यालय की प्रकृति (%)			नामांकित शिक्षक संख्या	माध्यमिक शिक्षक संख्या	GER (%)			8वीं से 9वीं में रूपान्तरण (%)	10वीं उत्तीर्ण संख्या (%)	शैचालय (%)		पेयजल (%)
		छात्र	छात्र	कुल			छात्र	छात्र	कुल			छात्र	छात्र	
2012–13	2,18,857	43.5	17.3	35.06	346.4 लाख	12,46,999	68.6	65.98	67.35	92.67	79.58	79.64	92.75	97.37
2013–14	2,26,613	41.6	17.3	37.5	373.00 लाख	14,39,718	76.8	76.5	76.6	92	79.6	90.7	95.6	98.1
2014–15	2,33,517	42.77	16.68	40.55	383 लाख	14,34,028	78.13	78.94	78.51	91.58	81.36	93.63	96.53	98.56
2015–16	2,33,517	42.77	16.68	40.55	383 लाख									
						बिहार								
2012–13	5,644	79.6	4.4	10.79	24.3 लाख	48,383	46.07	45.96	46.01	92.54	71.81	67.42	70.92	98.62
2013–14	5,686	72	4.9	13.	26.6 लाख	52,771	57.7	63.0	60.1	95.5	75.0	77.7	80.1	96.9
2014–15	7,083	76.86	3.74	19.4	30 लाख	51,850	65.08	73.85	69.09	90.8	76.27	83.42	85.98	94.48
2015–16	7,261	75.83	1.38	22.79	34.2 लाख	51.853	72.42	85.43	78.37	84.64	74.39	87.56	94.98	98.95

19.5.1 मात्रात्मक विस्तार की समस्याएँ (Problems Regarding Quantitative Expansion)

माध्यमिक शिक्षा के संख्यात्मक विकास के कारण निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न हुई, जिन पर विचार करना यहाँ आवश्यक हैं–

(i) **विद्यालयों की स्थापना में असंतुलन–** माध्यमिक शिक्षा के असाधारण विस्तार के कारण माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना में असंतुलन का दोष उत्पन्न हो गया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद प्रत्येक गाँव तथा कस्बों में माध्यमिक विद्यालय निजी संस्थाओं द्वारा स्थापित किये गये। इन विद्यालयों की स्थापना शैक्षिक तथा स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं की गयी वरन् व्यक्तिगत तथा राजनीतिक कारणों से ही इनकी उत्पत्ति हुई। सरकार पर दबाव डालकर राजनीतिक नेताओं ने अपने-अपने क्षेत्रों में माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की, जिससे स्थिति राजनीतिक दृष्टि से दृढ़ बनी रहे। बहुत से ऐसे माध्यमिक विद्यालय स्थापित किये गये जहाँ पर भवन, साज-सज्जा, शिक्षकों तथा अन्य शैक्षिक सुविधाओं का नितान्त अभाव रहा। कुछ राजकीय माध्यमिक विद्यालय ऐसे स्थापित किये गये, जहाँ पर शिक्षकों की संख्या छात्रों की संख्या से अधिक रही। किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रो में एक ही स्थान पर अनेक विद्यालयों की स्थापना की गई और किन्हीं क्षेत्रों को माध्यमिक विद्यालयों से बिल्कुल वंचित रखा गया। कुछ विद्यालयों का आकार बिल्कुल छोटा था, जहाँ पर शैक्षिक सुविधाओं का न्यूनतम उपभोग भी नहीं हो सकता था। इसके विपरीत कुछ विद्यालयों का आकार इतना बड़ा था, जहाँ पर शैक्षिक सुविधाओं का समान वितरण कठिन हो गया। इस प्रकार विद्यालयों का आकार तथा उनकी स्थापना में असंतुलन तथा अनियंत्रण का दोष दिखाई देता हैं।

इसके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा का विस्तार शहर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हो पाया। माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना में शहरी तथा गाँवों की जनसख्याँ अनुपात की अवहेलना की गयी। माध्यमिक शिक्षा के विस्तार में एक बात और दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद से अब तक अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना निजी प्रयासों द्वारा हुई। किन्तु बाद में निजी संस्थाओं की संख्या में कमी होने लगी। इसके मुख्य कारण थे–

- माध्यमिक शिक्षा की अनुपयोगिता,
- व्यक्तिगत संस्थाओं की दूषित वातावरण,
- जनता की निजी संस्थाओं से अनास्था, तथा
- राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति आदि।

अब स्थानीय तथा राजकीय विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हो रही है, किन्तु यह प्रवृत्ति भी देश के लिए हितकर नहीं है। वास्तव में प्रजातंत्र में प्राथमिक तथा प्रारम्भिक शिक्षा का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर होना चाहिए और माध्यमिक शिक्षा जनता की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं पर निर्भर हो। इस स्तर पर निजी प्रयास का विशेष महत्त्व है। सच तो यह है कि विद्यालयों की स्थापना में तीन वर्गों अर्थात् राजकीय, निजी तथा स्थानीय का सुनिश्चित अनुपात होना चाहिए अन्यथा स्तर तथा संगठन दोनों में अव्यवस्था तथा विरोधा उत्पन्न हो सकता है।

समाधान के उपाय

(अ) माध्यमिक विद्यालयों के अनियंत्रित, असंयत तथा अनियमित विस्तार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना जनसंख्या के अनुरूप हो।

(ब) माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना शैक्षिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। इनके स्थापना में व्यक्तिगत स्वार्थ, स्थानीयता तथा राजनीतिक दबावों पर ध्यान न दिया जाय।

(स) मान्यता के नियमों को कठोर बनाया जाय और उनका अनुपालन भी दृढ़ता पूर्वक किया जाय।

(ii) **माँग और पूर्ति में असंतुलन –** माध्यमिक शिक्षा की संख्यात्मक प्रगति हमारे देश में संतोषजनक नहीं रही हैं। यदि देश की व्यावसायिक स्थिति पर ध्यान दिया जाय, तो उपर्युक्त आंकड़े माँग की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की संख्या प्राप्त स्थानों से अधिक है। समस्त छात्रों में से केवल 13 प्रतिशत छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं और शेष इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे अपने को निजी व्यवसाय में नहीं लगा पाते, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा सामान्य प्रकृति की होती है, जिसका उपयोग वे व्यावसायिक जगत् में नहीं कर पाते। यहाँ पर यह भी बता देना आवश्यक है कि हमारे देश में माध्यमिक स्तर पर केवल 12 प्रतिशत ही छात्र व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं, जबकि अन्य प्रगतिशील देशों में यह प्रतिशत 40 से 70 तक का है।

(iii) **छात्र-संख्या के अनुपात में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई–** हमारे देश में छात्रों की संख्या के अनुपात में माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई है। सन् 1950 से 2017 तक विद्यालयों की संख्या में लगभग तीस गुना वृद्धि हुई है, जबकि इसी दौरान छात्रों की संख्या में लगभग चालीस गुना वृद्धि हुई हैं। इस प्रकार छात्रो की संख्या देखते हुए विद्यालयों की संख्या आपर्याप्त है।

(iv) **निजी विद्यालयों की संख्या में कमी–** हमारे देश में धीरे-धीरे निजी विद्यालयो की संख्या में कमी हो रही है और स्थानीय तथा राजकीय विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे-जीवन में शिक्षा की अनुपयोगिता, माध्यमिक व्यक्तिगत संस्थाओं का दूषित वातावरण, जनता की निजी विद्यालयों में अनास्था तथा अविश्वास तथा राष्ट्रीयकरण की प्रवृत्ति इत्यादि। माध्यमिक स्तर पर निजी प्रयासों का विशेष महत्त्व है। प्रत्येक जनतांत्रिक देश में प्राथमिक तथा प्रारम्भिक शिक्षा राजकीय प्रयासों पर निर्भर करती है और माध्यमिक शिक्षा जनता की आवश्यकताओं तथा क्षमताओं पर। इसके अतिरिक्त शिक्षा के विकास में राजकीय, स्थानीय तथा निजी वर्गो का निश्चित अनुपात होता है, जिससे स्तर तथा व्यवस्था में किसी प्रकार की विभिन्नता अथवा विरोध नहीं उत्पन्न होता, किन्तु हमारे देश में राजकीय प्रयासों की अधिकता, निजी प्रयासों की कुण्ठित कर रही है, जिससे व्यवस्था तथा संगठन में भी विरोध उत्पन्न हो रहा है।

(v) **माध्यमिक शिक्षा का विस्तार असंतोषजनक-** हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा का विस्तार प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा असंतोषजनक रहा हैं। इसके अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षा का विस्तार ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हुआ है। ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा का उपयोग जनता अधिक नहीं कर पायी है, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा की पाठ्य-वस्तु अधिकांशतः सामान्य नहीं है।

(vi) **शिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी–** माध्यमिक शिक्षा में प्रवेशार्थियों की संख्या में वृद्धि होने के कारण समस्त छात्रों में लगभग 12 प्रतिशत ही उच्च शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं और शेष इधर-उधर भटकते रहते हैं। वास्तविकता तो यह है कि देश में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र-छात्राओं के संख्या व्यावसायिक आवश्यकताओं तथा सेवा संस्थानों से कहीं अधिक है। सामान्य शिक्षा-प्राप्त करने के कारण ये व्यावसायिक जगत के लिए अयोग्य तथा अनुपयुक्त स्त्रोतों में असंतुलन के कारण माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की बेरोजगारी बढ़ी।

समाधान के उपाय

(अ) माध्यमिक शिक्षक व्यवसायीकरण किया जाय अर्थात् माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायोन्मुख बनाया जाय,

(ब) माध्यमिक शिक्षा तथा व्यावसासयिक स्त्रोतों में संतुलन स्थापित किया जाय,

(स) माध्यमिक स्तर पर विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम की योजना को अपनाया जाय।

(vii) **व्यक्तिगत प्रबन्ध का प्रशासन–** माध्यमिक विद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि के कारण इनके प्रबन्ध तथा प्रशासन की भी समस्या उत्पन्न हुई है। माध्यमिक विद्यालयों का प्रबन्ध कहीं सरकार के द्वारा तथा कहीं-कहीं पर स्थानीय संस्थाओं के द्वारा और अधिकांशतः व्यक्तिगत प्रबन्ध समितियों द्वारा होता है। खेद का विषय है कि हमारे यहाँ व्यक्तिगत संस्थाएँ राजनीतिक, व्यक्तिगत जता जातीयता की संकीर्ण विचार धाराओं के आधार पर चलायी जा रही है। माध्यमिक विद्यालयों के प्रबन्धक निरक्षर सेठ-साहूकार हो रहे हैं जो खुलेआम शिक्षा के नाम पर व्यापार कर रहे हैं। ऐसे स्कूलों का आन्तरिक वातावरण भी विषाक्तपूर्ण है। **इस सम्बन्ध में शिक्षा आयोग (1952) ने अपने विचार** स्पष्ट किये हैं–

''दुर्भाग्यवंश इस शिथिलता के कारण अनेक विद्यालय शिक्षा-संस्थाओं के रूप में न चलाये जाकर व्यावसायिक उद्योगों के रूप में चलाये जाते हैं। अनेक दशाओं में व्यक्ति अपनी निजी हैसियत में याव्यक्तियों के समूह बिना उचित भवन या उपकरण के छात्रों को भर्ती करके विद्यालयों को चलाने लगते हैं, जिससे वे ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं कि शिक्षा-विभागों के पास विद्यालयों के लिए उनको मान्यता देने के अतिरिक्त और कोई अन्य विकल्प ही नहीं रहता।''

समाधान के उपाय-प्रबन्ध समितियों का प्रजातंत्रीकरण–उपर्युक्त दोषो को दूर करने का एकमात्र उपाय सरकार को माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अपने नियन्त्रण को और अधिक बढ़ाना चाहिए। यदि वर्तमान समय में शिक्षा का राष्ट्रीयकरण सम्भव नहीं है, तो कम-से-कम प्रबन्ध समितियों का प्रजातंत्रीकरण करके उनको सुधारा जा सकता है। प्रबन्ध समितियों में अध्यापकों को भी प्रतनिधित्व होना चाहिए और शिक्षा-विभाग के भी अधिकारी मनोनीत होने चाहिए। राज्य सरकार को अनुदान तथा मान्यता के नियमो का अनुपालन कठोरता पूर्वक करना चाहिए। शिक्षकों को उचित तथा नियत समय पर वेतन देने की व्यवस्था राजकीय स्त्रोतों से होनी चाहिए। आय-व्यय के निरीक्षण हेतु लेखाधिकारियो की नियुक्ति सरकार द्वारा होनी चाहिए और साथ ही विद्यालयों के शैक्षिक स्तर को समुन्नत बनाने के लिए विशेषज्ञों की राय भी उपलब्ध होनी चाहिए।

(viii) **अपव्यय तथा अवरोधन**– माध्यमिक शिक्षा के संख्यात्मक विकास के कारण प्राथमिक शिक्षा की भाँति माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या उत्पन्न हुई। प्रति वर्ष माध्यमिक स्तर पर अनेक परीक्षार्थी अनुत्तीर्ण होते हैं। इन अनुत्तीर्ण छात्रो की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इससे देश के शैक्षिक तथा मानवीय साधनों का अव्यय हो रहा है।

समाधान के उपाय

(अ) माध्यमिक विद्यालयों की आन्तरिक व्यवस्था को नियमित तथा प्रभावकारी बनाया जाय,

(आ) विद्यालयों में शिक्षको की नियुक्ति विशुद्ध योग्यता के आधार पर होनी चाहिए,

(इ) रोचक तथा प्रभावकारी शिक्षण-विधियों का प्रयोग होना चाहिए।

(ई) शिक्षा के आधुनिकतम उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(उ) पाठ्यक्रम को उद्योगोन्मुख बनाया जाय,

(ऊ) परीक्षा-प्रणाली में सुधार लाया जाय,

(अ) विद्यार्थियों को शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। जैसे-शुल्क मुक्ति तथा छात्रवृत्ति आदि।

(ix) **शिक्षा का गिरता हुआ स्तर–** माध्यमिक शिक्षा के अनियंत्रित विस्तार का बहुत बुरा प्रभाव इसके शैक्षिक स्तर पर पड़ा है। शैक्षिक स्तर में गिरावट लाने वाले कारक निम्नलिखित हैं–

(अ) शिक्षकों का अल्प वेतन या समय पर उनको वेतन न मिलना,

(ब) अप्रशिक्षित अध्यापकों का होना,

(स) कक्षा में छात्रों की भीड़,

(द) पाठ्शाला में आवश्यक सामग्री तथा साज-सज्जा का अभाव,

(य) विषय-वस्तु की वृद्धि के साथ शिक्षकों की योग्यता में विकास न होना,

(र) पाठ्यपुस्तकों की अनुपयुक्तता,

(ल) पुरानी तथा परम्पारागत शिक्षण-विधियों का प्रयोग

(व) विद्यालयों का दूषित वातावरण

(श) प्रादेशिक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना।

समाधान के उपाय

माध्यमिक शिक्षा के स्तर को समुन्नत बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं–

(अ) कुशल तथा योग्य अध्यापकों की नियुक्ति,

(ब) शिक्षको को अपनी योग्यता बढ़ाने का अवसर दिया जाय,

(स) उपयुक्त पाठ्यपुस्तकों की रचना की जाय,

(द) प्रभावकारी अध्यापन-विधियों का प्रयोग किया जाय,

(य) माध्यमिक शिक्षा को उद्देश्यपूर्ण बनाया जाय। इनका जीवन से सीधा सम्बन्ध हो, तभी छात्रों के अध्ययन में गम्भीरता उत्पन्न हो सकती है,

(र) माध्यमिक शिक्षकों की सेवा-दशाओं में सुधार किया जाय,

(ल) राष्ट्रीय बजट में माध्यमिक शिक्षा पर व्यय होने वाली धनराशि में वृद्धि की जाय।

(x) **कोठारी आयोग तथा प्रसार की समस्याएँ–**कोठारी आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तुत की हैं–

- आगामी 20 वर्षो में माध्यमिक शिक्षा का विस्तार निम्नलिखित ढंग से होना चाहिए–

  (क) विद्यालय उचित स्थान पर खोले जाएँ,

  (ख) उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर छात्रों का प्रवेश किया जाय,

  (ग) योग्य छात्रों का चयन किया जाय,
- जिला-स्तर पर माध्यमिक शिक्षा की एक योजना तैयार करके लागू की जाय। इससे वर्तमान संस्थाओं में अपेक्षित शिक्षण-स्तर को बनाये रखने का प्रयास किया जायेगा,
- माध्यमिक विद्यालयों में प्रवेश के लिये चयनात्मक प्रणाली का अनुसरण किया जाय। इसमें विद्यालय के रेकार्ड को भी ध्यान में रखा जाय,
- माध्यमिक विद्यालयों में से 1975-76 तक 20 प्रतिशत व्यावसायिक प्रशिक्षण देने वाली संस्थाएँ हो जाएँ तथा 1984-85 तक इनमें 50 प्रतिशत वृद्धि हो जाए,
- कक्षा 7-8 से ही अंशकालीन तथा पूर्णकालीन व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय,
- बालिकाओं की शिक्षा का प्रसार हो। यह अनुपात निम्न स्तर पर 1 : 2 तथा माध्यमिक स्तर पर 1 : 3 हो जाए। बालिकाओं के लिए अलग विद्यालय, छात्रावास तथा छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जाय।

19.6 माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में समता मूलक परिप्रेक्ष्य (Equity Perspective in Universalisation of Secondary Education)

19.6.1 शिक्षा में समानता के अर्थ (Meaning of Equality in Education) :

समानता का अर्थ है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास के समान अवसर मिलने चाहिए। अवसरों के अभाव में किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा अथवा योग्यता अविकसित न रह जाए।

समानता का अर्थ यह नही है कि सभी लोगों के साथ बिल्कुल एक जैसा बर्ताव किए जाय। इस सन्दर्भ में यह लिखना न्याय संगत है कि व्यक्तियों में विभिन्न योग्यताएं होती हैं। एक जैसी सुविधाओं से प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी नहीं की जा सकती हैं। इस बात को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरणों को लेते हैं। शिक्षा में 'समान अवसरों' का अर्थ यह है कि सभी बच्चों को स्कूल जाने तथा शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले, यह नहीं है कि किसी की उपलब्धि देखे बिना सभी को सभी कक्षाओं में पास किया जाए या सभी को एक जैसे गेड या अंक दिए जाएँ। इसका यह भी अर्थ नहीं कि प्रत्येक छात्र को वाणिज्य तथा विज्ञान विषय कक्षा 11 में दिए जाएं। 'समान अवसरों' का वास्तविक अर्थ यह है कि सभी को पर्याप्त अवसर मिलें जिससे उनका अधिकतम विकास हो। यदि कुछ क्षेत्रों में शिक्षा की सुविधाएं न हों तो सुविधाएं उपलब्ध करायी जाएं। यदि कुछ छात्र पढ़ाई आदि में कमजोर हैं तो उसके लिए उचित व्यवस्था की जाए।

19.6.2 समान अवसर का अर्थ समान शिक्षा नहीं है (Equality of Opportunity does not Mean Same Education) :

व्यक्तिक भिन्नता सृष्टि का व्यापक नियम है। दो व्यक्ति, चाहे वे जुड़वाँ भाई या बहन ही क्यों न हों, बिल्कुल समान नहीं होते, उनमें भी कुछ-न-कुछ अन्तर रहता ही है। भौतिक शरीर की बनावट के अतिरिक्त उनकी मानसिक शक्ति, उनके विचार, उनकी रूचि, ढंग, अभिवृत्ति, विश्वास आदि के कारण उनमें अंतर होना स्वाभाविक है। अत: सभी को एक ही प्रकार की शिक्षा देने और समान अवसर प्रदान करने से यह आवश्यक नहीं है कि सबका विकास एक समान हो। अवश्य ही कोई तो उस अवसर का लाभ उठाकर उस शिक्षा से लाभान्वित होगा और कोई सर्वथा विफल होगा। समान अवसर का केवल यही तात्पर्य है कि धनी-गरीब दोनों को एक प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलेगा और अर्थिक कठिनाई उसमें बाधक न होगी। उसके लिए अन्य प्रकार की भौतिक बाधाएँ भी दूर कर देनी चाहिए। जाति-भेद, रंग भेद, धार्मिक विश्वास, लिंग, भेद इत्यादि किसी प्रकार का अवरोध नहीं होना चाहिए, जिससे प्रत्येक युवक-युवती को अपनी रूचित संस्था एवं पाठ्य विषय चुनने को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए।

19.6.3 समान अवसर का अर्थ समान शिक्षा नहीं है (Equality of Opportunity does not Mean Same Education) :

इसकी कई वजह हैं। प्रमुख वजह इस तरह से है–

- शैक्षिक सुविधा का अभाव
  - नजदीक-दूरी का प्रभाव
  - ग्रामीण-शहरी परिवेश का प्रभाव
  - महँगी-सस्ती व मुफ्त शिक्षा का प्रभाव

- गरीबी
- शिक्षण संस्थाओं के स्तर में अन्तर
  - सम्पन्न संस्था बनाम साधन विहीन
  - योग्य शिक्षक बनाम काम चलाऊ शिक्षक
- बालक-बालिकाओं में भेद किया जाना।
- वर्गीय असमानता।

19.6.4 शिक्षा में समानता संबंधी संस्तुतियाँ (Recmmendation on Equality in Education) :

(a) गरीबों हेतु निःशुल्क माध्यमिक शिक्षा

(b) छात्राओं को विशेष प्रोत्साहन तथा छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना।

(c) पिछड़े/अभिवचितों हेतु विशेष ध्यान व मॉनिटरिंग किया जाना।

(d) शैक्षिक संस्थानों में छात्र नामांकन, शिक्षक नियोजन आदि में संवैधानिक व्यवस्था का ख्याल रखना।

(e) समान शिक्षा प्रणाली लागू किये जाने की पहल ताकि सभी स्तर के बच्चों को उचित शिक्षा प्रदान किया जा सके।

19.7 माध्यमिक शिक्षा में गुणात्मक संघारण की समस्या (Problems of Quality Consolidatin in Secondary Education)

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा का विस्तार बड़ी ही द्रुत गति से हुआ, जिसे फलस्वरूप इसमें अनेक दोष आ गए। माध्यमिक शिक्षा पूर्ववत् संपूर्ण शिक्षा की एक निर्बल कड़ी ही बनी रही। यद्यपि अनेक आयोग तथा समितियाँ इस शिक्षा स्तर की जाँच करने के लिये नियुक्त की गयीं किन्तु फिर भी माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक समस्याओं में भी किसी प्रकार की कमी न आ सकी। बल्कि यह कहा जाय की ज्यों-ज्यों इलाज होता गया, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता गया, तो असंगत न होगा। माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक विकास सम्बन्धाी अनेक समस्याएँ हैं, जिनका निदान और उपचार आवश्यक हैं।

(1) उद्देश्य की समस्या– माध्यमिक शिक्षा की सबसे प्रमुख समस्या इसकी उद्देश्यहीनता ही हैं। माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य के विषय में हम अब भी अंधकार में भटक रहे हैं। न तो शिक्षाविदों के ही मस्तिष्क में और न जन-मानस में ही इस शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार उपलब्ध हैं। परतंत्रता के युग में माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य या तो विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त कराना अथवा क्लर्क बना देना है। खेद का विषय है कि अधिकांश विद्यार्थी अपने शैक्षिक प्रयासों के अन्तिम लक्ष्य के विषय में नितान्त अनभिज्ञ हैं। वे केवल घर से शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठशालाओं में प्रवेश लेते हैं, किन्तु अपने भावी जीवन में क्या करेंगे, किधर जायेंगे-इन सब समस्याओं को जरा भी समझ नहीं पाते। जो विद्यार्थी जीवन में जहाँ पर भी पहुँच जाते हैं, उनको अपना गन्तव्य स्थान समझकर उसी से संतोष कर लेते हैं।

समाधान-निश्चित उद्देश्य (Solution-Definite Aims)

माध्यकि शिक्षा की उपयोगी तथा वास्तविक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसके विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण कर लिया जाय और फिर उसी दिशा में ठोस कदम उठाये जाएँ। वास्तव में माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालयी शिक्षा की तैयारी न होकर स्वतः में पूर्ण इकाई होनी चाहिए। माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य जीवन

की तैयारी होना चाहिए न कि विश्वविद्यालय के लिए तैयारी। माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित होने चाहिए -

(1) माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक विकास, नेतृत्व की भावना का विकास होना चाहिए। **सार्जेण्ट योजना** में कहा गया है, ''एक प्रकार से हाई स्कूल, राष्ट्र के शिक्षा पद्धति की रीढ़ हैं। अत:, नेताओं तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिए विशेषज्ञों को तैयार करने की शिक्षा के लिए देश को इन्हीं स्कूलों की ओर देखना चाहिए।''

(2) व्यावसायिक कार्य कुशलता,

(3) उत्तम नागरिकता के गुणों का विकास,

(4) चरित्र निर्माण।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission) ने माध्यमिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये है–

(1) लोकतंत्रात्मक नागरिकता का विकास

(2) व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि,

(3) व्यक्तित्व का विकास।

आज जब प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य शिक्षा बन गई है और ऐसे में हम 14 से 18 आयु वर्ग के बच्चे में सोचना शुरू करें कि–

— क्या, उन्हें बुनियादी पढ़ना-लिखना शत प्रतिशत नहीं आना चाहिए ?

— क्या, इन सारे युवाओं (14–18 वर्ष) को अपने दैनिक व्यवहार में शामिल माप-तौल, खरीद-बिक्री, बजट अनुरूप निर्णय लेना, घड़ी देखना, घंटा/मिनट/सेकेण्ड के हिसाब करना आदि नहीं आना चाहिए ? (उदाहरण स्वरूप)

— क्या ऐसे युवा समूह को आज के अनुरूप मोबाइल इस्तेमाल, इण्टरनेट को उपयोग करना, बैंकिंग लेन-देन आदि की जानकारी नहीं रखनी चाहिए ?

— देश का नक्शा, नक्शे में जगह का पता लगा लेने, जैसी योग्यता भी इनमें नहीं होनी चाहिए ?

कुल मिलाकर यह कि ऐसी शिक्षा किस काम की जो हमें व्यवहारिक शिक्षा या जीवनोपयोगी शिक्षा देने में ही असमर्थ हो। हम स्कूल खोलें एवं 10 साल तक उसी औपचारिक संस्था में पढ़कर भी जीवन जीने लायक ज्ञान व कौशल अर्जित न कर पायें, तो ऐसी शिक्षा गुणात्मक नहीं कही जा सकती हैं।

अभी हाल ही में असर (ASER) ने 14–18 वर्ष के ऐसे ही बच्चों पर पूरे देश में एक सर्वेक्षण किया है जिसकी रिपोर्ट 16 जनवरी 2018 को 'वियोण्ड बेसिक्स' (Beyond Basics—ASER-2017) नाम से प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत है बिहार के सर्वेक्षण की रिपोर्ट जिसे देखकर हम माध्यमिक शिक्षा के गुणवत्ता की स्थिति का सहज अनुमान लगा सकते हैं।

असर 2017 : बियॉन्ड बेसिक्स सर्वेक्षा के मुख्य निष्कर्ष (सैम्पल-बिहार का मुजफ्फरपुर जिला)

गतिविधि : (नामांकन)

- 14–18 आयु वर्ग के 89.7% युवा स्कूल या कॉलेज में नामांकित हैं। यहाँ लड़कों (89.9%) और लड़कियों (89.6%) के नामांकन का अनुपात बराबर हैं।
- 17–18 आयु वर्ग की युवाओं में लड़कियों (85%) का नामाकंन लड़कों (79.6%) से अधिक हैं।

- 14–18 आयु वर्ग में 5.8% युवा वोकेशनल प्रशिक्षण या अन्य कोर्स कर रहे हैं और 17–18 आयु वर्ग में 9.1% युवा वोकेशनल प्रशिक्षण या अन्य कोर्स कर रहे हैं।

क्षमता : (बुनियादी पढ़ना, गणित करना एवं अंग्रेजी पढ़ना)

- 14–18 आयु वर्ग के 77.8% युवा कक्षा 2 स्तर का पाठ पढ़ पाते हैं। 80.9% लड़के और 75.1% लड़कियाँ कक्षा 2 स्तर का पाठ पढ़ पाते हैं।
- 55.9% युवा ही अँग्रेजी के वाक्य पढ़ पाते हैं। 62.3% लड़के और 50.4% लड़कियाँ अँग्रेजी के वाक्य पढ़ पाते हैं।

दैनिक गतिविधियां :

- 82.5% युवा रूपयों की सही गिनती कर पाए
- 66.3% युवा वजन (किलोग्राम में) जोड़कर बता पाए
- 44.2% युवा वस्तु पर दी गई छूट के सवाल को हल कर पाए

वित्तीय गणना :

- 68.3% युवा दुकान से खरीददारी के बारे में सही निर्णय ले पाए
- 44.2% युवा वस्तु पर दी गई छूट के सवाल को हल कर पाए

जागरूकता और आकांक्षाए :

- 14–18 आयु वर्ग के 84.2% युवाओं ने पिछले एक सप्ताह कें मोबाइल फोन का इस्तेमाल किया था।
- 26.3% युवाओं ने इन्टरनेट और 20.4% युवाओं ने कम्प्यूटर का उपयोग पिछले एक सप्ताह में किया था।
- 80.3% युवाओं के पास स्वयं का बैंक खाता हैं।
- 5.4% युवाओं ने कभी भी इन्टरनेट बैंकिंग के माध्यम से लेन-देन किया है।

नक्शा एवं सामान्य जानकारी :

- 82% युवा भारत के नक्शे को पहचान पाए और 72.8% युवा देश की राजधानी का नाम बता पाये
- 88.3% युवा अपने राज्य का नाम बता पाए और 17% युवा भारत के नक्शे में बिहार को पहचान पाए हैं।

Note : स्त्रोत-प्रथम, पटना एवं अ.शि. महा०, तुरकी (मुजफ्फरपुर) से प्राप्त ASER-2017 रिर्पोट जिसमें मुजफ्फरपुर जिला के 60 सैंपल गाँवों में यह सर्वेक्षण किया गया, जिसमें से 962 घरों का सर्वेक्षण किया गया है। असर-2017 (बिहार सैम्पल) के सर्वेक्षण में 1158 युवा की जानकारी ली गई हैं।

गुणवत्ता संघारण को लेकर प्रस्तुत रिपोर्ट यही प्रदर्शित करती है कि हम मौलिक ज्ञान, प्रयोगी ज्ञान, व्यवहार ज्ञान से काफी दूर हो चुके हैं। अगर हमारे माध्यमिक शिक्षा की यही स्थिति आगे भी बनी रही तो हम किस तरह से युवा जनसंख्या वाले देश के रूप में 'डेमोग्राफिक डिविडेण्ड' लेने में सफल होंगे ?

गुणवत्ता संधारण की यह स्थिति आँख खोलने वाली स्थिति है। कारणों पर विमर्श करने की स्थिति है। यदि हम गौर करेंगे तो इनके प्रमुख कारणों की सूची कुछ इस प्रकार से है–

– प्रारंभिक शिक्षा की गुणवत्ता का खराब होना।

– माध्यमिक पाठ्यचर्या का बोझिल होना।

- व्यवसायिक शिक्षा का अभाव दिखना।
- शिक्षकों की जवाबदेही का सुनिश्चित नहीं होना।

कारण जो भी हो पर माध्यमिक शिक्षा के गुणात्मक ह्रास का अर्थ होगा राष्ट्र विकास का ह्रास। अत: माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में गुणवत्ता से कोई समझौता नहीं हो। मात्रात्मक प्रसार व गुणात्मक संघारण दोनों पक्षों पर विशेष ध्यान देने होंगे।

गुणात्मक संधारण में अन्य प्रबल समस्याएँ सामने आती हैं, जो निम्न हैं–:

(1) पाठ्यचर्यात्मक समस्या (Curricular Problems)

(2) मूल्यांकन समस्या (Evaluation Problems)

(3) निजीकरण एवं व्यवसायिकरण की समस्या (Problems of Privatisation and Vocationalisation)

आगे उक्त समस्याओं की हम विस्तार पूर्वक चर्चा करेंगे।

19.8 माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यचर्या एवं मूल्यांकन समस्या एवं इनका समाधान (Curricular and Evaluation Problems and its Solution in Secondary Education) :

(1) पाठ्यचर्या की समस्या

माध्यमिक शिक्षा की एक गम्भीर समस्या पाठ्यक्रम की अनुपयुक्ता की है। हमारे माध्यमिक शिक्षा आयोग ने समय की गति के साथ पाठ्यक्रम में किसी प्रकार का परिवर्तन तथा संशोधन नहीं किया है। पाठ्यक्रम का वास्तविक जीवन तथा बालक के वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं हैं।

दूसरी बात यह है कि हमारा पाठ्यक्रम एकमार्गीय है, जिसके कारण छात्रों को अपनी रूचि के विषयों को चयन करने का अवसर नहीं मिलता। नतीजा यह होता है कि पाठ्यक्रम व्यवहारिक तथा अवास्तविक होता जा रहा है। पाठ्यक्रम की अनुपयुक्तता के कारण हमारे देश के मानव-शक्ति का बृहत् क्षय हो रहा है। **'माध्यमिक शिक्षा आयोग'** ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कहा, ''हमारे विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा जीवन से पूर्णतया पृथक् है। पाठ्यक्रम का निर्माण प्रारम्भिक विधियों से किया जाता है और बालक का उस संसार से कोई भी सम्बन्ध नहीं रह जाता, जिसमें कि वह रह रहा है।''

आयोग ने इसके आगे माध्यमिक पाठ्यक्रम के निम्नलिखित दोषों की ओर संकेत किया है–

(1) माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम एकांगी तथा संकीर्ण है।

(2) इसमें पुस्तकीय ज्ञान पर अत्यधिक बल दिया जाता है और बालक के सर्वागीण विकास की अवहेलना की जाती है।

(3) वर्तमान पाठ्यक्रम परीक्षा के बोझ से दबा हुआ है। पाठ्यक्रम की रचना परीक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए की गयी है। पाठ्यक्रम की रचना में शिक्षा के अन्य पहलुओं की उपेक्षा की गयी है।

(4) पाठ्यक्रम व्यवहारिक तथा जीवनोपयोगी नहीं है। वह बालकों में व्यवहारिक ज्ञान की विकास नहीं करता।

(5) पाठ्यक्रम बालकों की विभिन्न शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करता।

(6) पाठृयक्रम में औद्योगिक तथा व्यावसायिक विषयों का अभाव है। इसमे केवल सैद्धान्तिक तथा साहित्यिक विषयों पर जोर दिया गया है।

(7) पाठ्यक्रम में वैज्ञानिकता का अभाव है। पाठ्यक्रम असंगत तथा असम्बद्ध है। इसमें सम्मिलित विषयों के पीछे उद्देश्यों की अस्पष्टता हैं।

समाधान-विभिन्नीकृत पाठ्यक्रम (Solution–Diversified Curriculum)

पाठ्यक्रम के विविध दोषों को दूर करने के लिए एक यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना पड़ेगा। पाठ्यक्रम को रूचिकर, बहुमुखी तथा जीवन से सम्बन्धित करना पड़ेगा। इसमें अनेक उपयोगी उद्यमों, व्यवसायों, कृषि-सम्बन्धी विषयों तथा तकनीकी विषयों का समावेश करना चाहिए। विद्यार्थियों को माध्यमिक स्तर पर विषयों का निर्वाचन करने में विशेषज्ञों की राय या परामर्श मिलनी चाहिए। इसी बात पर बल देते हुए 'माध्यमिक शिक्षा आयोग' ने पाठ्यक्रम की विविधता (Diversified Curriculum) पर प्रकाश डालते हुए निम्नांकित सुझाव प्रदान किये हैं–

(1) पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसमें छात्रों की विभिन्न योग्यताआं तथा क्षमताओं का विकास किया जा सके,

(2) पाठ्यक्रम में प्रत्यास्थता (Elasticity) का गुण होना चाहिए, जिससे कि उसे छात्रों की आवश्यकताओं तथा रूचियों के अनुरूप बनाया जा सके,

(3) पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन से अन्तरंग संबंध होना चाहिए,

(4) पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिससे छात्रों को न केवल कार्य करने अपितु अवकाश का सदुपयोग करने के लिए शिक्षित किया जा सके,

(5) पाठ्यक्रम में ऐसे विषय नहीं होने चाहिए, जिनका एक-दूसरे से कोई संबंध न हो, अपितु पाठ्यक्रम के सभी विषयो में अन्तर्सम्बंध होना आवश्यक है। **मुदालियर आयोग** ने बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम के ऊपर बल दिया है। इसके पहले **आचार्य नरेन्द्रदेव समिति** तथा **ताराचन्द समिति** ने भी इसकी आवश्यकता की ओर संकेत किया है। आयोग ने बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम की अधोलिखित विशेषताएँ बतलायी है।

(1) **मानसिक तथा शारीरिक विभिन्नता**–आयोग के अनुसार प्रत्येक बालक की शारीरिक तथा मानसिक क्षमताएँ अलग-अलग होती हैं। इसके अलावा उनकी रूचियाँ, अभिवृत्तियाँ, रूझान तथा बौद्धिक स्तर पृथक्-पृथक होते है। अतएव वैयक्तिक विभिन्नताओं को संतुष्ट करने के लिए पाठ्यक्रम में भी व्यापकता तथा विभिन्ता का गुण होना चाहिए।

(2) **सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति**–समाज को विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। उसे डॉक्टर, इंजीनियर, तकनीशियन, लिपिक, अध्यापक तथा ऑफिसरों आदि की आवश्यकता पड़ती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बहु-प्रयोजनकृत पाठ्यक्रम की आवश्यकता पड़ती हैं।

(3) **व्यवहारिक शिक्षा की व्यवस्था**–बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम उन छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होता है, जो माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं लेना चाहते और स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन करना चाहते हैं।

(4) **व्यक्तित्व का विकास**–बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास होता है। इसके द्वारा जीवन तथा जीविका दोनों की शिक्षा मिलती है।।

(5) **बेकारी की समस्या का समाधान**–बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षित बेकारी की समस्या हल

होती है। हस्तशिल्प तथा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वह स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन के योग्य बन जाता हैं। वह नौकरी के ऊपर निर्भर नहीं रहता।

(6) **संस्कृति का विकास**–बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम हमारी संस्कृति के विकास में सहायक सिद्ध हुआ हैं। तकनीकी ज्ञान के द्वारा हमारी संस्कृति का क्षेत्र विस्तीर्ण हुआ है। इसके द्वारा तकनीकी तथा उदार शिक्षा मे सामंजस्य आया हैं।

कोठारी आयोग तथा पाठ्यक्रम–कोठारी आयोग ने पाठ्यक्रम में सुधार लाने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये हैं–

(1) पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार लाने के लिए विश्वविद्यालय, शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, राज्य शिक्षा संस्थान तथा राज्य के माध्यमिक शिक्षा-मण्डल शोध-कार्य करें और पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाने के लिए सुझाव प्रस्तुत करें।

(2) इसके अतिरिक्त उपर्युक्त संस्थाएँ पाठ्यपुस्तकों, अन्य अध्ययन-अध्यापन सामग्रियों तथा शैक्षिक उपकरणों की रचना करें।

(3) माध्यमिक परिषदो को पाठ्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए। विद्यालयों को इतनी स्वतंत्रता मिलनी चाहिए जिससे कि अपना पाठ्यक्रम स्वयं निर्मित कर सकें।

(4) माध्यमिक शिक्षा-मण्डल द्वारा उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम का निर्धारण कराना चाहिए। विद्यालयों को इस पाठ्यक्रम को धीरे-धीरे स्वीकार करना चाहिए।

(5) विषय-अध्यापक संघों का निर्माण किया जाये, जो पाठ्यक्रम-रचना तथा सुधार सम्बन्धी शोध-कार्य करें।

पाठ्यक्रम रचना के सिद्धांत– माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम की रचना करते समय निम्नलिखित मूलभूत सिद्धांतों को ध्यान में रचना चाहिए–

(1) पाठ्यवस्तु को आदर्श तथा उपयोगी होना आवश्यक हैं।

(2) पाठ्यक्रम बालको की रूचि के अनुकूल हो। पाठ्य-वस्तु शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, बल्कि वह शिक्षा का एक साधन है। पाठ्यक्रम भी शिक्षा का एक साधन हैं। पाठ्यक्रम को भी शिक्षा का अन्त न समझा जाय। वह केवल माध्यम के रूप में लिया जाय, जिसके द्वारा बालक जीवन में विविध अनुभवों को प्राप्त करते हैं।

(3) माध्यमिक पाठ्यक्रम की रचना करने से पूर्व हमें इस सच्चाई पर भी ध्यान देना चाहिए कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति में कौन-कौन से गुणों तथा योग्यताओं का होना आवश्यक हैं?

(4) हमें ऐसे पाठ्यक्रम की संयोजना करनी चाहिए, जिसको कि हम अपने देश की परिस्थितियों में कार्यान्वित कर सकें। हमें विदेशी पाठ्यक्रम का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिए।

(5) हमें देश की व्यावसायिक आवश्यकताओं तथा माँगों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। दूसरे शब्दों में पाठ्य-विषयों का सम्बन्ध व्यावसायिक आवश्यकताओं से हो।

(6) पाठ्यक्रम-रचना के पूर्व देश के वर्तमान तथा निकट भविष्य में आने वाले व्यावसायिक जीवन का सम्यक् विश्लेषण तथा सर्वेक्षण होना चाहिए। न तो **मुदालियर आयोग** और न ही **कोठारी आयोग** ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि देश में व्यावसायिक जगत् की क्या स्थिति है? इसके लिये प्रत्येक उद्योग, रोजगार तथा काम-धन्धे की भली-भाँति सर्वेक्षण होना चाहिए तभी हमें ज्ञान हो

सकता है कि किस व्यवसाय के लिए कितने और कैसे व्यक्तियों की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम का निर्धारण इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर किया जाय।

मूल्यांकन की समस्या (Evaluation Problems)

माध्यमिक शिक्षा की दूषित परीक्षा-प्रणाल की ओर लगभग सभी शिक्षाविद् हमारा ध्यान आकर्षित कर चुके हैं, फिर भी हम उनके दोषों को दूर नहीं कर पा रहे हैं। परीक्षा शैक्षिक प्रक्रिया का आवश्यक तथा स्वाभाविक अंग हैं, किन्तु यह प्रणाली इतनी दूषित तथा भयावह हो गयी है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

(1) निबन्धात्मक परीक्षा-प्रणाली विद्यार्थी की बुद्धि तथा योग्यता की परीक्षा न लेकर उनके स्मरण-शक्ति की परीक्षा लेती हैं,

(2) परीक्षा में परीक्षार्थी भाग्य तथा दैवयोग पर अधिक निर्भर करते हैं और पूरे पाठ्यक्रम का विधिवत् अध्ययन न कर केवल चुने हुए अशों का ही प्रवरण करते है।। इसमें नियमित अध्ययन की अवहेलना होती है,

(3) परीक्षार्थियों के स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता हैं,

(4) विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए अनैतिक साधनों का प्रयोग करते हैं,

(5) इसमें व्यक्तिनिष्ठता, अप्रामाणिकता तथा अविश्वसनीयता का दोष पाया जाता हैं।

समाधान के कुछ सुझाव (Some Suggestion for Solution)–माध्यमिक परीक्षा-प्रणाली में सुधार तथा परिवर्तन करने के लिए समय-समय पर शिक्षा शास्त्रियों ने अनेक सुझाव दिये हैं। मुदालियर आयोग ने परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन लाने के लिये जो सुझाव दिये हैं, वे निम्नांकित हैं–

(1) बाहरी परीक्षाओं की संख्या घटा दी जाय,

(2) परीक्षकों के व्यक्तिनिष्ठ विचारों से बचने के लिए अधिक-से-अधिक मात्रा में निबन्धात्मक परीक्षाओं के स्थान पर वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं (Objective Tests) का समावेश कर देना चाहिए,

(3) प्रश्नों के रूप में भी परिवर्तन करना आवश्यक है,

(4) बालक की सर्वागीण प्रगति जानने के लिए तथा उससे भविष्य का निर्धरण करने के उद्देश्य से स्कूल में उसकी प्रगति का ठीक-ठीक लेखा (Record) रखना चाहिए। इस अभिलेख में बालक द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में की गयी प्रगति तथा कार्यो का विवरण होना चाहिए,

(5) छात्रों के वर्ष भर के कार्यो का मूल्यांकन करते समय आन्तरिक परीक्षाओं के साथ-साथ आवधि के परीक्षाओं (Periodical Tests) और विद्यालय अभिलेखों की उचित महत्त्व प्रदान करना चाहिए,

(6) मूल्यांकन करने के लिए अंकों के स्थान पर गुप्त संकेतों का प्रयोग करना चाहिए,

(7) सेकेण्डरी स्कूल का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त होने के बाद केवल एक सार्वजनिक परीक्षा (Public Examination) होनी चाहिए,

(8) विद्यार्थियों के प्रमाण-पत्रों में उन विषयों के अतिरिक्त जिनमें उन्होंने परीक्षा दी है, उन विषयो तथा स्कूल के कार्यो का भी उल्लेख होना चाहिए, जिनमें उसकी जाँच स्कूल ने वर्ष भर में की है,

(9) आयोग का मत है कि सार्वजनिक परीक्षाओं के लिए पूरक परीक्षाएँ (Compartmental Examination) भी प्रारम्भ कर देनी चाहिए।

कोठारी आयोग द्वारा प्रस्तावित सुझाव

(1) कोठारी आयोग ने मूल्यांकन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि सम्पूर्ण शैक्षिक सुधार

कार्यक्रम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए और यह प्रयत्न करना चाहिए कि मूल्यांकन अधिक वैध, विश्वसनीय, प्रयोगात्मक तथा वस्तुनिष्ठ बन जाय ।

(2) आयोग के परीक्षा संबंधी सुझाओं को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(अ) लिखित परीक्षाओं में सुधार, तथा

(ब) परीक्षा के उपकरण, पद्धतिक तथा साधनों में सुधार,

(3) लिखित परीक्षा के अतिरिक्त आन्तरिक तथा मौखिक परीक्षाओं को उचित महत्त्व दिया जाय,

(4) प्रश्न-पत्र निर्माताओं के प्रशिक्षण की उचित व्यवस्था की जाय,

(5) संचयी अभिलेख पत्रों को सावधानी के साथ रखा जाय और उन्हें और अधिक वैज्ञानिक बनाया जाए,

(6) प्रश्न-पत्र को शिक्षा तथा पाठ्यक्रम के उद्देश्यो से सम्बद्ध किया जाय,

(7) अंक प्रदान करने के लिए अधिक वैज्ञानिक विधियाँ अपनायी जाएँ,

(8) प्रयोगात्मक विद्यालयों की स्थापना की जाय। इन विद्यालयो को इतनी स्वायत्तता प्रदान की जाय, जिससे बालकों का आन्तरिक मूल्यांकन हो सके और इसी के आधार पर माध्यमिक शिक्षा बोर्ड छात्रों को प्रमाण-पत्र प्रदान करें,

(9) प्रमाण-पत्र में आन्तरिक तथा बाह्य परीक्षा के विषयों का उल्लेख होना चाहिए।

भारत में परीक्षा–प्रणाली अनेक दोषों से युक्त रही है। जैसाकि **डॉ0 जाकिर हुसैन** ने कहा था– हमारे देश की प्रचलित परीक्षा प्रणाली शिक्षा के लिए अभिशाप सिद्ध हुई है। परीक्षाओं को उनकी उपयोगिता से अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करके हमारी दूषित शिक्षा-पद्धति के अधिक निम्न स्तर पर बना दिया गया हैं।

जहाँ तक माध्यमिक शिक्षा का प्रश्न है माध्यमिक स्तर की परीक्षा-प्रणाली के संक्षेप में मुख्यतया निम्नलिखित दोष जाए जाते हैं-

(1) निबन्धात्मक प्रश्नों की बहुलता के कारण समग्र पाठ्य-क्रम से प्रश्न पूछना सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में प्रायः विद्यार्थी कुछ चुने प्रश्न और उनके उत्तर को रट कर परीक्षा में सफल हो जाते हैं,

(2) शिक्षा सतत् विकास की एक सकारात्मक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य शिक्षार्थी के व्यक्तित्व का समग्र विकास कर समाज में अपने भूमिका-निर्वाहन करने के लिए सक्षम बनाना है, किन्तु पारम्परिक परीक्षा-प्रणाली शिक्षा के इस महान उद्देश्य की उपेक्षा करती है। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों उदासीन रहते हैं,

(3) प्रश्न-पत्रों में प्रश्नों की संख्या कम होने से सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता,

(4) उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन में परीक्षक की व्यक्तिगत रूचि, निष्ठा, पूर्वाग्रह, उसकी पारिवारिक एवं व्यक्तिगत परिस्थिति आदि का विपरीत प्रभाव पड़ता हैं,

(5) परीक्षा और मूल्याकन के भ्रष्ट साधनों के प्रयोग की अधिक सम्भावना रहती है। फलतः परीक्षा की वैधता और विश्वासनीयता सन्देहास्पद रहती है।

समाधान-परीक्षा-प्रणाली में सुधार के प्रयास

परीक्षा-प्रणाली के दोषों के प्रति शिक्षाविद् और शिक्षा जगत् से जुड़े लोग जागरूक रहे हैं। फलतः इन

दोषों को दूर करने के लिए समय-समय पर प्रयास किए गए हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा-नीति 1986 में मूल्यांकन प्रक्रिया को सुधारने तथा परीक्षा सुधार लागू करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया। सन् 1992 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की समीक्षा की गई तथा उसमें कतिपय संशोधन किए गए। सन् 1992 ई० में किए गए संशोधन के उपरान्त राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परीक्षा-सुधार के सम्बन्ध में जो, दिशा-निर्देश दिए गए, उनमें से मुख्य इस प्रकार हैं–

(1) निष्पादन का आकलन, अधिगम व शिक्षा की किसी भी प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग होता है। एक सुदृढ़ शैक्षिक व्यूह संरचना के अंग के रूप में परीक्षाओं को शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने के कार्य में प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से अग्रांकित तथ्यों को ध्यान में रखना श्रेयस्कर होगा–

(i) रटने की प्रवृत्ति को हतोत्साहित करना,

(ii) सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के लिए प्रयास करना,

(iii) अध्यापकों, छात्रों, तथा अभिभावकों के द्वारा मूल्यांकन प्रक्रिया का प्रभावशाली प्रयोग करना,

(iv) परीक्षा-संचालन में सुधार करना,

(v) अनुदेशन सामग्री तथा विधि में सहगामी परिवर्तनों को लागू करना,

(vi) माध्यमिक स्तर से अनुदेशन को सेमेस्टर प्रणाली को क्रमशः लागू करना,

(vii) अंकों के स्थान पर ग्रेडों का प्रयोग करना।

आयोग के इन दिशा-निर्देशों को ध्यान में रखकर एन०सी०ई०आर०टी० तथा राज्य के शिक्षा संस्थानों और परिषदों ने परीक्षा प्रणाली में सुधार के महत्वपूर्ण प्रयास किए हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप आज परीक्षा-प्रणाली में विशेषकर प्रश्न-पत्र के निर्माण और मूल्यांकन में सराहनीय सुधार हुआ है। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा परषिद् की परीक्षा-प्रश्नों में निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश होने लगा है। प्रश्नों के निर्माण में निबन्धात्मक प्रश्नों की सीमित संख्या के अतिरिक्त लघु प्रश्न, अति लघु प्रश्न, बहुविकल्पीय प्रश्न, सत्यासत्य प्रश्न, रिक्त स्थान पूर्ति वाले प्रश्न भी पूछे जा रहे हैं।

जैसा कि हम पहले अवगत हो चुके हैं कि माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक लम्बे समय तक निबन्धात्मक परीक्षा-प्रणाली का वर्चस्व रहा। पिछले दशकों में इस दिशा में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं। परीक्षा-प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए **राधाकृष्णन् आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग तथा 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण-परिषद्'** (NCERT National Council of Educational Research and Training) ने माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं। इन सुझावों को निम्नलिखित पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता हैं–

(1) लिखित परीक्षाओं में सुधार (Reforms in writtern Examination)

(2) मौखिक परीक्षाओं में सुधार (Reforms in Oral Examination)

(3) प्रयोगात्मक परीक्षाओं में सुधार (Reforms in Practical Examination)

(4) परीक्षा-संचालन में सुधार (Reforms in Conduct of Examination)

(5) परीक्षा साधनों के प्रयोग में सुधार (Reforms in Use of Examination Tools)।

प्रश्न-पत्रों में सुधार तथा अंकन-विधि से सुधार।

परीक्षा-प्रश्नो में भाषा, स्पष्टता, पाठ्य-वस्तु तथा शिक्षण उद्देश्य को ध्यान मे रखकर सुधार लाया जा सकता हैं। प्रायः यह देखा गया है कि परीक्षाओं में पूछे जाने वलो प्रश्नों में इन तत्त्वों की उपेक्षा की जाती है। अतएव प्रश्नों के निर्माण में इन तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए। साथ ही इसबात का ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम के सभी प्रकरणों से प्रश्न पूछे जाएँ। परीक्षा-प्रश्नों के निर्माण में लघु प्रश्न, अति लघु प्रश्न तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का समावेश होना चाहिए। वस्तुनिष्ठ प्रश्न कई प्रकार के होते हैं। यहाँ वस्तुनिष्ठ प्रश्नों पर थोड़ा कुछ विस्तार से विमर्श आवश्यक हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Test) —

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के प्रवर्त्तन का श्रेय **जे0एम0 राइस** को हैं। राइस महोदय ने वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ की रचना, प्रयोग एवं अंकन आदि के क्षेत्र में गहन अध्ययन किया था। **राइस** के कार्य को आगे बढ़ने का श्रेय **स्टार्च एवं ईलियट** (Starch & Elliot) को हैं। प्रश्न उठते है कि वस्तुनिष्ठ परीक्षण क्या है। **सी0वी0 गुड** के अनुसार, ''वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रायः एकान्तर, प्रत्युत्तर, बहुनिर्वचन, तुल्य या रिक्त स्थान पूर्ति रूप के प्रश्नों पर आधारित होता है और सही उत्तरों को कुंजी द्वारा अंकित किया जाता है यदि कोई उत्तर कुंजी के विपरीत होता है तो उसे अशुद्ध माना जाता हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण मुख्यतया दो प्रकार का होता है–(अ) प्रत्यस्मरण (Recall) तथा (ब) अभिज्ञान (Recognition)।

(अ) प्रत्यास्मरण के पुनः दो उप-विभाग होते हैं– (1) साधारण प्रत्यास्मरण तथा (2) रिक्त स्थान पूर्ति।

(1) साधारण प्रत्यास्मरण का प्रयोग मुख्यतः तथ्यात्मक ज्ञान की जाँच करने के लिए किया जाता है। रचना की दृष्टि से ये प्रश्न अत्यन्त सरल होते हैं।

(2) रिक्त स्थान पूर्ति के प्रश्न पूर्ण कथनों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं। जैसे भारत के राष्ट्रपति .... हैं। अथवा भारत के प्रथम प्रधानमंत्री .... थे।

(ब) अभिज्ञान रूप के चार प्रमुख होते हैं–(1) एकान्तर प्रत्युत्तर (Alternate Response Type), (2) बहुनिर्वचन रूप (Multiple Choice Type), (3) तुलनात्मक प्रकार के प्रश्न (Matching type Question), (4) वर्गीकरण रूप (Classification Type)।

(1) यहाँ एक एकान्तर प्रत्युत्तर रूप का प्रश्न–इनका उत्तर 'सत्य' या 'असत्य रूप' (True/False Type) में दिया जाता है। इसमें निश्चित कथन दिए जाते हैं और परीक्षार्थी से वह प्रश्न किया जाता है कि यह कथन सत्य है या असत्य। उदाहरण के लिए– (i) भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे।

(2) बहुनिर्वाचन या बहुविकल्पीय रूप से (Multiple Choice Type) –(सत्य/असत्य) एक कथन के रूप में कई विकल्प दिए जाते हैं। उदाहरण के लिए नीचे दिए गए बहुविकल्पीय प्रश्नों को देखिये।

प्रश्न (i) **भूख और प्यास कैसे अभिप्रेरक हैं ?**

(क) व्यत्तिगत (ख) जन्मजात

(ग) सामाजिक (घ) अर्जित

प्रश्न (ii) **'सीखना व्यवहार के अर्जन में प्रगति की प्रक्रिया है।' यह कथन किसका हैं–**

(क) स्किनर (ख) गेट्स

(ग) हिमगार्ड (घ) पील

इस प्रकार बहुविकल्पीय प्रश्नों में कई विकल्प दिए जाते हैं। उनमें से एक पर चिन्ह लगाना होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन विकल्पों में परीक्षार्थी जिस विकल्प को सही समझता है, उसके आगे (√) का चिह्न लगा देता हैं। इस प्रकार के प्रश्नों में अधिक वस्तुनिष्ठता पाई जाती है और इनका तत्परता के साथ हाथ या मशीन से अंकन किया जा सकता है। परन्तु बहुविकल्पीय प्रश्नों की रचना में पूरी सतर्कता और सावधानी बरतनी चाहिए।

(3) तुलनात्मक (सुमेलित) प्रकार के प्रश्न (Matching Type questions)–इस प्रकार के प्रश्न मूलतया तथ्यात्मक होते हैं। इन प्रश्नों में कई तथ्यों को अव्यवस्थित रूप में रख दिया जाता है। ये प्रश्न दो कॉलमो में रखे जाते है। दोनों कालमों के तथ्यों को सही उत्तरों से मिलाना या मैचिंग करने का निर्देश दिया जाता है। उदाहरण के लिए नीचे दिए हुए प्रश्न को देखिए–

नीचे दिए हुए तथ्यों को सुमेलित कीजिए–

(i)	झांसी की रानी	1757
(ii)	प्लासी का युद्ध	1857
(iii)	अकबर महान की मृत्यु	1707
(iv)	औरंगजेब की मृत्यु	1605

(4) वर्गीकरण प्रकार के प्रश्न (Classification Type)– वर्गीकरण रूप के प्रश्नों के अन्तर्गत छात्रों के समक्ष कुछ ऐसे शब्दो का समूह प्रस्तुत किया जाता है, जिनमें एक शब्द बेमेल होता है। छात्रों को बेमेल शब्द वाले वर्ग को रेखांकित करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिए नीचे भारत के राज्यों के वर्ग दिए गए हैं। इनमें यह बताना है कि कौन-सा वर्ग असंगत है–

(i) उत्तर प्रदेश, बिहार, पंजाब, पश्चिमी बंगाल,

(ii) आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, तमिलनाडु,

(iii) गुजरात, महाराष्ट्र, उड़ीसा, केरल,

(iv) झारखण्ड, हरियाणा, चण्डीगढ़, लक्ष्यद्वीप।

उपर्युक्त परीक्षार्थी सही उत्तर देने के लिए (iv) वर्ग पर निशान (√) लागएगा। क्योंकि क, ख, ग में राज्यों का उल्लेख है, जबकि (iv) वर्ग में राज्यों के साथ केन्द्र शासित क्षेत्रों का भी उल्लेख हैं।

नीचे दी हुई तालिका से वस्तुनिष्ठ परीक्षा के विविध रूपों का एक शब्द-चित्र मिल जाता हैं।

वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Objective Test)

- (अ) वस्तुनिष्ठ परीक्षण (Recall)
  - (1) असाधारण प्रत्यास्मरण (Simple Recall)
  - (2) रिक्त स्थानों की पूर्ति (Filling in the gaps)
- (ब) अभिज्ञान (Recognition)
  - (1) एकान्तर प्रत्युत्तर (Alternate Response)
  - (2) बहुविकल्पीय प्रशन (Multiple Choice)
  - (3) तुल्य या सुमेल के प्रश्न (Matching)
  - (4) वर्गीकरण (Classification)

वस्तुनिष्ठ परीक्षण के मुख्य गुण

वस्तुनिष्ठ परीक्षण की अनेक विशेषताएँ और अनेक गुण होते हैं। संक्षेप में इन्हें हम निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं–

(1) वस्तुनिष्ठ परीक्षण निष्पक्ष और निरपेक्ष होता है। इसमें परीक्षक के व्यक्तिगत विचार, पूर्वाग्रह, मानसिक स्तर तथा मनोदशा के लिए कोई स्थान नहीं होता।

(2) वस्तुनिष्ठ परीक्षण विश्वासनीय होते हैं जैसा कि **रैमर्स** तथा **गेज** ने कहा है–''वस्तुनष्ठि परीक्षण का चाहे कोई भी व्यक्ति अंकन क्यों न करे और चाहे उसके द्वारा विभिन्न अवसरों पर अंकन क्यों न किया जाये, मूल्यांकन में एकरूपता और समानता बनी रहेगी।

(3) वस्तुनिष्ठ परीक्षण का अन्य गुण उसकी वैधता है। दूसरे शब्दों मे वस्तुनिष्ठ परीक्षण की वैधता (Validity) में कोई शंका नहीं होती।

(4) वस्तुनिष्ठ परीक्षण मे मूल्याकन का कार्य अत्यन्त सुगम होता है। जैसा कि **राहटस्टोन** ने लिखा है–''वस्तुनिष्ठ परीक्षण में अंकन कुंजी की सहायता से होता है, जिसमें सही उत्तरों की तालिका दी रहती है। अत: इसमें किसी प्राविधिक कुशलता की आवश्यकता नहीं होती है।''

(5) वस्तुनिष्ठ परीक्षण की अन्य विशेषता यह होती है कि इसमें प्रश्नों का एक व्यापक आधार पर निर्माण किया जाता है। फलत: इस परीक्षण विधा में पूरे पाठ्यक्रम में प्रश्न चयन करने में सुविधा होती है।

(6) वस्तुनिष्ठ परीक्षण में विभिन्न प्रकार के प्रश्न अर्थात् ज्ञानात्मक, बोधात्मक, कौशलात्मक तथा अनुक्रियात्मक प्रश्न निर्माण करने में सुविधा होती है।

(7) वस्तुनिष्ठ परीक्षण अनेक प्रकार की परीक्षाओं में उपयोगी सिद्ध हुआ है। **करिंस**, **वुड्स, प्लोमैन** तथ **स्ट्राडण्ड** के अध्ययनो ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह परीक्षण प्रणाली अत्यन्त उपयोगी है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली के दोष (अवगुण)

वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रणाली में कुछ दोष भी हैं। इन दोषों को संक्षेप में निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं–

(1) वस्तुनिष्ठ परीक्षण अनुमान लगाने की प्रवृति को प्रोत्साहन देता है,

(2) वस्तुनिष्ठ परीक्षण प्रणाली के प्रश्नों का निर्माण-कार्य अपेक्षाकृत कठिन होता है। इसके प्रश्न तैयार करने में समय भी अधिक लगता है,

(3) वस्तुनिष्ठ परीक्षण द्वारा मौलिक चिन्तन, तर्क, अभियोजन एवं विश्लेषणात्मक क्षमता का मूल्यांकन नहीं हो पाता,

(4) वस्तुनिष्ठ परीक्षण में केवल तथ्यात्मक ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है,

(5) वस्तुनिष्ठ परीक्षण में अभिव्यक्ति की क्षमता एवं लेखन-क्षमता का समुचित विकास नहीं हो पाता।

निष्कर्ष–इस प्रकार वस्तुनिष्ठ परीक्षा प्रणाली में गुण भी है और दोष भी है। किन्तु दोषों की अपेक्षा गुण अधिक हैं। यही कारण है कि आज चाहे वे विश्वविद्यालय की परीक्षाँए हों, चाहे वे प्रतियोगिता विषयक परीक्षाएँ हों, वस्तुनिष्ठ प्रश्न, परीक्षा प्रणाली के रूप में स्थापित हो चुकी हैं। माध्यमिक परीक्षाओं में इस प्रणाली का अभी सीमित रूप में प्रयोग हो रहा है। इसे संतुलित अनुपात में बढ़ाने की जरूरत होगी।

मूल्यांकन में ग्रेड प्रणाली (Grade System)

ग्रेड प्रणाली परीक्षार्थी के मूल्यांकन की एक महत्वपूर्ण विधा है। यह विधा अंकन की पारम्परिक विधा

के दोषों से मुक्त मानी गई है। अंकन की पारम्परिक प्रणाली की कई आधारों पर आलोचना की जाती है। अंकन-प्रणली में प्रधानतया दो मुख्य दोष माने जाते हैं– प्रथमत: अंकन प्रणाली में परीक्षक के निर्णय में जरा भी भूल या उपेक्षा के कारण छात्र की श्रेणी या उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण की स्थिति बदल जाती है। उदाहरण के लिए पारंपरिक मूल्यांकन प्रणाली में 59.00 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्र-छात्राओं की द्वितीय श्रेणी तथा 60 प्रतिशत अंक पाने वाले छात्र-छात्राओं को प्रथम श्रेणी दी जाती है। स्पष्ट है कि नाम मात्र के अन्तर से छात्र प्रथम श्रेणी से वंचित हो गया।

पारम्परिक मूल्याकन प्रणाली का दूसरा प्रमुख दोष शैक्षिक उपलब्धि के मूल्यांकन के मानदण्डों में पर्याप्त भिन्नताओं का होना है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुछ विषयों में अत्यधिक अंक प्राप्त किए जा सकते हैं, कुछ में कम। उदाहरण के लिए गणित या विज्ञान जैसे विषयों में सामान्यत: शून्य से 100 तक अंक प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि भाषा, इतिहास आदि में सामान्यत: 20 से 70 तक अंक प्राप्त हो पाते हैं। इस प्रकार विभिन्न विषयों के प्राप्तांकों को योगफल के आधार पर तैयार किया गया छात्रों का योग्यता क्रम विभिन्न विषयो के मध्यमनों, उच्चतम व निम्नतम प्राप्तांकों तथा प्रसारों से बुरी तरह प्रभावित होता है। अतएव मूल्यांकन के इन दोषों को दूर करने के लिए शिक्षागविदों ने ग्रेड प्रणाली का समर्थन किया है। ग्रेड प्रणाली में प्रचलत अंकन प्रणाली की अपेक्षा विद्यार्थी की योग्यता का अर्थिक यथार्थपरक मूल्यांकन किया जा सकता हैं। 'इण्डियन काउंसिल आफ स्कूल सर्टिफिकेट' परीक्षा में अनेक दशकों से ग्रेड प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा हैं।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) तथा शिक्षा आयोग (1964–66) के अंकों के स्थान पर 'ग्रेड' का उपयोग करने का सुझाव दिया था। सन् 1975 में 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्' (NCERT) के द्वारा जारी दस वर्षीय विद्यालय के लिए पाठ्यक्रम की रूपरेखा (Frame Work of Curriculum for the Ten Year School) में भी ग्रेड प्रणाली के प्रयोग की सिफारिश की गई थी। नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 की कार्यान्वयन योजना (Plan of Action 1992 : National Policy on Education–1986) में भी विश्वविद्यालय स्तर पर ग्रेड प्रणाली को अपनाने की संस्तुति की गई है। 'इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के मूल्यांकन में भी ग्रेडिंग प्रणाली का प्रयोग हो रहा।

ग्रेड प्रणाली के प्रारूप का निर्माण करते समय प्राय: ग्रेड को 0, 1, 2, 3, 4 अथवा A, B, C, D, F आदि में प्रस्तुत किया जाता हैं। अलग-अलग संस्थाओं में ग्रेड के अलग-अलग प्रारूप प्रचलित हैं। कहीं पर पाँच बिन्दु ग्रेड प्रणाली (5 Point Grading System) प्रचलित हैं, तो कहीं पर 7 बिन्दु (7 Point Grading System)।

उदाहरण के लिए गुजरात के अनेक विद्यालयों में सात बिन्दु वाला ग्रेडिंग स्केल प्रचलित है। यह ग्रेड इस प्रकार हैं–

A+	—	विशिष्ट
A	—	बहुत अच्छा
B	—	अच्छा
C	—	सन्तोषजनक
D	—	औसत
E	—	औसत से निम्न
F	—	अनुत्तीर्ण

सात बिन्दु ग्रेड प्रणाली का एक अन्य प्रतिरूप नीचे दिया गया है–

ग्रेड	O	A	B	C	D	E	F
अंक	6	5	4	3	2	1	0
शब्दिक अर्थ	विशिष्ट Out Standing	अति उत्तम Very Good	उत्तम Good	औसत Average Fair	संतोषजनक Satisfactory	निकृष्ट Poor	अत्यधिक निकृष्ट Very Poor

इधर मूल्यांकन की ग्रेड प्रणाली की लोकप्रियता बढ़ती जा रही हैं। इसका कारण उसकी विश्वासनीयता और उपयोगिता हैं।

19.9 माध्यमिक शिक्षा में निजीकरण एवं व्यवसायिकरण के मुद्दे (Issue Related to Privatisation and Vocationalisation in Secondary Education)

माध्यमिक स्तर पर शिक्षा के व्यवसायीकरण का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग हैं। शिक्षा के व्यवसायीकरण से तात्पर्य शिक्षा को व्यवसायोन्मुखी और रोजगारपरक बनाना है। यह प्रश्न इस प्रकार नया नहीं हैं। 1853 ई० में **वुड–डिस्पैच** ने पहली बार व्यावसायिक शिक्षा की सिफारिश की थी। पुन: ब्रिटिश काल में **हंटर कमीशन** (1882), **हर्टाग कमेटी** (1909), **वुड-एक्ट** रिपोर्ट (1937) तथा **सार्जेण्ट योजना** (1944) सभी ने शिक्षा के व्यवसायीकरण पर ध्यान दिया और सिफारिशें भी दीं। स्वातंत्र्योपरान्त 1952 में **मुदालियर कमीशन** ने इस प्रसंग को आगे बढ़ाया जिसने कृषि, शिक्षण, चिकित्सा, इंजीनियरिंग आदि की शिक्षा के विस्तारीकरण पर जोर दिया। **कोठारी कमीशन** (1964–66) ने सबसे अधिक बल दिया, जिसके अनुसार भारतीय शिक्षा राष्ट्रीय उत्पादन के लिए अनुपयुक्त है। वह व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार नहीं करती है। इसलिए माध्यमिक स्तर पर व्यवसायीकरण की माँग की गयी।

व्यवसायीकरण का तात्पर्य–आज के विकासशील राष्ट्रों में शिक्षा विभिन्न व्यक्तियों के लिए दी जाती है, जो व्यक्ति के विभिन्न सामाजिक व आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखती है। इसलिए शिक्षा का व्यसायीकरण जरूरी हो गया है। इसका तात्पर्य है, लोगों को विभिन्न व्यवसायों के लिए आवश्यक तकनीकों का ज्ञान प्रदान करना और विभिन्न कौशलों को व्यवहारिक तौर पर सीखना-सिखाना। व्यवसायीकरण का यह अर्थ सीमित है। व्यापक रूप में शिक्षा के व्यवसायीकरण का तात्पर्य है ऐसी व्यावसायीकरण, तकनीकी, कौशलीय तथा जीवनोपयोगी शिक्षा जो व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ाये तथा उसका सर्वोगीण विकास करे। इसलिए शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यवसायों के ज्ञान, कौशल, क्रियाविधि, प्रविधि आदि को आवश्य शामिल किया जाये। सभी को सामान्य शिक्षा के साथ-साथ व्यावसायिक ज्ञान-कौशल भी बताया जाय, जिससे अध्ययन पूरा करने पर छात्र जीविकोपार्जन में सक्षम हो सके। व्यावसायिक शिक्षा का तात्पर्य इस प्रकार जीवनोपयोगी, अर्थकारी, जीवन के लिए तैयार करने वाली शिक्षा से हैं।

माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण का प्रयास– माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण का महान् प्रयास **कोठारी कमीशन** (1964–66) के द्वारा हुआ है, जिसका 10+2+3 की शिक्षा की संरचना का प्रस्ताव है। इनमें +2 के स्तर पर शिक्षा के व्यवसायीकरण की संकल्पना हुई है। **प्रो० आदिशेषैया** के नेतृत्व में गठित समिति (1979) ने जोर देकर कहा है कि कक्षा 10 तक की सामान्य शिक्षा के उपरान्त शिक्षा की दो धाराएँ हो जायें–सामान्य शिक्षा धारा तथा व्यावसायीकृत शिक्षा धारा। व्यावसायीकृत शिक्षा धारा में छात्रों को तकनीकी सम्बन्धित, विज्ञान, कृषि या अन्य प्रयोगात्मक कार्य का अध्ययन करके एक कौशल या अनेक कौशलों को सीखना होगा। इसके लिए आई०टी०आई०, तकनीकी हाईस्कूल, कृषि व औद्योगिक पॉलीटेक्निक संस्थाओं में शिक्षा दी जायेगी।

यूनेस्कों के द्वारा भी कुछ प्रयास संकेत रूप में हुए है। युनेस्को ने शिक्षा के व्यवसायीकरण का अर्थ यह बताया है, जिसमें उसका लक्ष्य अर्थोपार्जन भी है। व्यावसायीकृत शिक्षा में सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त शिक्षा प्रक्रिया के वे पक्ष भी निहित हैं जो आर्थिक व सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के व्यवसाय के सम्बन्धित विज्ञानों के अध्ययन से तथा व्यवहारिक कौशलों, अभिरूचियों, बांध और ज्ञान की प्राप्ति से सम्बन्धित हैं। इसकी शिक्षा का एक कोमल अंग, व्यवहारिक कौशलें, अभिरूचियों, बोध और ज्ञान की प्राप्ति से सम्बन्धित हैं। इसकी शिक्षा का एक कोमल अंग, व्यावसायिक क्षेत्र में आने की तैयारी का एक साधन तथा सतत् शिक्षा का एक पक्ष होगा।

व्यावसायीकृत शिक्षा के लाभ–विद्वानों के विचार से ऐसी शिक्षा योजना से भारत जेसे देश के लोगों को निम्नलिखित लाभ होगा–

(1) व्यवसायीकृत शिक्षा व्यक्ति को अपने आप रोजगार करने की क्षमता देगी, (2) इससे घरेलू उद्योग-धन्धों का विकास होगा, (3) इसके द्वारा बेरोजगारी दूर होगी, शिक्षाप्राप्त लोग आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बनेंगे, (4) इस दिशा में लोगों में उत्पादनशीलता क गुण आएगा और वे उपलबध संसाधनो का उचित प्रयोग करेगें तथा राष्ट्रीय उत्पादन की वृद्धि में योगदान करेंगे, (5) यह शिक्षा राष्ट्र्य आय को बढ़ाने में सहायता करेगी, (6) व्यक्ति मे श्रम के प्रति सम्मान की भावना बढ़ेगी, (7) शिक्षा और काम तथा जीवन में एकीकरण बढ़ेगा। इन लाभों को देखते हुए यही निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि शिक्षा का व्यवसायीकरण भारत के लिए आवश्यकता है और शीघ्र इसकों उचित ढंग से चलाया जाय।

व्यवसायीकरण से उत्पन्न समस्या

माध्यमिक स्तर पर ही क्यों शिक्षा का व्यवसायीकरण हो ? यह समस्या पहले आ जाती है। वास्तव में शुरू से ही छात्रों की व्यावसायिक अभिरूचि को जानकर उन्हें उसी ओर से लाना चाहिये। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ इसे रखा जाय ।

दूसरी समस्या आर्थिक है क्योंकि इसके लिए विभिन्न प्रकार के व्यावसायों की शिक्षा के लिए तत्सम्बन्धी ज्ञान वाले अध्यापक, यंत्र, सामग्री की जरूरत होगी, जिसको राज्य व समाज नही सम्भाल पायेगा। ऐसा लगता है, क्योंकि हमारा ध्यान शासन परअधिक व्ययकरने में है न कि शिक्षा पर।

तीसरी समस्या है श्रम के प्रति सम्मान, झुकाव और कमाने की आदत के विकास की। जिन लोगों में ये सभी गुण हैं, उन्हे व्यावसायिक शिक्षा की जरूरत नहीं, क्योंकि वे घरेलू उद्योग-कार्य में लग ही जाते हैं। अन्य के लिए ऐसा कर पाना सम्भव नहीं। इसका मुख्य कारण है कि राजनीति अपने देश में एक व्यवसाय है, जिसके लिए व्यावसासयिक शिक्षा की कोई जरूरत नहीं। पार्टी के सदस्य बनिये, नेता हो जाइये, तो रोजी-रोटी स्वयं भगवान् भेजता है और साथ ही बड़े-बड़े पद की प्राप्ति हो जाती हैं। ऐसी मनोवृत्ति कैसे बदले ? जो लोग डिग्री, डिप्लोमा ले लेते है वे नौकरी तलाशते हैं जो मिल नहीं रही है तो फिर ऐसी शिक्षा-व्यवस्था से क्या होगा ?

इसी प्रकार अन्य समस्याएँ हैं, जैसे-जीव-दर्शन एवं जीवन के प्रति दृष्टिकोण की। आज भारत में बिना श्रम के आराम के साथ जीवन निर्वाह का दृष्टिकोण व दर्शन पाया जाता है। भाग्यवादी प्रवृत्ति से ऐसा हो गया है और राजनेताओं के भोगपूर्ण जीवन ने देश के नवयुवकों का मन फेर दिया है। ऐसी स्थिति मे व्यवसायी या व्यावसायीकृत शिक्षा की क्या उपयोगिता और आवश्यकता है ? ऐसी भावना लोगों में बलवती होती जा रही है। इस प्रकार केवल गरीबों, ग्रामीणों, निम्न वर्गीय लोगों के लिए यह व्यवसासयीकृत शिक्षा योजना लागू हो, ऐसी धारा आज बह रही है। इसलिए यह एक वृहद और गम्भीर समस्या हैं।

समाधान के उपाय–समस्या के समाधान पर दृष्टि डालनी जरूरी है। व्यवसायीकृत शिक्षा तभी सम्भव

होगी, जबकि लोगों की मनोवृत्ति भी व्यावसायिक हो जाय। श्रम के लिए सम्मान दिया जाना जरूरी है। यदि सभी लोग अपने काम छोड़कर नेता-शासक बनेंगे, तो दूसरे क्यों व्यावसायिक वृत्ति धारण करें। तीसरी बात यह है कि शिक्षा योजना में जो कुछ निर्धारित हो उसे सभी लोग मानें, यह नहीं कि शिक्षा योजना मे कुछ कान्वेण्ट के स्कूलों में पढ़ने जायें, तो कुद विदेश के स्कूलों में और निम्न साधारण श्रेणी के लोग व्यवसायीकृत शिक्षा के लिए दौड़ें, एक समान शिक्षा-प्रणाली हो। हमारे देश में माध्यमिक स्तर पर कितने तरह के स्कूल हैं - सैनिक स्कूल, पब्लिक स्कूल, केन्द्रीय स्कूल, कान्वेण्ट स्कूल, म्युनिसिपल स्कल, जिला परिषद स्कूल, व्यक्तिगत प्रबन्ध वाले स्कूल, आदि। किसके लिए कौन अच्छा है । यह उसकी आर्थिक स्थिति व पहुँच पर निर्भर करता है। जिस राष्ट्र में एक निश्चित समान शिक्षा-प्रणाली नहीं होगी, वह राष्ट्र जनतंत्र में विशेषकर कभी आगे नहीं बढ़ सकता है। अत: स्पष्ट है कि लोगों की मनोवृत्ति बदले और सभी एक समान शिक्षा-प्रणाली से शिक्षित किये जाए, अन्यथा कागजी कार्रवाई करते रहने व अनुशंसाओं से कुछ फायदा नहीं।

शिक्षा का निजीकरण (Privatisatiion of Education)

'निजीकरण' एक सापेक्षिक शब्द है जिसका प्रयोग विभिन्न संदर्भों के विभिन्न रूपों में किया जा सकता हैं। वर्तमान संदर्भ में 'निजीकरण' को उदारवाद की एक प्रमुख विधा के रूप में विश्लेषित किया गया हैं। उदारवाद, राजनीतिक-सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की वह विचारधारा है जो व्यक्ति की आधारभूत स्वतंत्रताओं में विश्वास करती है और ऐसी राजीनीतिक व्यवस्था का समर्थन करती है, जिसमें उसके स्वतंत्रताएँ सुनिश्चित और सुरक्षित हों। **लुहई वेसरमैन** के शब्दों में, "उदारवाद को भावात्मक तथा वैचाररिक दृष्टि से एक ऐसे आन्दोलन के रूप में परिभाषित किया जा सकता जो जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, विधि का शासन, पंथ निरपेक्ष तथा लोक कल्याणकारी राज्य में विश्वास करता है। आर्थिक क्षेत्र में उदारवादी व्यवस्था एक महत्वपूर्ण घटक है जो इस मान्यता का प्रतिपादन और समर्थन करता है कि व्यक्ति का उसके संसाधनों पर अपना स्वामित्व होना चाहिए और उनके प्रयोग उपयोग और अर्जित लाभ पर उसका अथवा उसके प्रतिष्ठान का एकाधिकार होना चाहिए।

व्यवहारिक दृष्टि से निजीकरण से आशय संसाधनों पर स्वामित्व परिवर्तन की उस विधा से है जिसमें राज्य या सरकार का नियंत्रण अत्यन्त सीमित होता है। यूँ तो सम्पत्ति पर निजी स्वामित्व की परम्परा अत्यन्त पुरानी है, एक दृष्टि से उतनी ही पुरानी जितनी कि मानव सभ्यता। किन्तु राजनीतिक और आर्थिक विकास के साथ निजीकरण के अर्थ, आयाम और संदर्भ बदलते रहे हैं। वर्तमान सन्दर्भ में निजीकरण वस्तुत: राष्ट्रीयकरण का विलोम है। राष्ट्रीयकरण उत्पादन के संसाधनों उत्पादन की प्रक्रिया एवं प्रबन्धन पर राज्य या सरकार के प्रभुत्व, वर्चस्व और नियंत्रण पर आधारित होता जबकि निजीकरण निजी व्यक्तियों, प्रतिष्ठानों या निगमों (Corporations) के स्वामित्व और प्रबन्धन में होता है। इसमें राज्य या केन्द्र सरकार दिशा-निर्देश देती और न्यूनतम हस्तक्षेप पर आधारित नियमों का निर्माण करती हैं।

'निजीकरण' (Privatization) शब्द का प्रथम प्रयोग सन् 1960ई० में **पीटर एफ0 ट्रकट** की पुस्तक 'द एज ऑफ डिस्कान्टिन्यूइटी' (The Age of Discountinuity) में मिलता हैं। इसके बाद उद्योग व्यापार तथा शैक्षिक क्षेत्र में इसका प्रयोग बढ़ता गया है। निजीकरण की प्रवृत्ति और परम्परा की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि या मुख्य कारण विश्व के राजनैतिक मानचित्र पर सोवियत रूस जैसे देश का विघटन तथा उसकी साम्यवादी व्यवस्था का परिवर्तन और विश्व के विकसित देशों द्वारा उदारीकरण तथा वैश्वीकरण जैसी अभिनव प्रवृत्तियों का अनुगमन है। उदारीकरण ने निजीकरण की प्रवृत्ति का मार्ग प्रशस्त किया है। उदारीकरण के अन्तर्गत 'विश्व व्यापार संगठन' (World Trade Organization) में भागीदारी होती है। जिसका उद्देश्य अधिक मुक्त अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार है। यह व्यवस्था सरकार द्वारा संरक्षित व्यापार व्यवस्था पर अंकुश लगा कर आयात-निर्यात की ऐसी नीति को प्रोत्साहन देती है, जिससे विश्व एक विशाल बाजार में रूपान्तरित हो गया है। विश्व व्यापार संगठन 1

जनवरी, 1995 ई० को अस्तित्व में आया। ऐसी प्रक्रिया में कई समझौते हुए और भारत इन समझौतों का भागीदार रहा। 1996 में सेवाओं पर एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हुआ। इस समझौते का उद्देश्य सेवाओं में व्यापार को उत्तरोत्तर बनाना है। इससे सेवाओं में वैसा ही सुरक्षित और खुला बाजार मिलेगा, जैसा कि वस्तुओं के व्यापार में 'गैट' से उपलब्ध हुआ है। सेवा सम्बन्धी सामान्य समझौते के अन्तर्गत 12 सेवाओं पर समझौते हुए हैं। शिक्षा इनमें से एक है। शिक्षा को समझौते की दृष्टि से पाँच श्रेणियों में विभाजित किया गया हैं। ये श्रेणियाँ हैं– **उच्च शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा अन्य प्रकार की शिक्षा।**

इस प्रकार भारत में शिक्षा के प्राय: सभी क्षेत्र खुली वैश्विक व्यवस्थाकी प्रभाव परिधि मे आते हैं। शैक्षिक जगत के इन नए आयामों ने भारत में शैक्षिक परिदृश्य के परिष्कार, परिवर्तन तथा परिवर्द्धन ने ऐतिहासिक योग दिया।

भारत में शिक्षा का निजीकरण

भारत में शिक्षा के निजीकरण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन भारत में गुरूकुल और आश्रम की शिक्षा व्यवस्था शिक्षा के निजीकरण का उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आधुनिक भारत में मुख्य रूप से ब्रिटिश शासन-काल में ही पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार-प्रसार से शैक्षिक परिदृश्य को अभिनव आयाम मिले। शैक्षिक पाठ्यक्रम शिक्षण प्रक्रिया, शैक्षिक संस्थाओं के प्रबन्धन प्रभृति के क्षेत्र में सरकारी नियंत्रण प्रभावी हुआ। सरकारी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई सरकारी शिक्षण-संस्थाओं के साथ ही गैर सरकारी शिक्षण संस्थाएँ भी चलती रहीं। किन्तु इन सभी संस्थाओं पर न्यूनाधिक सरकारी नीतियाँ और नियंत्रण था। स्वाधीन भारत में भी ऐसी ही व्यवस्थाचलती रही। प्रारम्भ में शिक्षा राज्य सूची के अन्तर्गत आती थी। किन्तु संविधान के 42वें संशोधन अधि नियम (1976) के बाद शिक्षा संविधान की समवर्ती सूची के अन्तर्गत आ गई। शिक्षा के समवर्ती सूची के अन्तर्गत आने के कारण शिक्षा की व्यवस्था और विस्तार को महत्त्वपूर्ण आधार मिले। फलत: शिक्षण संस्थाओं, शिक्षको और शिक्षार्थियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई। किन्तु बीसवीं शती में उत्तरार्द्ध में भारत में जनसंख्या में कल्पनातीत वृद्धि हुई। जनसंख्या विस्फोट से अन्य सहवर्ती समस्याओं के साथ ही शिक्षा के क्षेत्र में भी समस्याएँ खड़ी हुई। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं था कि सरकार अपने स्वामित्व और संरक्षण, केन्द्रीकरण और राष्ट्रीयकरण की नीति का अनुगमन करते हुए अपेक्षित शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करे। सीमित संसाध नों से असीमित शैक्षिक समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं था। इधर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होनेवाली क्रान्ति, सोवियत रूस की साम्यवादी व्यवसायिक विघटन, उदारीकरण (Liberalization) और वैश्यीकरण या 'भूमण्डलीकरण' (Globalization) की प्रवृत्तियों के प्रबल प्रवाह ने शिक्षा में निजीकरण की नीति के अनुगमन के लिए सरकार को बाध्य कर दिया। आज विश्व के अन्य विकसित देशों की भांति भारत में शिक्षा के विशाल द्वार निजीकरण के लिए खुल चुके हैं।

भारत में निजी शिक्षा का स्वरूप (Nature of Private Education in India)

शैक्षिक सन्दर्भ में निजी शिक्षा से तात्पर्य उस शैक्षिक संरचना और व्यवस्थासे है जिसमें शैक्षिक संस्था या संस्थाएँ निजी व्यक्तियों, प्रतिष्ठानों, निगमों या पंजीकृत अन्य संस्थाओं के प्रभुत्व, नियंत्रण, प्रबन्धन में रहते हुए शैक्षिक दायित्व-कार्यो का निष्पादन करती हैं। ऐसी संस्थाएँ स्ववित्तपोषित होती हैं। सामान्यतया उन्हें कोई सरकारी अनुदान नहीं मिलता। वे शिक्षण-संस्थाओं की व्यवस्था और संचालन में अपने साधनों पर निर्भर करती हैं। इसके लिए वे विद्यार्थियों से फीस लेती हैं अथवा किसी गैर-सरकारी संस्था, समूह या व्यक्ति से अनुदान लेती हैं। निजी शिक्षा संस्थाओं के प्रबंधन-तंत्र के सदस्यों को अपनी संस्था के लिए शिक्षक, फैकल्टी या कर्मचारियों को नियुक्ति और सेवा-विमुक्ति का अधिकार रहता हैं। इस प्रसंग में भी वे सरकार द्वारा बनाए गए नियमों का पालन करने के लिए बाध्य होते हैं। निजी शिक्षण संस्थाएँ स्ववित्तपोषित होती हैं। फलत: प्रबंधन-तंत्र

के सदस्य अपने साधनों और स्त्रोतों से अपने शिक्षकों या कर्मचारियों के वेतन का भुगतान करते हैं। शिक्षण संस्थाओं के अन्य खर्चों को भी वे वहन करते हैं। निजी शिक्षण संस्थाओं के भवन इत्यादि पर उनका अपना स्वामित्व होता है। इस प्रकार निजी शिक्षण संस्थाएँ स्वायत या स्ववित्तपोषित होती हैं। वे अपने स्तर के अनुसार किसी बोर्ड या विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होती हैं। अपनी शिक्षण संस्थाओं में वे सम्बन्धित बोर्ड या विश्वविद्यालय प्रशिक्षण संस्थाओं की मान्यता निर्भर करती है। नियमों का उल्लंघन करने पर उनकी मान्यता समाप्त की जा सकती हैं। उनके विद्यार्थियों की परीक्षा सम्बन्धित बोर्ड या विश्वविद्यालय लेता है। निजी विश्वविद्यालय अपने क्षेत्र में पूरी स्वायत्तता का उपभोग करते हैं। किन्तु उन्हें यू०जी०सी० या अखिल भारतीय टेक्निकल शिक्षा परिषद् जैसी सरकारी सस्थाओं द्वारा निर्धारित नियमों और निर्देशों का भी पालन करना आवश्यक होता हैं।

निजी शिक्षण संस्थाओं के लाभ

(1) निजी शिक्षण संस्थाओं ने भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या की शैक्षिक आवश्यकतओं की पूर्ति में सराहनीय सहयोग दिया है। कहना गलत न होगा कि यदि प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए निजी संस्थाएँ न होती तो कितने ही लोग अपेक्षित शिक्षा में वंचित रह जाते।

(2) निजी क्षेत्र के विभिन्न स्तरों की अनेक संस्थाओं ने उत्कृष्ट शिक्षण प्रदान कर शैक्षिक स्तर के अध:पतन को रोका हैं।

(3) निजी क्षेत्र की शिक्षण संस्थाओं का पठन-पाठन स्तरीय होता है। फलत: उन्होंने शिक्षा के गुणात्मक विकास के अनुकरणीय मानक और आदर्श प्रस्तुत किये हैं।

(4) निजी शिक्षण संस्थाओं की 'फैकल्टी' या शिक्षक वर्ग अपने दायित्व के निर्वाहन के लिए अधिक जागरूक रहता हैं।

(5) निजी शिक्षण संस्थाओं की अधिसंरचना (Infrastructure) उच्च कोटि की होती हैं।

(6) निजी शिक्षण संस्थाओं ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिभाशाली विभूतियों को देकर देश के विकास में पहली भूमिका का निर्वाहन किया हैं।

(7) निजी शिक्षण की व्यवस्था के लिए अनुकूल कानून और नियमों का निर्माण कर सरकार ने विदेशी शिक्षण संस्थाओं को भारत में अपनी शिक्षण संस्थाओं की शाखा स्थापित करने अथवा नई संस्थाओं को खोलने क अवसर प्रदान किया हैं।

(8) निजी शिक्षा ने शैक्षिक जगत में स्वस्थ प्रतियोगिता और प्रतिस्पर्द्धा का मार्ग प्रशस्त किया हैं। इससे शिक्षा के गुणात्मक विकास में सहायता मिली हैं।

(9) उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में भारत में विदेशों के सुप्रसिद्ध शिक्षण प्रतिष्ठानों की सुविधाएँ भारतीय नागरिकों को सुलभ हो गई हैं।

(10) उदारीकरण, वैश्वीकरण, सूचना क्रान्ति के प्राप्ति से भारत को विश्व की आधुनिकतम तकनीकी और वैज्ञानिक शोधों के ज्ञान का मार्ग प्रशस्त हो गया हैं।

(11) शिक्षा में निजीकरण का एक अन्य लाभ यह भी है कि ऐसे विद्यार्थी जो किसी कारणवश अपनी पढ़ाई पूर्ण करने में असफल रहे हैं और पत्रचार पाठ्यक्रम और दूरस्थ शिक्षा द्वारा अपनी पढ़ाई करने की बजाए सामान्य विद्यार्थियों की तरह महाविद्यालयों में प्रवेश पा कर अध्ययन करना चाहते हैं, इन निजी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश पाकर अपनी पढ़ाई पूरी कर सकते हैं, और विषयो के चयन में भी उन्हें विशेष असुविधाओं का सामना नहीं करना पड़ता हैं।

इस प्रकार निजी शिक्षा आधुनिक भारत की प्रगति और बौद्धिक विकास के लिए एक वरदान सिद्ध हो रही है।

शिक्षा के निजीकरण के हानियाँ

शिक्षा के निजीकरण के पक्ष में जहाँ अनेक तर्क दिए जाते हैं । वस्तुत: शिक्षा का निजीकरण भारतीय संदर्भ में एक मिश्रित वरदान (Mixed blessing) है । एक ओर उसमे अनेक गुण हैं तो दूसरी आरे अनेक दुर्गुण भी । यहाँ हम संक्षेप में शिक्षा के निजीकरण के कुछ दोषों को रेखांकित कर सकते हैं । ये दोष इस प्रकार हैं–

(1) शिक्षा के निजीकरण ने शिक्षा को लाभदायी व्यवसाय मे बदल दिया है, जिसके कारण भारत का शैक्षिक परिदृश्य कलुषित हो गया है । पहले समाज के प्रबुद्ध लोग त्याग, सेवा और समर्पण की भावना से शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना का सद्प्रयास करते थे, जबकि अब उसे त्वरित लाभ के एक उद्यम के रूप में देखा जा रहा है । शिक्षा का यह व्यवसायीकरण या वाणिज्यीकरण समाज के व्यापक हित की दृष्टि से अहितकर हैं,

(2) निजीकृत विद्यालयों या अन्य शैक्षिक प्रतिष्ठानों का एक अन्य प्रमुख दोष यह है कि इन विद्यालयों या प्रतिष्ठानो में अध्ययन करने वाले छात्र-छात्राओं को अत्यधिक फीस देनी पड़ती है। फीस के अतिरिक्त प्रवेश के समय उन्हें 'डोनेशन' भी काफी देना पड़ता है । इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार से निजी संस्थाएँ अपने विद्यार्थियों से धन वसूला करतीं हैं। इस प्रकार अधिकांश शिक्षण संस्थाएँ धन उगाही का केन्द्र बन गई हैं। जिनके कारण वे छात्र-छात्राएँ शिक्षा से वंचित रह जाते हैं जो निर्धनता के कारण प्रतिभा वान होते हुए भी प्रवेश नहीं ले पाते हैं। ऐसी स्थिति को देखकर यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि भारत में अधिकांश निजी शिक्षण संस्थाएँ 'अभिजात्य वर्ग' के लिए हैं। निर्धन वर्ग के लोगों के पाल्यों (Ward) के लिए ऐसी शिक्षण संस्थाओं में अध्ययन करना एक स्वप्न के सद्श्य है ।

(3) निजी क्षेत्र की अनेक शिक्षण संस्थाएँ धार्मिक संगठनो द्वारा चलाई जा रही हैं । इन शिक्षण संस्थाओं के संचालन का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रदान करने के साथ-साथ अपनी धर्म और संस्कृति की प्रभाव-परिधि में छात्र-छात्राओं को लाना भी होता हैं,

(4) निजी शिक्षण-संस्थाओं में अनेक ऐसी संस्थाएं हैं जिनमें शिक्षकों को शासन द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार वेतन और अन्य सुविधाएँ सुलभ नहीं। शिक्षकों का प्राय: शोषण होता है और कभी-कभी उनके वेतन के भुगतान में विसंगतियाँ भी देखने को मिलती हैं।

(5) इधर निजी क्षेत्र की कतिपय शिक्षण संस्थाओं के विषय ऐसा भी सुनने में आया है कि वहाँ पैसा लेकर नकल करायी जाती है। इस प्रकार निजी संस्थाओं में भ्रष्टाचार के अन्य मामले भी प्रकाश में आए हैं।

(6) निजी शिक्षण संस्थाओं का एक अन्य महत्वपूर्ण दोष यह भी है कि कुछ संस्थाएँ समाज के द्वारा चुने गये नेताओं द्वारा स्थापित और संचालित की जा रही हैं। जिसके कारण ये संस्थाएँ राजनीतिक दलों के वोट बैंक के लिये एक आधार स्वरूप बनती जा रही हैं नेतागण अपने कतिपय स्वार्थो के हेतु और अपना भविष्य उज्जवल करने और साथ-ही-साथ धनोपार्जन के उद्देश्य की दृष्टि से रखते हुए महाविद्यालयों की स्थापना में विशेष रूचि ले रहे हैं,

(7) शिक्षा के निजीकरण की एक अन्य विकृति यह है कि समाज के प्रबुद्धजन महाविद्यालयों की स्थापना करके या तो केवल शिक्षा का मात्र परिमाणात्मक विकास करने का प्रयास कर रहे हैं और या तो देश में प्रबन्धन एवं तकनीकी विषयो ंकी मान्यता लेकर डॉक्टर और इंजीनियर या प्रबन्धक बनाने का प्रयास कर रहे हैं । इसके द्वारा छात्र-छात्राओं के नैतिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करने का कोई विशेष प्रयास नहीं किया जा रहा है। जिसका दुष्प्रभाव मानवीय मूल्यों के अभाव के रूप में दिखायी पड़ रहा हैं।

इस प्रकार शिक्षा के निजीकरण की भी अपनी विकृतियाँ हैं। आवश्यकता इस बात की है कि शासन के उत्तरदायी सदस्य निजीकृत विद्यालयों या शिक्षण संस्थाओं की विकृतियों और समस्याओं को दूर करने के लिए

यथोचित प्रयास करें। जिससे शिक्षा का निजी क्षेत्र, देश के शैक्षिक विकास में अपने सकारात्मक भूमिका का निर्वाह कर सके।

शिक्षा के निजीकरण के सम्बन्ध में कतिपय सुझाव

(Some Suggestions for Privatization of Education)

शिक्षा का निजीकरण वस्तुतः आधुनिक समाज की एक आवश्यक बुराई है। जिसकी हमें ऐसी आवश्यकता है कि इसमें अनेक अनियमितओं के बावजूद भी हम इसे नजर अंदाज नहीं कर सकते हैं इसका न्यून मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। हमारी सरकारें शिक्षा के क्षेत्र में बढ़ रहे बोझ को कम करने के उद्देश्य से अपने इस दायित्व को निजी संस्थाओं को हस्तान्तरित करने का भरसक सफल प्रयास कर रही हैं। अतः शिक्षा के निजीकरण का सकारात्मक प्रभाव प्राप्त करने की दृष्टि से कुछ महत्त्वपूर्ण सुझावों का पालन करना अत्यन्त आवशकय प्रतीत होता है। ये सुझाव संक्षेप में निम्नलिखित हैं–

(1) हमारी शिक्षा व्यवस्थासे सम्बन्धित अधिकारियों का यह कर्तव्य है कि इन निजी महाविद्यालयों में नियुक्त किये जाने वाले शिक्षकों की योग्यता और उनकी मिलने वाले वेतनमान की समय-समय पर जाँच करवायों।

(2) दूसरा सुझाव यह है कि मान्यता देते समय इस बात का ध्यान रखा जाय कि प्रबन्ध तंत्र की छवि समाज में सकारात्मक हो, न कि नकारात्मक।

(3) अभिभावकों का आर्थिक शोषण न हो और आर्थिक रूप से कमजोर/पिछड़े गरीब छात्र-छात्राओं और अनुसूचित जातियों/जनजातियों के प्रवेश के लिए विशेष प्रावधान बनाये जायें।

(4) सभी प्रकार के पाठ्यक्रमों में पर्यावरण एवं जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित पाठ्यक्रमों पर विशेष कक्षाएं चलाई जाएं और बीच-बीच में महाविद्यालयों के पुस्तकालय प्रयोगशाला ओर कार्यालयो को विशेष दिशा-निर्देश शासन द्वारा भेजे जाएं।

(5) प्रायः यह देखा गया है कि निजी संस्थाएं अध्यापन और परीक्षा कराना ही अपना महत्वपूर्ण कर्त्तव्य समझती हैं । इन्हें अद्यतन जानकारी वार्षिक रिर्पोट सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जाये जिससे छात्र-छात्राएं देश में हो रहे समसामयिक विकास कार्यो की जानकारी रख सकें एवं समयानुसार परिवर्तन ला सकें।

(6) निजी संस्थाओं को मान्यता देते समय प्रशासनिक योजना (Administration Scheme) बनाइ जाये जिसमें सरकार, शिक्षा विभाग, समाज के प्रतिनिधियों एवं अध्यापकों का प्रतिनिधित्व हो।

19.10 सारांश (Summary)

प्ररंभिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरणके पश्चात भारत में अब माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की आवश्यकता आ पड़ी है। इस हेतु पूर्व से ही सोंचा जा रहा है परन्तु वर्तमान में इसके क्रियान्यन हेतु 4(चार) सिद्धान्तो पर कार्य जारी है। ये चार हैं–सर्वव्यापी पहुँच, समता एवं सामाजिक न्याय, औचित्य एवं विकास, ढ़ाँचागत विकास एवं पाठ्यचर्या। भारत जैसे युवा प्रमुख देश को जनसांख्यिकीय लाभांश लेने हेतु भी माध्यमिक शिक्षा का गुणवत्तायुक्त होना एवं सबों के पहुँच में होना जरूरी होगा। सबों के पहुँच में माध्यमिक शिक्षा हो, इस हेतु मात्रात्मक प्रसार की समस्या प्रबल है और इसके आगे की समस्या गुणवत्ता संधारण की है। इतना ही नहीं सर्वव्यापीकरण के समतामूलक पक्ष भी काफी चुनौतीपूर्ण है। पाठ्यचर्या सुधार एवं मूल्यांकन सुधार की समस्या पर भी विचार अपेक्षित है। भारतजैसे देश में व्यवसायीकरण को भी महत्त्व दिया जाना होगा, साथ-ही निजीकरण के अच्छे एवं बुरे पहलूओं पर भी विश्लेषाणात्मक अध्ययन जरूरी है।

19.11 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. शिक्षा के सार्वभौमीकरण का क्या अर्थ हैं ?
   What is the meaning of Universalization of Education?
2. भारत में जनसांख्यिकीय लाभांश (Demographic dividend) हेतु माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की क्या आवश्यकता हैं ?
   What is the need of universalization of education for demographic dividend?
3. माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण लक्ष्य को हसिल करने में राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA) की भूमिका पर प्रकाश डालें।
   Throw light on the role of RMSA in universalization of Secondary Education.
4. माध्यमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण की प्रमुख समस्याएँ क्या हैं ।
   What are the problems in the universalization of secondary education.
5. माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यचर्या एवं मूल्यांकन सम्बन्धी समस्या क्या है? निराकरण के उपाय बतायें ।
   What are the problems related to curriculum and evaluation at secondary level? Give suggestion for solution.
6. माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण बेरोजगारी की समस्या को दूर कैसे करेगा?
   How will vocationalisation of secondary education solve the problem of unemployment?
7. शिक्षा में निजीकरण से क्या समझते हैं ? भारतीय सन्दर्भ में इससे होने वाले लाभ एवं हानियाँ क्या हैं?
   What is meant by privatisation in education? What are the merit and demerit in Indian context?

19.12 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

1. Agrawal, J.C. (2014), Udiyaman Bhartiya Smaj me Shiksha, Shipra Publication, New Delhi.
2. ASER Report– 'Beyond Basics' (2018).
3. Agarawal, J.C. & Gupts, S, (2013) Secondary Education and Mangement Shipra Publiction, New Delhi.
4. Saraswat, Malti, Mohan, Madan & Sinha, Nita, Bhrtiya Shiksha ka Itihas, Vikas Evam Samasyaen, New Kailas Publication, Allahabad.
5. http:/rmsa.gov.in.
6. Educational Statistics at a glance (2016), GoI, MoHRD, Department of Schools Education & Lliteracy, New Delhi.
7. NCER Report :– Uniyerslisation of Secondary Education in India–: vision
8. www.iiep.unesco.org/en/universlizing–secondary-education-india-3531
9. Report of the CABE committee– 'Universalisation of Secondary Education' (June 2005).

❑ ❑ ❑

इकाई : 20 राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान
(Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan)

पाठ संरचना (Lesson Structure)

20.0 उद्देश्य (Objectives)

20.1 भूमिका (Introduction)

20.2 माध्यमिक शिक्षा का अभिप्राय एवं आवश्यकता

20.3 RMSA का परिचय

20.4 दृष्टि एवं लक्ष्य (Vision and Goal)

20.5 कार्यान्वयन तंत्र (Implementation Mechanism)

20.6 महत्त्वपूर्ण पहलू (Importanct Aspect)

20.7 बाधाएँ (Barriers)

20.8 उपलब्धियाँ (Achievements)

20.9 सारांश (Summary)

20.10 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

20.11 प्रस्तावित पाठ (Suggested Readings)

20.0 उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थीगण :

- RMSA की भूमिका एवं इसके लक्ष्यों का वर्णन कर सकेंगे ।
- RMSA के कार्यान्वयन तंत्र की चर्चा कर सकेंगे ।
- RMSA के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या कर सकेंगे ।
- RMSA के मार्ग की बाधाओं एवं इसकी उपलब्धियों को स्पष्ट कर सकेंगे ।

उपर्युक्त तथ्यों से अवगत कराना ही इस पाठ का उद्देश्य है ।

20.1 प्रस्तावना (Introduction)

उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण (LPG) के इस दौर में भारतीय संविधान की आत्मा

(प्रस्तावना/उद्देश्यिका) में वर्णित आदर्शों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को हमेशा से एक महत्त्वपूर्ण साधन माना जाता रहा है । हमारे देश के सतत् विकास (sustainable development) में शिक्षा की अति महत्त्वपूर्ण भूमिका है । सामाजिक न्याय एवं समता जैसे आदर्शों को शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है ।

यद्यपि शिक्षा पर व्यय दीर्घकालिक निवेश माना जाता है तद्यापि विभिन्न भारतीय सरकारों ने बजट में शिक्षा पर व्यय को लगातार बढ़ाया ही है । वर्ष 2018-19 के बजट में शिक्षा पर व्यय 8,50,10 करोड़ रूपये तक पहुँच गया है । यह भारतीय सरकार की शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता को दर्शाता है जो मानव रूपी संसाधन के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है ।

20.2 माध्यमिक शिक्षा का अभिप्राय (Meaning of Secondary Education)

शिक्षा व्यवस्था का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना प्राचीन मानव सभ्यता का इतिहास है । मानव सभ्यता के प्रारंभ होते ही किसी न किसी रूप में शिक्षा का प्रारंभ हो गया होगा ।

हमारे देश में वर्त्तमान औपचारिक विद्यालयी शिक्षा को सामान्यत: दो भागों में बाँटा गया है :- प्राथमिक शिक्षा तथा माध्यमिक शिक्षा (Primary Education and Secondary Education) । पुन: माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में बाँटा गया है - निम्न माध्यमिक (Lower Secondary) तथा उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) । कक्षा I से VIII तक की शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा जबकि कक्षा IX से कक्षा XII तक की शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा कहते हैं । उसमें भी कक्षा XI तथा कक्षा XII को उच्चतर माध्यमिक कहा जाता है ।

स्पष्ट है कि कक्षा IX से कक्षा XII तक चलने वाली माध्यमिक शिक्षा का प्रारंभ प्राथमिक शिक्षा की समाप्ति पर होता है तथा उच्च शिक्षा से पूर्व यह समाप्त हो जाती है । माध्यमिक शिक्षा के उपरांत ही बालक उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करता है । माध्यमिक शिक्षा स्तर के प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा स्तरों के बीच स्थित होने के कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है । उसके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होने के कुछ प्रमुख कारण निम्न है :-

(क) माध्यमिक शिक्षा सामान्य शिक्षा की समाप्ति है ।

(ख) मानव विकास की किशोरावस्था से संबंधित होने के कारण तथा भावी युवा शक्ति के नेतृत्व के प्रशिक्षण का प्रथम केन्द्र होने के कारण माध्यमिक शिक्षा राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक तथा तकनीकी क्षमता को सर्वाधिक प्रभावित करती है ।

(ग) माध्यमिक शिक्षा रोजगार तथा जीवनयापन के क्षेत्र में प्रवेश का द्वार खोलती है । देश की मानव शक्ति/ मानव संसाधन का एक बहुत बड़ा भाग माध्यमिक शिक्षा स्तर से ही प्राप्त होता है ।

(घ) माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा स्तरों की गुणवत्ता को भी निर्धारित करती है । प्राथमिक विद्यालयों के अधिकांश अध्यापक माध्यमिक शिक्षा स्तर से प्राप्त होते हैं । इसी प्रकार विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षा केन्द्रों के लिए छात्रों की पूर्ति का कार्य भी माध्यमिक शिक्षा ही करती है। वस्तुत: उच्च शिक्षा के लिए माध्यमिक शिक्षा एक आधार का कार्य करती है ।

(ड.) उपर्युक्त कारणों से ही माध्यमिक शिक्षा को सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है । इसे शिक्षा रूपी जीव की रीढ़ की हड्डी (Back-Bone) भी कहा जाता है । क्योंकि जिस प्रकार

से रीढ़ की हड्डी मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर को संभाले रहती है ठीक उसी प्रकार से माध्यमिक शिक्षा भी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को संभाले रहती है । यदि माध्यमिक शिक्षा गुणवत्ता युक्त होगी तो प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा तथा तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा भी गुणात्मक दृष्टि से कमजोर होगी तो सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था भी कमजोर हो जायेगी ।

साथ ही सर्व शिक्षा अभियान (2001) की सफलता और शिक्षा का अधिकार कानून (2009) ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के उपरांत सरकार पर माध्यमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने तथा इसकी गुणवत्ता में सुधार लाने का दबाव बढ़ा दिया है । इन्हीं सब कारणों से वर्ष 2009 से हमारे देश में **'राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (RMSA)'** शुरू किया गया है ।

20.3 RMSA का परिचय

1986 की नई शिक्षा नीति और 1992 की क्रियान्वयन योजना (Programme of Action) की सिफारिशों के आलोक में सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था को बेहतर बनाने के लिए तथा गुणवत्ता में सुधार के लिए भिन्न-भिन्न योजनाएँ चलायी है । IEDSS, बालिका छात्रावास, व्यावसायिक शिक्षा और ICT @ स्कूल ऐसी ही कुछ प्रमुख योजनाएँ रही हैं जिनका उद्देश्य देश में गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना रहा है । इसी कड़ी/शृंखला में RMSA मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा मार्च 2009 में शुरू की गयी एक अन्य महत्त्वाकांक्षी योजना है । इस कार्यक्रम का उद्देश्य समूचे देश में माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर करना है । इसके अंतर्गत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य रखा है ।

इस योजना में सभी माध्यमिक विद्यालयों के लिए निर्धारित मानकों का निर्धारण करके महिला-पुरूष, सामाजिक-आर्थिक भेदभाव और नि:शक्तता की बाधा को हटाकर माध्यमिक शिक्षा को सुलभ बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है ।

20.4 दृष्टि एवं लक्ष्य (Vision and Goal)

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण की चुनौती का सामना करने के लिए माध्यमिक शिक्षा की परिकल्पना में आमूल-चूल परिवर्तन की आवश्यकता है । इस संबंध में मार्गदर्शक तत्व हैं :-

- कहीं से भी पहुँच
- सामाजिक न्याय के लिए बराबरी
- प्रासंगिकता
- विकास
- पाठ्यचर्या; एवं
- ढाँचागत पहलू

माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमिकरण अभियान बराबरी की और बढ़ने का मौका देता है । इसमें आम स्कूल व्यवस्था (Common School System) की परिकल्पना प्रोत्साहित की गयी है । यदि माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में ये मूल्य स्थापित किये जाते हैं तो अनुदान रहित निजी विद्यालयों सहित सभी प्रकार के विद्यालय भी समाज के निचले वर्ग के बच्चों एवं गरीबी रेखा से नीचे (BPL) परिवारों के बच्चों को उचित अवसर देना सुनिश्चित कर माध्यमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण में योगदान दे सकेंगे ।

इस दृष्टि को ध्यान में रखते हुए इस योजना के निम्नलिखित लक्ष्य एवं उद्देश्य निर्धारित किये गये हैं :-

- 14-18 वर्ष उम्र समूह के सभी बालकों एवं बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा सुलभ तय वहन योग्य तरीके से उपलब्ध कराना ।
- वर्ष 2005-06 में हुए 52.26% नामांकन की तुलना में इसके कार्यान्वयन के पाँच वर्ष के भीतर किसी भी बस्ती से उपयुक्त दूरी पर एक माध्यामिक विद्यालय उपलब्ध कराकर कक्षा IX-X के लिए 75% का सकल नामांकन अनुपात प्राप्त करना ।
- सभी माध्यमिक विद्यालयों को निर्धारित मानदण्डों के अनुरूप बनाकर माध्यमिक स्तर पर दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना ।
- सर्वव्यापी पहुँच अर्थात् किसी भी अधिवास क्षेत्र के लिए 5 कि०मी० के अन्दर माध्यमिक विद्यालय तथा 7-10 कि०मी० के दायरे में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय उपलब्ध कराना ।
- लैंगिक, सामाजिक, आर्थिक तथा नि:शक्तता की बाधाओं को दूर करना ।
- वर्ष 2017 अर्थात् 12वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक माध्यमिक स्तर की शिक्षा तक व्यापक पहुँच सुनिश्चित करना ।
- वर्ष 2020 तक छात्रों को विद्यालय में बनाये रखने में वृद्धि और उसका सर्वसुलभीकरण करना ।
- वर्ष 2017 तक शत-प्रतिशत नामांकन (100% GER) का लक्ष्य हासिल करना ।
- समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबकों विशेषकर - अ.जा. (SC), अ.ज.जा. (ST), लड़कियों, नि:शक्त बच्चों, अल्पसंख्यकों, शैक्षिक रूप से पिछड़ों, अ.पि.वर्ग (EBC) के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराना ।
- यह सुनिश्चित करना कि सभी माध्यमिक विद्यालयों में भौतिक सुविधायें एवं कर्मचारी हों तथा स्थानीय सरकार/स्थानीय निकायों एवं शासकीय सहायता प्राप्त विद्यालयों के मामले में कम-से-कम सुझाये गये मानकों के अनुसार एवं अन्य विद्यालयों के मामले में उचित नियामक तंत्र के अनुसार कार्य हो ।
- माध्यमिक शिक्षा का स्तर सुधार कर बच्चों में बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समझ को बढ़ाना ।
- गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के लिए साझा विद्यालय प्रणाली (Common School System) का विकास करना ।

20.5 योजना के लिए कार्यान्वयन तंत्र (Implementation Mechanism)

प्रत्येक राज्य में 'RMSA राज्य कार्यान्वयन सोसायटियों (RMSA State Implementation Societies) की मदद से RMSA का समन्वय करने के लिए 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार' केन्द्र सरकार का नोडल मंत्रालय है । हालांकि इसके बेहतर कार्यान्वयन के लिए अनेक सहयोगी व्यवस्थाएँ तथा संस्थाएँ उपलब्ध है । एक राष्ट्रीय संसाधन दल (National Resource Group, NPG), शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं, पाठ्यचर्या, शिक्षण-अधिगम सामग्री, ICT शिक्षा तथा निगरानी और मूल्यांकन के तंत्रों में सुधार के लिए मार्गदर्शन देता है । MHRD, भारत सरकार द्वारा समर्थित तकनीकी सहयोग दल (Technical Support Group, TSG) राष्ट्रीय संसाधन दल का संघटक है तथा मंत्रालय से इसका सीधा संबंध है । तकनीकी सहयोग दल राष्ट्रीय तथा

राज्य स्तरीय टीमों को तकनीकी और प्रचालन संबंधी सहयोग तथा विशेषज्ञता उपलब्धता कराता है ।

इसके अतिरिक्त NRG के अन्तर्गत विभिन्न उप-समितियों जैसे पाठ्यचर्या सुधार उप-समिति, शिक्षक और शिक्षक विकास उप-समिति, ICT उप-समिति और योजना एवं प्रबंधन उप-समिति गठित की गयी है । इन उप-समितियों में TSG से सदस्य लिए जाते हैं और इनकी वर्ष में तीन बैठकें होती हैं जिनमें वे परस्पर निर्धारित लक्ष्यों और प्रतिबद्धताओं की प्रगति से स्वयं को अवगत कराती है । इसके अतिरिक्त NCERT और NUEPA, RMSA की समर्थित इकाइयों के माध्यम से सहायता करते हैं । DFID की सहायता से क्षमता निर्माण सहायता के लिए RMSA-TCA का भी गठन किया गया है । वित्तीय निविष्टयों (Financial inputs) के रूप में केन्द्र का हिस्सा सीधे कार्यान्वयन एजेन्सियों को जारी किया जाता है जबकि राज्य का उपयुक्त हिस्सा भी संबंधित राज्य सरकारों द्वारा सीधे एजेन्सियों को ही जारी किया जाता है ।

20.6 RMSA में माध्यमिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण पहलू (Important Aspects of Secondary Education in RMSA)

गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के सर्वसुलभीकरण के लिए इस योजना में माध्यमिक शिक्षा के निम्नांकित तीन महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करते हुए उनमें सुधार की योजना निर्धारित की गयी है :-

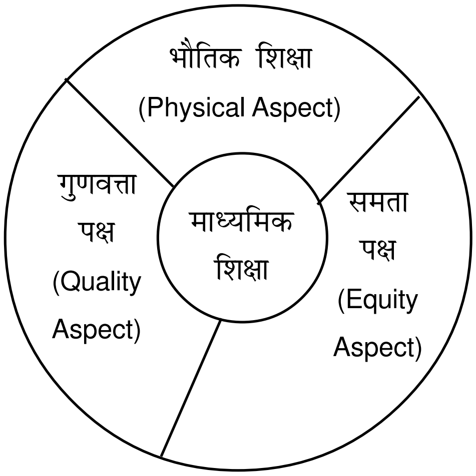

भौतिक पक्ष (Physical Aspect) : इसके अन्तर्गत निम्न सुविधाएँ उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है :-

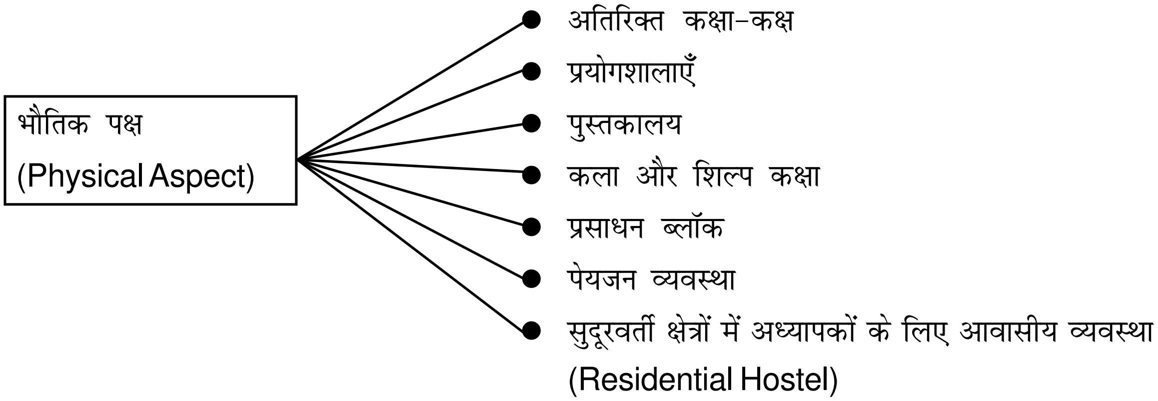

गुणवत्ता पक्ष (Quality Aspect) : इसके अन्तर्गत निम्न सुविधाओं उपलब्ध कराने की योजना है :-

गुणवत्ता पक्ष
Quality Aspect

- छात्र-शिक्षक अनुपात 30:1 तक घटाने के लिए अतिरिक्त शिक्षकों की नियुक्ति
- विज्ञान, गणित और अंग्रेजी शिक्षा पर ध्यान
- शिक्षकों का सेवाकालीन-प्रशिक्षण
- विज्ञान प्रयोगशालाएँ
- ICT समर्थित शिक्षा
- पाठ्यचर्या (Curriculum) सुधार; तथा
- शिक्षण-अधिगम सुधार

समता पक्ष (Equity Aspect) : माध्यमिक स्तर पर समता लाने के लिए इस योजना में निम्न प्रावधान किये गये हैं :-

समता पक्ष
Quity Aspect

- सूक्ष्म/लघु योजनाओं पर विशेष ध्यान जैसे - कस्तुरबा गाँधी बालिका विद्यालय, SABLA, छात्रवृति योजनाएँ, आदि ।
- उत्क्रमण (Upgradation) के लिए 'आश्रम विद्यालयों' को प्राथमिकता
- SC, ST तथा अल्पसंख्यक बहुल क्षेत्रों में नये विद्यालय खोलने की प्राथमिकता
- कमजोर वर्ग के बच्चों के लिए विशेष नामांकन व्यवस्था (Special Enrolment Derive)
- विद्यालयों में अधिक-से-अधिक महिला शिक्षकों की व्यवस्था
- बालिकाओं र्को लिए अलग प्रसाधन ब्लॉक

इसके अतिरिक्त इस योजना के प्रभावी क्रियान्वयन एवं गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के लक्ष्य को पूरा करने के लिए अन्य निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैं :-

- मौजूदा विद्यालयों में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयें की शिफ्टों का विस्तार करना ।
- सूक्ष्म नियोजन के आधार पर आवश्यक ढाँचागत सुविधाओं एवं शिक्षकों सहित उच्च प्राथमिक विद्यालयों का उन्नयन करना ।
- प्राथमिक विद्यालयों के उन्नयन के समय आश्रम विद्यालयों को प्रोत्साहित करना ।
- आवश्यकता के आधार पर माध्यमिक विद्यालयों का उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में उन्नयन करना ।
- विद्यालय मैपिंग प्रक्रिया द्वारा अब तक अछूते रहे क्षेत्रों मे नये माध्यमिक/उच्चतर माध्यमिक विद्यालय खोलना ।

- विद्यालय की नयी इमारतों को विकलांगो के लिए मित्रवत बनाना तथा इनमें वर्षा-जल संचय प्रणाली अनिवार्य रूप से लगाना ।
- मौजूदा विद्यालयों में सौर-ऊर्जा एवं वर्षा-जल संचय प्रणाली लगाना ।
- मौजूदा विद्यालयी भवनों को भी विकलांगों के लिए मित्रवत बनाना ।
- नये विद्यालयों को स्थापित करने में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (PPP) को अपनाना ।
- कक्षा 8 उत्तीर्ण कर चुके/कर रहे छात्रों की सीखने की क्षमता में वृद्धि के लिए सेतु पाठ्य (Bridge Course) की रचना करना ।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 (NCF, 2005) के मानकों के आलोक में मौजूदा पाठ्यचर्या का पुनरावलोकन करना ।
- SC/ST/EBC तथा अल्पसंख्यक समुदाय के छात्रों के लिए मुफ्त भोजन तथा आवास की व्यवस्था करना ।
- लड़कियों के लिए छात्रावास, आवासीय विद्यालय, नकद प्रोत्साहन, स्कूल ड्रेस, पुस्तकालय व शौचाालय की सुविधाएँ प्रदान करना ।
- मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था को बढ़ावा देना ।
- विद्यालय प्रशासन में सुधार करना ।
- शिक्षकों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतन एवं कैरियर विकास की नीति अपनाना ।
- सभी स्तरों पर माध्यमिक शिक्षा प्रणाली में आवश्यक व्यावसायिक एवं शैक्षणिक परामर्श की व्यवस्था करना ।
- कोषों के त्वरित प्रवाह एवं उनके अधिकतम उपयोग के लिए वित्तीय प्रक्रियाओं का सरलीकरण करना ।
- पंचायती राज संस्थाओं की भागीदारी बढ़ाना : नियोजन प्रक्रिया लागू करने, उस पर निगरानी रखने एवं सतत् विकास के लिए पंचायती राज एवं नगर निगम, समुदाय, शिक्षकों, अभिभावकों एवं अन्य हिस्सेदारों की माध्यमिक शिक्षा में विद्यालय प्रबंध समितियों एवं शिक्षक-अभिभावक संघों जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से भागीदारी बढ़ाना ।
- केन्द्रीय विद्यालय एवं जवाहर नवोदय विद्यालयों की संख्या बढ़ाना ।

20.7 बाधाएँ (Barriers)

उपरोक्त सारे प्रावधान RMSA के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हैं फिर भी इस रास्ते मे निम्न बाधाएँ हैं :-

- जागरूकता का अभाव : आम आदमी, अभिभावक, छात्र और तो और स्वयं अध्यापकों में जागरूकता की कमी है ।
- इच्छा शक्ति की कमी : योजना के क्रियान्वयन के प्रत्येक स्तर पर दृढ़ इच्छाशक्ति की काफी कमी है ।
- पंचयती राज संस्थाओं के हाथ में 'नियोजन' का अधिकार देने से नियोजन में धांधली की शिकायतें आम हो गयी हैं ।

दूसरी तरफ पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचित सदस्य अशिक्षित भी हो सकते हैं क्योंकि इनके निर्वाचन में शैक्षिक योग्यता जैसी कोई बाध्यता नहीं है । जब ऐसे सदस्य शिक्षक नियोजन संबंधी काम करते हैं तो यह व्यवस्था हास्यास्पद प्रतित होती है ।

- सेवानिवृति के इंतजार में बैठे वरिष्ठ शिक्षक नयी तकनीकी के प्रति (ICT) नकारात्मक एवं उदासीन रवैया अपनाते हैं ।
- ICT, पुस्तकालय, बालिका प्रसाधन, प्रयोगशाला जैसी आधारभूत संरचनाएँ तो बढ़ी है परन्तु उन सब में ताला लगा रहना आम बात है । इसकी निम्न वजहें बतायी जाती हैं :-
  - (क) बच्चों द्वारा इन सुविधाओं के नियमित प्रयोग से इनके टूटने-फूटने तथ खराब होने का भय बना रहता है ।
  - (ख) अध्यापकों एवं छात्रों दोनों का उदासीन रवैया । अध्यापकों को घर जाने जबकि छात्रों को घूमने, कोचिंग जाने की जल्दी के कारण कोई भी इन पर समय बर्बाद करना नहीं चाहता है ।
  - (ग) अध्यापकों का कहना है कि हमें अधिकारियों को जवाब देना होता है । यदि कोई सामग्री टूट जाती है या खराब हो जाती है या कोई पुस्तक फट जाती है तो हमें अपने वेतन से दण्ड भरना पड़ता है ।
- 'अनुत्तीर्ण न करने' की व्यवस्था ने भी आग में घी का काम किया है । इस व्यवस्था ने समूची शिक्षा व्यवस्था में उदासीनता तथा निरसता का भाव भर दिया है । छात्रों के बीच अच्छा करने की प्रेरणा एवं प्रतियोगिता की भावना समाप्त हो चुकी है ।

20.8 उपलब्धियाँ (Achievements)

इन दोषों एवं बाधाओं के बावजूद भी इस योजना की कुछ सकारात्मक एवं उत्साहवर्धक उपलब्धियाँ भी हैं जो निम्न हैं :-

- इस योजना के अन्तर्गत अभी तक 10513 नये माध्यमिक विद्यालयों को स्वीकृति दी जा चुकी है जिसमें से 9840 नये विद्यालय कार्य कर रहे हैं जिनमें 6,88,258 छात्र पंजीकृत हैं ।
- इसके अंतर्गत 2585 विद्यालयों का निर्माण कार्य पूरा हो चुका है जबकि 3811 विद्यालय निर्माणाधीन हैं।
- कुल 93912 माध्यमिक-उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में से 35701 विद्यालयों को आधारभूत संरचना के विकास की स्वीकृति मिल चुकी है । नीचे की सारणी सं० 1 में आधारभूत संरचना से जुड़ी अद्यतन जानकारी दी गयी है :-

घटक	स्वीकृत	निर्माण कार्य पूरा	निर्माणाधीन
1. अतिरिक्त कक्षा	5170	15546	12818
2. विज्ञान प्रयोगशाला	24581	7757	5248
3. कम्प्यूटर कक्ष	20356	5750	4544
4. पुस्तकालय	26902	7772	6772
5. कला और शिल्प कक्ष	30761	8377	5893
6. प्रसाधन ब्लॉक	19705	6205	2941
7. पेयजल	12528	4128	1997
8. अध्यापक निवास	2130	481	580

- **अध्यापक नियुक्ति :** योजना के शुरू होने के समय से वर्ष 2014-15 तक की अवधि में अध्यापकों के कुल 107262 पद स्वीकृत हो चुके हैं । इनमें से 59353 पदों (55%) पर अध्यापकों की नियुक्ति हो चुकी है जबकि 47909 पद रिक्त हैं ।

  वैसे राज्य जहाँ अभी भी अध्यापकें के 50% से ज्यादा पर रिक्त हैं, इस प्रकार हैं - अरूणाचल प्रदेश, बिहार, छत्तिसगढ़, झारखण्ड, मेघालय, नागालैण्ड, उड़िसा, पुडुचेरी, पंजाब, राजस्थान, सिक्किम, उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखण्ड ।

- **अध्यापक प्रशिक्षण :** इस योजना के अन्तर्गत अध्यापक प्रशिक्षण के निम्न 3 प्रकार के कार्यक्रम स्वीकृत किये गये हैं :

  — सेवाकालीन प्रशिक्षण

  — प्रधानाचार्यों के लिए नेतृत्व प्रशिक्षण (Leadership)

  — नये अध्यापकों के लिए प्रारंभिक प्रशिक्षण (Induction Training)

	स्वीकृत	**प्रशिक्षण सम्पन्न**	**प्रतिशत**
सेवाकालीन प्रशिक्षण	446741	36220	8%
प्रारंभिक प्रशिक्षण	27554	0	0%
प्रधानाध्यपकों के लिए नेतृत्व प्रशिक्षण	7390	0	0%

- **ICT @ स्कूल :** सरकारी एवं सरकार द्वारा अनुदान प्राप्त 132303 विद्यालयों में से 87096 (66%) विद्यालयों में यह योजना चल रही है जबकि 70484 विद्यालय इस योजना को क्रियान्वित कर चुके हैं। पुन: 70484 विद्यालयों में से 19779 विद्यालय अपनी योजना अवधि को पूरा कर चुके हैं ।

- **बालिका छात्रावास :** 3451 अति पिछड़े प्रखण्डों (EBB) में 2160 बालिका छात्रावासों को स्वीकृति मिल चुकी है । जबकि 1778 छात्रावासों में से 482 छात्रावास कार्यरत है जिनमें 28701 छात्राएँ पंजीकृत हैं/निवास कर रही हैं ।

- **व्यावसायिक घटक :** 25 राज्यों के 2035 विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा/प्रशिक्षण की स्वीकृति मिल चुकी है जिनमें से केवल तीन राज्यों - हरियाणा, हिमाचल प्रदेश तथा सिक्किम में यह योजना अंतिम रूप से क्रियान्वित की जा रही है ।

- **IEDSS :** इसके अन्तर्गत वर्ष 2014-15 तक 2.22 लाख छात्र पंजीकृत हो चुके हैं । साथ ही 3268 विशिष्ट अध्यापक भी चयनित हो चुके हैं ।

  नोट : ये सारे आँकड़े वर्ष 2014-15 तक के हैं ।

उपर्युक्त आँकड़ों को देखकर तो मन में उम्मीदों के दीपक तो जलते हैं तभी अचानक मन ये सवाल करता है कि वास्तविक धरातल की सच्चाई का क्या? आज भी गुणवत्ता कोसों दूर है । अभिभावक, शिक्षक-छात्र सभी का उदासीन रवैया चिंता का विषय है । इनकी अभिवृति (Attitude) सकारात्मक कम नकारात्मक ज्यादा है । ये उपलब्धियाँ एकबारगी तो केवल आँकड़ों की बाजीगरी दिखती हैं पर जैसे ही ध्यान विद्यालय के ड्रेस में साईकिल चलाती बालिकाओं के समूह की तरफ जाता है तो थोड़ा मन को सुकून भी मिलता है ।

कुल मिलाकर गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा का इमारतों, कम्प्यूटर, छात्रावास आदि आधारभूत संरचना/संरचनाओं

से अटूट संबंध नहीं है बल्कि इसके लिए उन अध्यापकों की जरूरत है जिनमें शिक्षण व्यवसाय के अति सम्पर्ण का भाव हो । वैसे अध्यापक जिनमें उपयुक्त विशेषज्ञता एवं कौशल हों वही इस लक्ष्य को पूरा करने में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं । पर हमारी सरकारें सारे प्रयोग अध्यापकों की नियुक्ति प्रक्रिया में ही करती हैं । भारत का कोई भी राज्य ऐसा नहीं है जहाँ अध्यापकों की नियुक्ति को लेकर न्यायालय में मामला लंबित न हो । अतः जरूरी है कि सरकारें अध्यापक नियुक्ति की प्रक्रिया को पारदर्शी बनाये और प्रश्नपत्र लीक, अनुबंध, जोगाड़, अंकों के खेल जैसी व्यवस्था पर अंकुश लगाये तभी हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं ।

20.9 सारांश (Summary)

RMSA मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए मार्च, 2009 में शुरू की गयी एक महत्त्वाकांक्षी योजना है । इस योजना का मुख्य उद्देश्य वर्ष 2017 तक सभी के लिए माध्यमिक शिक्षा को सर्वसुलभ बनाना है । इस योजना के अन्तर्गत SC/ST/बालिकाओं/अल्पसंख्यकों तथा अन्य पिछड़े वर्ग के बच्चों को माध्यमिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है । साथ ही नि:शक्त बालकों का भी विशेष ध्यान रखा गया है । इस योजना के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता सुनिश्चित करने एवं इसे सर्वसुलभ बनाने के लिए निम्न पक्षों पर ध्यान दिया गया है :-

(i) आधारभूत संरचना/भौतिक पक्ष

(ii) गुणवत्ता पक्ष

(iii) समता पक्ष

इन तीन पहलूओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से गुणवत्तापूर्ण माध्यमिक शिक्षा का लक्ष्य पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है । पर इसकी राह में कुछ बाधायें भी हैं । इन बाधाओं के बावजूद इसकी कुछ उपलब्धियाँ भी हैं जो संतोषजनक है । पर ये उपलब्धियाँ ज्यादातर भौतिक पहलूओं की तरफ संकेत करती है । क्या भौतिक पहलुओं की व्यवस्था कर देने मात्र से गुणवत्ता सुनिश्चित हो जाती है? अब हम सब को मिलकर गुणवत्ता पर ध्यान देने की जरूरत है ।

22.10 अभ्यास के प्रश्न (Questions for Exercise)

1. RMSA के लक्ष्यों का वर्णन करें ।
   Describe the goal of RMSA.
2. RMSA के क्रियान्वयन तंत्र की एक रूप रेखा तैयार करें ।
   Prepare a plan for implementation mechanism of RMSA.
3. RMSA के रास्ते में बाधाएँ क्या हैं? वर्णन करें ।
   What are the barriers in the way of RMSA? Describe it.
4. RMSA की उपलब्धियाँ क्या हैं? बताएँ ।
   What are the achievements of RMSA? Explain.

20.11 संदर्भ (Reference)

1. www.mhrd.gov.in

❒ ❒ ❒